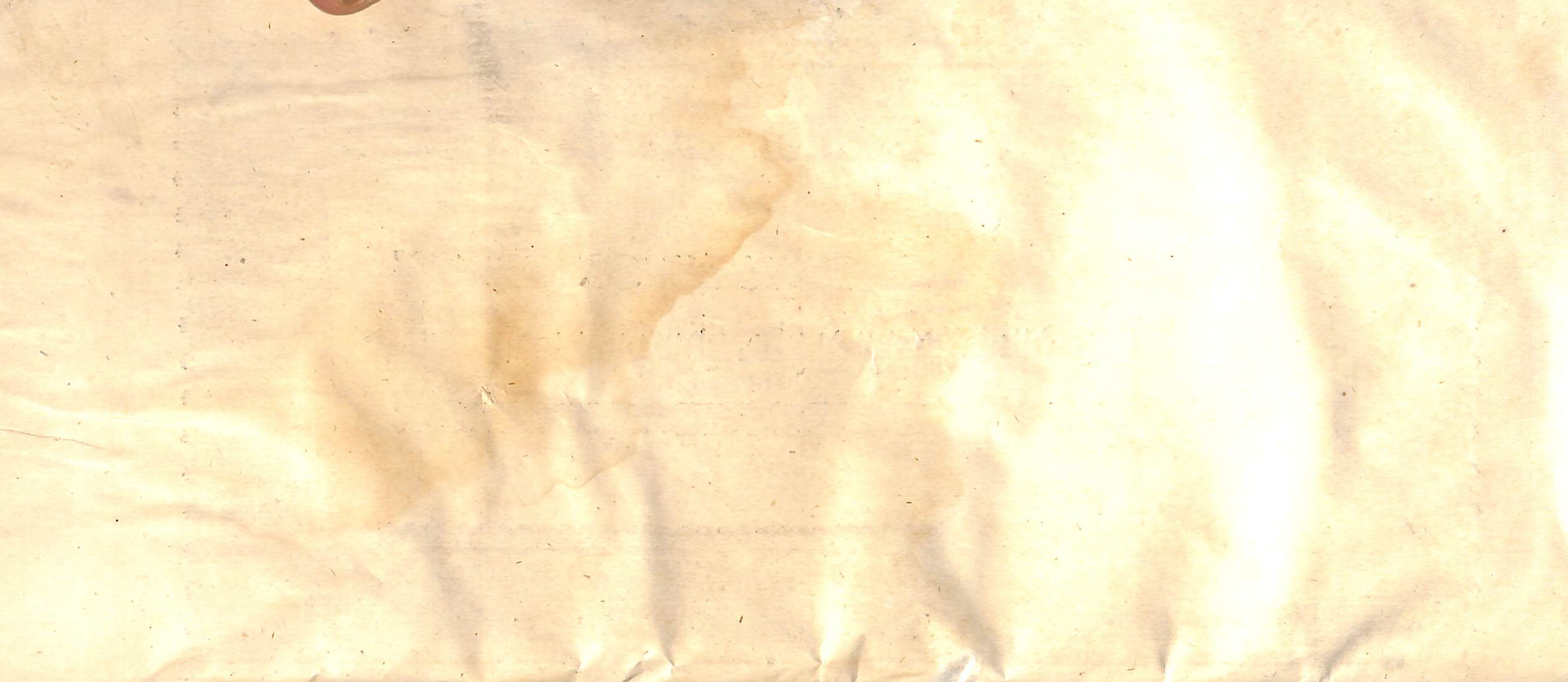
YOGA VASISHT
VOL IV
SANSKRIT

॥ अथ योगवासिष्ठे चतुर्थं स्थितिप्रकरणं प्रारभ्यते ॥



४–स्थितिप्रकरणकी अनुक्रमणिका।

॥ वसिष्ठ उवाच ॥ हे रामजी ! अब स्थितिप्रकरण श्रवण कर, जिसके सुननेते जगत निर्वाणताको प्राप्त होवै; कैसा है जगत् ? अहंता है आदि जिसके ऐसा जो दृश्यरूप जगत् है, सो भ्रांतिमात्र है, जैसे आकाशविषे नानाप्रकारके रंगसहित इंद्रधनुष भासता है, सो असत्‌रूप है; तैसे यह जगत् है, जैसे द्रष्टाविना अनुभव होता है, अरु जैसे निद्राविना स्वप्न भासता है, जैसे भविष्यत् नगर चित्तके फुरणेकरि भासता है, तैसे भ्रमकरिकै जगत् चित्तविषे स्थित हुआ है, जैसे वानर रतिकाको इकट्ठी करि अग्निकी कल्पना करते हैं, सो तिसकरि शीत निवृत्त नहीं होता, भावना मात्र अग्नि होता है, तैसे यह जगत् भावनामात्र है, जैसे आकाशविषे रत्नमणिका प्रकाश अरु गंधर्वनगर भासता है, जैसे मृगतृष्णाकी नदी भासती है, तैसे यह जगत् असत्‌रूप भ्रमकरिकै सत्‌रूप हो भासता है, जैसे संकल्प दृढ अनुभवकरिकै भासता है, तौ भी असत्‌रूप है, जैसे कथाके अर्थ चित्तविषे भासते हैं, तैसे निःसाररूप जगत् चित्तविषे साररूप हो भासता है, जैसे स्वप्नविषे पहाड, नदियां भास आती हैं, तैसे सब वडे भूत भी भासते हैं, तौ भी आकाशवत् शून्यरूप हैं, जैसे स्वप्नविषे अंगनाकेसाथ प्रेम करता है, सो अर्थते रहित असत्‌रूप है, जैसे मूर्तिके लिखे अग्नि सूर्य होते हैं, परंतु तिनते अर्थ सिद्ध कछु नहीं होता, तैसे यह जगत् भी प्रत्यक्ष भासता है; परंतु वास्तव कछु नहीं, अर्थते रहित है, जैसे चित्रकी लिखी कमलिनी सुगंधते रहित होती है, तैसे यह जगत् शून्यरूप है, जैसे आकाशविषे इंद्रधनुष भासता है, जैसे केलेका स्तंभ सुंदर भासता है; परंतु तिसविषे सार कछु नहीं निकसता; तैसे यह जगत् देखनेमात्र रमणीय भासता है, परंतु अत्यंत असत्‌रूप है, इसविषे सार कछु नहीं निकसता, प्रत्यक्ष देखनेविषे अनुभव होता है, परंतु मृगतृष्णाकी नदीवत् असत्‌रूप है; है कछु नहीं ॥ राम उवाच ॥ हे भगवन् ! सर्व संशयके नाशकर्त्ता ! जब महाकल्पक्षय होता है, तब दृश्यमान जगत् सब आत्मरूप बीजविषे जाय लीन होता है, जैसे बीजाविषे अंकुर रहता है, बहुरि तिसते उपजता है, तिसकरि स्थित होता है, बहुरि तिसीविषे लीन होता है, यह जो बुद्धि है, सो ज्ञानकी है, किंवा अज्ञानकी है ? याते सर्व संशयोंके निवृत्तिके अर्थ मुझको स्पष्ट करिकै कहो ॥ वसिष्ठ उवाच ॥ हे

रामजी ! इसप्रकार महाकल्पके क्षय हुए बीजरूप आत्माविषे जगत् स्थित होता है, ऐसे कहते हैं, सो परम अज्ञानी हैं, वे महामूर्ख बालक हैं, जो ब्रह्मको जगतका कारण बीजते अंकुरकी नाईं कहते हैं, सो मूर्खका कहना है, बीज तौ दृश्यरूप इंद्रियहूका विषय होता है, जैसे वटबीजते अंकुर होता है बहुरि विस्तारको पाता है, सो इंद्रियहूका विषय है, अरु जो मनसहित षट् इंद्रियते अतीत है, अर्थ यह जो इंद्रियहूका विषय नहीं,आकाशते भी अधिक निर्मल है,तिसको जगत्का बीज कैसे कहिये ? आकाशते भी अधिक सूक्ष्म परमउत्तम अनुभवकरि उपलब्ध है, नित्य प्राप्त है, तिसको बीजभाव कहना नहीं बनता ॥ हे रामजी ! जो शांत सूक्ष्म सदा प्रकाशसत्ता है, अरु दृश्य जगत् जिसविषे असत्‌रूप है, तिसको बीजरूप कैसे कहिये ? जो बीजरूप कहना नहीं बनता तब तिसते जगत् कैसे कहिये ? आकाशते अधिक सूक्ष्म निर्मल परमपदविषे सुमेरु समुद्र आकाश आदिक जगत् नहीं बनता, जो किंचन अरु अकिंचन है, निराकार सूक्ष्मकी नाईं सत्ता है, तिसविषे विद्यमान जगत् कैसे होवै ? महासूक्ष्मरूप है, दृश्य तिसविषे विरुद्धरूप है, जैसे धूपविषे छाया नहीं, जैसे सूर्यविषे अंधकार नहीं, जैसे अग्निविषे बर्फ नहीं, जैसे अणुविषे सुमेरु नहीं होता, तैसे आत्माविषे जगत् नहीं होता, सत्यरूप आत्माविषे असत्यरूप जगत् कैसे होवै ? वटका बीज भी साकाररूप होताहै, अरु निराकाररूप आत्मा विषे साकाररूप जगत् होना अयुक्त है ॥ हे रामजी ! कारण दो प्रकारका होता है, एक समवायिकारण, दूसरा निमित्तकारण है, सो आत्मा दोनों कारणभावते रहित है, निमित्तकारण तब होताहै, जब कार्यते कर्ता भिन्न होता है, आत्मा अद्वैत है, तिसते निकट दूसरी वस्तु हैही नहीं, कर्त्ता कैसे होवै, अरु किसका होवै ? सहकारी भी नहीं, जिसकरि कार्यको करै, मन अरु इंद्रियहूते रहित निराकार अविकृतरूप है, अरु समवायिकारण भी परिणामकरिकै होता है, जैसे वटबीज परिणामकारि वृक्ष होता है, सो आत्मा अच्युतरूप है, परिणामको कदाचित् प्राप्त नहीं होता, समवायिकारण कैसे होवै ? जायते, अस्ति, वर्धते, विपरिणमते, क्षीयते, नश्यति इन षट् विकारहूते रहित निर्विकार आत्मा जगत्का कारण कैसे होवै ? ताते यह जगत् अकारणरूप भ्रांतिकरिकै भासताहै, जैसे आकाशविषे

नीलता अरु सीपीविषे रूपा भासता है, जैसे निद्रादोषकरिकै स्वप्नदृष्टि भासती है, तैसे यह जगत् भ्रांतिकरिकै भासता है, जब स्वरूप विषे जागै तब जगद्भ्रम मिटि जाता है, ताते कारण कार्य भ्रमको त्यागिकरि अपने स्वरूपविषे स्थित होहु, दुर्बोधकरि संकल्परचना हुई है, तिसको त्यागि करि आदि मध्य अरु अंतते रहित जो सत्ता है, तिसविषे स्थित होहु, तब जगद्भ्रम मिटि जावै ॥ इति श्रीयोगवासिष्ठे स्थितिप्रकरणे जगन्निराकरणवर्णनं नाम प्रथमः सर्गः ॥ १ ॥ वसिष्ठ उवाच ॥ हे देवताविषे श्रेष्ठ रामजी ! बीजते अंकुरवत् आत्माते जगत्का होना अंगीकार करिये तौ नहीं बनता, आत्मा सर्व कल्पनाते रहित महाचैतन्य निर्मल आकाशवत् है, तिसको जगत्का बीज कैसे मानिये ? बीज परिणामकरि अंकुर होता है, अरु कारण समवायिकरि होता है, आत्माविषे समवायि अरु निमित्त सहकारी कदाचित् नहीं बनते, जैसे वंध्यास्त्रीका संतान किसीने नहीं देखा, तैसे आत्माते जगत् नहीं होता, जो समवायि अरु निमित्तकारणविना सहकारी पदार्थ भासै, तौ जानिये कि, यह है नहीं, भ्रांतिमात्र भासता है, आत्मसत्ता अपने आपविषे स्थित है, सृष्टि स्थिति प्रलय करिकै ब्रह्मसत्ताही अपने आपविषे स्थित है, जो इसप्रकार स्थित है, तौ कारणकार्यका क्रम कैसे होवै ? जो कारणकार्यका भाव न हुआ तौ पृथ्वी आदिक भूत कहां ते उपजैं ? कहूं हैं भी नहीं, अरु जो कारण कार्य मानिये तौ पूर्व जो विकार कहे हैं; तिनका दूषण आता है; ताते न कोऊ कारण है; न कार्य है; कारणकार्यविना जो पदार्थ भासै तिसको सत्रूप जानै सो मूर्ख बालक है, वह विवेकते रहित है, ताते वह जगत् न आगे था; न अब है; न पाछे होवैगा स्वच्छ चिदाकाश सत्ता अपने आपविषे स्थित है; जब जगत्का अत्यन्ताभाव होता है; तब संपूर्ण ब्रह्मही दृष्टि आता है; जैसे समुद्रविषे तरंग भासते हैं, तैसे आत्माविषे जगत् भासता है, अन्यथा कारणकार्यभाव कोऊ नहीं, प्रागभाव अरु प्रध्वंसाभाव अन्योन्याभाव कोऊ नहीं. प्रागभाव कहिये जो प्रथम न था, जैसे प्रथम पुत्र नहीं होता; अरु पाछे उत्पन्न होता है, जैसे मृत्तिकासों घट उत्पन्न होता है, अरु प्रध्वंसाभाव वह है, जो प्रथम होकरि नष्ट हो जाता है; जैसे घट था, अरु नष्ट हो गया; अरु अन्योन्याभाव कहिये जैसे घटविषे पटका

अभाव है अरु पटविषे घटका अभाव है, यह तीन प्रकारका भाव जिसके हृदयविषे है, तिसकरि जगत् दृढ होता है; उसको शांति नहीं प्राप्त होती जब जगत्का अत्यंताभाव दीखता है; तब चित्त शांतिवान् होता है, सो जगत्के अत्यंताभावका इस युक्तिविना और उपाय कोई नहीं अरु अशेष जगत्की निवृत्तिविना मुक्ति नहीं होती, सूर्यते आदि लेकरि जितना कछु प्रकाश है, अरु पृथ्वी आदिक तत्त्व हैं, अरु क्षण वर्ष कल्प आदिक जो काल है, यह मैं हौं, यह और है, अरु रूप अलोक मन संस्कार इत्यादिक जगत सब संकल्पमात्र है, कल्प अरु कल्पक ब्रह्मांड अरु ब्रह्मा अरु विष्णु रुद्र इंद्र कीटते आदि लेकरि जेता कछु जगज्जाल है, सो उपज उपज अंतर्धान हो जाता है, महाचैतन्य परम आकाशविषे अनंत वृत्ति उठती हैं, जैसे जगत्के पूर्व शांत सत्ता थी, तैसे तू अब भी जान, अपर कछु हुआ नहीं, परमाणुका सहस्रांश होवे, तिसकी नाई सूक्ष्म चित्तकलाहै, तिस चित्तकलाविषे अनंत कोटि सृष्टियां स्थित हैं, वही चित्तसत्ता फुरनेकरि जगत्रूप हो भासती है, अरु प्रकाशरूप है, निराकार शांतरूप है, न उदय होता है, न अस्त होता है, न आता है, न जाता है, जैसे शिलाविषे रेखा होती है, तैसे आत्माविषे जगत है; जैसे आकाशविषे आकाशसत्ता फुरती है, तैसे आत्माविषे जगत् फुरता है, अरु आत्माहीविषे जगत् स्थित है, निराकार निर्विकार रूप विज्ञानघनसत्ता अपने आपविषे स्थित है, उदय अरु अस्तते रहित विस्तृतरूप है ॥ हे रामजी ! जो सहकारी कारण कोऊ न हुआ, तौ जगत् शून्य हुआ, क्योंकि ऐसे जाननेते सर्व कलंककलना शांत हो जाती है, दीर्घ निद्राविषे सोया है, तिसका अभावकरिकै ज्ञानभूमिकाको प्राप्त होहु, जागेते निःशोकपद प्राप्त होवैगा ॥ इति श्रीयोगवासिष्ठे स्थितिप्रकरणे स्मृतिबीजोपन्यासो नाम द्वितीयः सर्गः ॥ २ ॥ राम उवाच ॥ हे भगवन् ! महाप्रलयके अंतविषे अरु सृष्टिके आदिविषे जो प्रजापति होता है, सो जगत्को पूर्वकी स्मृतिकरिकै तिसी भांति रचता है, तौ जगत् स्मृतिरूप क्यों न होवै ? ॥ वसिष्ठ उवाच ॥ हे रामजी ! महाप्रलयके आदिविषे जो प्रजापति होता है, अरु वह स्मरण करिकै पूर्वकी नाई जगत्को रचता है, ऐसे मानिये तौ नहीं बनता, काहेते कि, महाप्रलयविषे प्रजापति कहां रहता है, जो आपही

न रहै, तिसकी स्मृति कैसी मानिये ? जैसे आकाशविषे वृक्ष नहीं होता, तैसे महाप्रलयविषे प्रजापति नहीं होता ॥ राम उवाच ॥ हे ब्रह्मण्य ! जगत्के आदिविषे जो ब्रह्मा था, अरु तिसने जगत्को रचा था, महाप्रलयविषे तिसकी स्मृतिका नाश तौ नहीं होता, सुषुप्तितें उठेकी नाईं बहुरि स्मृतिकरि जगत्को रचता है, तौ बनताहै, तुम कैसे कहते हौ कि, नहीं बनता ॥ वसिष्ठ उवाच ॥ हे शुभव्रत रामजी ! महाप्रलयके पूर्व जो ब्रह्मादिक होते हैं, सो महाप्रलयविषे सब निर्वाण हो जाते हैं. अर्थ यह कि, विदेह मुक्त होते हैं, ब्रह्मतत्त्वविषे लीन होते हैं, जो स्मृति करनेवाले अंतर्धान हो गये तौ स्मृति कहां रही, जो स्मृति निर्मूल भई, तौ तिसको जगत्का कारण कैसे कहिये ? महाप्रलय तिसका नाम है, जहां सर्व शब्द अर्थसहित निर्मूल हो जाते हैं, जहां सर्व अंतर्धान हो गये तहां स्मृति किसकी कहिये ? जो स्मृतिका अभाव भया, तौ कारण किसका किसकी नाईं कहिये? ताते सर्व जगत चित्तके फुरनेमात्र है, जब महा प्रलय होता है, तब सब यत्नविना मोक्षभागी होते हैं, जो आत्मज्ञान होवै तो जगत्के होते भी मोक्षभागी होते हैं अरु जो आत्मज्ञान नहीं होवै तौ जगत् दृढ होता है, निवृत्त नहीं होता, जब दृश्य जगत्का अभाव होवै, तब स्वच्छ चैतन्य सत्ता प्रकाशती है, सो आदिअंतते रहित है, जगत् भी सब वहीरूप भासता है, अनादिसिद्ध ब्रह्मतत्त्वही प्रकाशता है तिसविषे जो, आदि संवेदन फुरता है, सो ब्रह्मरूप है, अंतवाहक देह विराट् जगत हो भासता है, तिसका एक परमाणुरूप यह तीनों जगत् हैं, तिसविषे देश, काल, क्रिया, द्रव्य, दिन, रात्रि क्रम हुआ है, बहुरि तिसके अणुविषे जगत् पडे फुरते हैं, सो क्या है ? सब संकल्परूप है, ब्रह्मसत्ताका प्रकाश है, जो प्रबुद्ध आत्मज्ञानी है, तिसको सब जगत एक ब्रह्मरूप हो भासता है, अरु जो अज्ञानी है, तिसके चित्तविषे अनेक प्रकार जगत्की भावना होती है; द्वैतभावनाकरिकै वह पड़ा भ्रमता है, जैसे इस ब्रह्मांडके अनेक जीव परमाणु हैं, तिनके अंतर अनंत सृष्टियाँ हैं, तिनके अंतर और अनंत स्रष्टा हैं, तैसे और जो अनंत स्रष्टा हैं, तिनके अंतर और अनंत सृष्टियाँ फुरती हैं, सो ब्रह्मतत्वका प्रकाश है, जैसे बडे स्तंभविषे अनेक पुतलियाँ शिल्पी कल्पै तिसके अंतर और अनेक पुतलियाँ कल्पै, तिनके अंतर और अनेक पुतलियाँ

होवैं तैसे परमाणुपरमाणुके अंतर त्रिलोकी स्थित है, सो अभिन्नरूप है और कछु हुआ नहीं जैसे पहाडके अंतर्गत असंख्य परमाणु होते हैं, सो तिसकेसाथ अभिन्नरूप हैं, तैसे ब्रह्मरूपी महासुमेरु है, तिसके अंतर अनेक जगतरूपी परमाणु हैं, सो अभिन्नरूप हैं॥ हे रामजी ! सूर्यहूकी किरणका समूह होवै तिनविषे सूक्ष्म त्रसरेणु होते हैं; तिनकी संख्या करनेको कोऊ समर्थ भी होवै; परंतु आदि अंतते रहित जो आत्मरूपी सूर्य है तिसके त्रिलोकरूपी परमाणुकी संख्या करनेको कोऊ समर्थ नहीं; जैसे समुद्रविषे जलते परमाणु होते हैं, जैसे पृथ्वीविषे धूरके परमाणु होते हैं, सो असंख्य हैं तैसे आत्मविषे असंख्य परमाणु सृष्टियाँ हैं, जैसे आकाश शून्यरूप है तैसे आत्मा चिदाकाश जगत्रूप है; यह जो मैंने उसको सृष्टि कही है, जो इनको तू जगत् शब्दकरि जानैगा, तौ अज्ञानबुद्धि है अरु दुःख भ्रमको देखैगा, अरु जो इनको ब्रह्मशब्दका अर्थकरि जानैगा तौ इस बुद्धिकारि परमसारको प्राप्त होवैगा; सर्व विश्व ब्रह्मते फुरता है, अरु विज्ञानघन ब्रह्मरूप है और द्वैत कछु हुआ नहीं, जब जागैगा तब तुझको ऐसेही भासैगा ॥ इति श्रीयोगवासिष्ठे स्थिति प्रकरणे जगदनंतवर्णनं नाम तृतीयःसर्गः ॥ ३ ॥ वसिष्ठ उवाच ॥ हे रामजी ! इंद्रियनका जो ग्राम है तिसकेसाथ युद्ध करना, तिनका जीतना सो संसाररूपी समुद्रके पार करनेको बेड़ा है. अर्थ यह कि, इंद्रियनहूको जीतना मोक्षकाकारण है और किसी क्रम उपायकरि संसारसमुद्र तरा नहीं जाता, संतका संग करना, अरु सच्छास्त्रका विचारना, इसकरि जब आत्मतत्त्वका बोध होता है, तबइंद्रियनका जीतना होता है, अरु जगत्का अत्यंत अभाव होता है, जबलग संसारका अत्यंत अभाव नही होता, तबलग आत्मबोध नहीं होता, यह मैंने तुझको क्रम कहा है, सो संसारसमुद्र तरनेका उपाय है, बहुत कहनेते क्या है ? सब कर्मका बीज मन है, मनके छेदेते सब जगत्का छेद होता है, जब मनरूपी बीज नष्ट होता है, तब जगत्रूपी अंकुर भी नष्ट हो जाता है, सर्व जगत् मनका रूप है, इसके अभावका उपाय करौ, मलिन मनते अनेक जन्मके समूह उत्पन्न होते हैं, इसके जीतनेते सर्व लोकमें जय होता है, सब जगत् मनकरिकै हुआ है, मनरहित हुएते देह भी नहीं भासता, जब मनसों दृश्यका अभाव होता है

तव मन मृतक हो जाता है, और उपाय कोऊ नहीं॥ हे रामजी! मनरूपी पिशाच है, तिसका नाश और उपाय किसीकरि नहीं होता, अनेक कल्प बीतगये हैं, अरु बीतजाँय, तव भी नाश नहीं होता, ताते जवलग दृश्यमान् है, तवलग इसका उपाय करै, जगत्का अत्यंत अभाव चिंतवना अरु स्वरूप आत्माका अभ्यास करना, यह परम औषध है, इस उपायकरि मनरूपी द्रष्टा नष्ट होता है, जबलग मन नष्ट नहीं होता, तव लग मनके मोहकरि जन्ममरणको पावैगा, जव ईश्वर परमात्माकी प्रसन्नता होती है, तव मन बंधनते मुक्त होता है, संपूर्ण जगत् मनके फुरनेकरि भासता है, जैसे आकाशविषे शून्यता भासती है, अथवा जैसे गंधर्वनगर भासता है, तैसे संपूर्ण जगत् मनविषे भासता है, जैसे पुष्पमें सुगंध रहत है, जैसे तिलमें तेल रहतता है, जैसे गुणीमें गुण रहता है, जैसे धर्मीमें धर्म रहता है, तैसे यह सत् असत् स्थूल सूक्ष्म कारण कार्यरूप जगत् मनमें रहता है, जैसे समुद्रमें तरंग फुरते हैं, जैसे आकाशमें दूसरा चंद्रमा फुरताहै, जैसे मरुस्थलमें मृगतृष्णाका जल फुरता है, तैसे चित्तविषे जगत् फुरताहै, जैसे सूर्यविषे किरणैं हैं, जैसे तेजविषे प्रकाश है, जैसे अग्निविषे उष्णता है, तैसे मनविषे जगत् है, जैसे बर्फविषे शीतलता है, जैसे आकाशविषे शून्यता है, जैसे पवनाविषे स्पंदता है तैसे मनविषे जगत् है, संपूर्ण जगत् मनरूप है, अरु मन जगत्रूप है, परस्पर एक रूप है, दोनोंमेंते एक नष्ट होवै तव दोनों नष्ट हो जाते हैं, जव जगत् नष्ट होवै, तव मन भी नष्ट हो जाता है, जैसे वृक्षके नष्ट हुएते पत्र, टास, फूल, फल सभी नष्ट हो जाते हैं, फूलफलके नष्ट हुएते वृक्ष नष्ट नहीं होता॥ इति श्रीयोगवासिष्ठे स्थितिप्रकरणे अंकुरवर्णनं नाम चतुर्थः सर्गः ॥ ४ ॥ ॥ राम उवाच ॥ हे भगवन्! सर्व धर्मोंके वेत्ता! पूर्व अपरके ज्ञाता! मनके फुरणेकरिकै जगत् कैसे फुरता है? अरु कैसे भया है? जैसे प्राप्त भया है तैसे दृष्टांतदृष्टिकरिकै मुझको कहो॥ वसिष्ठ उवाच ॥ हे रामजी! जैसे इंद्र ब्राह्मणके पुत्रहूकी दश सृष्टियाँ होत भई अरु दशही ब्रह्मा होत भये, सो मनके फुरणेते उपजिकरि मनके फुरणेविषे स्थित भये, अरु जैसे लवणराजाको इंद्रजालकी मायाकरिकै चंडालकी प्रतिमा दृढ होकरि भासी, तैसे यह जगत् मनमें फुरणेविषे स्थित भया है, जैसे भार्गव शुक्र मनके फुरणेकरि चिरकाल स्वर्गको भोगता रहा,

अरु अपर अनेक भ्रम देखे, सो मनहीका भ्रम दृष्ट होकारि भासा, तैसे यह जगत् मनके भ्रमकारि स्थित भया है ॥ राम उवाच ॥ हे भगवन् ! भृगुऋषीश्वरके पुत्रने मनके भ्रमकारि कैसे स्वर्गसुख भोगे हैं ? अरु कैसे भोगका अधिपति हुआ है ? अरु कैसे संसारी होकरि भ्रमको देखता भया है ? ॥ वसिष्ठ उवाच ॥ हे रामजी ! भृगुके पुत्रका वृत्तांत सुन, भृगु अरु कालका संवाद मंदराचल पर्वतविषे हुआ है ॥ एक कालमें भृगु अरु शुक्र दोनों मंदराचल पर्वतविषे स्थित थे, चंद्रमाकी नाईं शुक्रका मुख बड़ा प्रकाशी है, अरु भृगुजी बड़ा उदार आत्मा तहां स्थित है, जहां कल्पवृक्ष अरु मंदारवृक्ष आदिक बहुत सुंदर स्थान दिव्य मूर्ति हैं, तहाँ भृगुजी तप करते थे, अरु शुक्रजी टहल करते थे, एक समय भृगुजी निर्विकल्प समाधिमें स्थित भये, तब निर्मलमूर्ति शुक्र एकांत जाय बैठे, कंठविषे मंदार कल्पवृक्षके फूलनकी माला पहरे हुये, सो शुक्र विद्या अरु अविद्याके मध्यमें स्थित था, जैसे त्रिशंकु राजा चंडाल था, सो विश्वामित्रके वरको पायके स्वर्गमें गया, तब देवतोंने अनादर किया, स्वर्गते गिराय दिया कि, यह चंडाल है, तब विश्वामित्रने देखिकै कहा कि, यहांही खड़े रहौ, तब वह भूमि अरु आकाशके मध्य स्थित भया, तैसे शुक्र बैठा है और एक महासुंदर अप्सरा तिसके ऊर्ध्व स्वर्गकी ओर चली जाती देखत भया, जैसे लक्ष्मीकी ओर विष्णुजी देखैं, तैसे अप्सराको देखा, जो महासुंदर अनेक प्रकारके भूषण पहरे हुए थी अरु दिव्य वस्त्र धारण किये थी और जिसके शरीरसे महासुगंध उठती थी, जिसकरि आकाशमार्ग भी सुगंधित भया है, पवन जो तिसको स्पर्श कर चलता है, तिसकी सुगंधि पसरती है, अरु महामदकारि उसके घूर्ण नेत्र हैं, ऐसी अप्सराको देखिकै शुक्रका मन क्षोभायमान हुआ, जैसे पूर्णमासीके चंद्रमाको देखिकै क्षीरसमुद्र क्षोभित होता है, तैसे उसकी वृत्ति और मार्गते रहित होकारि अप्सरा विषे जाय स्थित भई, कामदेवका बाण जो है स्मृति करना, सो आय लगा ॥ इति श्रीयोगवासिष्ठे स्थितिप्रकरणे भार्गवसंविद्गमन वर्णनं नाम पंचमः सर्गः ॥ ५ ॥ ॥ वसिष्ठ उवाच ॥ हे रामजी ! इसप्रकार उस अप्सराको देखके नेत्र मूँदता भया मूँदके मनोराज्यको पसारत भया, चिंतने लगा कि, यह जो ललना मृगनयनी स्वर्गको गई है, मैं तिसके निकट जाय प्राप्त होऊँ, ऐसे विचारिके उसके

पाछे चला, जाते जाते मनसों स्वर्गमें जाय प्राप्त भया, तहां मंदार कल्पतरु हैं, तिनको फूलकी सुगंधतासहित देखता भया, द्रवत स्वर्णकी नाईं शरीर जिनके हैं, ऐसे देवता अरु हास्य विलाससंयुक्त हरिणकी नाईं नेत्र वाली स्त्रियां देखता भया, मणिके समूह देखे, अन्योन्य परस्पर उनविषे प्रतिबिंब पडते हैं, विश्वरूपकी उपमा स्वर्गलोकमें देखी, मंद मंद पवन चलता है, मंदारवृक्षमें मंजरी प्रफुल्लित हैं, तहां अप्सरोंके गण विचरते हैं, आगे इंद्र भागमें गया, तौ ऐरावत हस्ती बडे मदसों मस्त खड़ा है, जिसने युद्धमें दंतनसे दैत्य चूर्ण किये हैं, अरु देवतोंके आगे अप्सरा गायन करती हैं, अरु स्वर्णके कमल लगे हुए हैं, तहां ब्रह्माके हंस अरु सारस पक्षी विचरते हैं, गंगाका प्रवाह चला जाता है, देवताके नायक तहां विश्राम करते हैं, बहुरि लोकपालके स्थान देखे, यम, चंद्रमा, सूर्य, इंद्र, वायु, अग्नि, लोकपाल सब देखता भया, महाज्वालावत् प्रकाश है जिनका, ऐसे देवताके समूह देखता भया, ऐरावतके दंतमें दैत्यनहूकी पंक्ति देखी, आगे देवता देखे, जो विमानपर आरूढ हुए फिरते हैं, भूषणसहित तिनके हार मणिकरिकै जडे हुए हैं, सुंदर विमानकी पंक्ति विचरती है, कहूं मंदारवृक्ष हैं, कहूं कल्पवृक्ष हैं, तिनके साथ सुंदर वल्लियां हैं, गंगाका प्रवाह चलता है, तहां अप्सरोंके गण बैठे हैं, कहूं सुगंधतालिये पवन चलता है, कहूं झरणेमेंते जल चलता है, सुंदर नंदनवन है, कहूं अप्सरा बैठी हैं, कहूं नारद आदिक बैठे हैं, अपर लोग जिनने पुण्य किये हैं, सो बैठे सुख भोगते हैं, विमानपर आरूढ हुए फिरते हैं, कहूं इंद्रको अप्सरा सेवती हैं, कामदेवसों मस्त हैं शरीर जिनके, जैसे वनकी लता वनको सेवती हैं, तैसे अप्सरा इंद्रको सेवती हैं, जैसे कल्पवृक्षमें पके फल लगते हैं, तैसे रत्न अरु चिंतामणि लगे हैं, कहूं चंद्रकांतमणि स्रवती हैं, इसप्रकार मनसों स्वर्गकी रचना शुक्र देखता भया, कैसी रचना देखी, मानों त्रिलोकीकी रचना यहांही है ॥ तब शुक्रको देखिकै इंद्र उठ खडा हुआ, मानो दूसरा भृगु आया है, बड़े प्रकाश संयुक्त शुक्रकी मूर्त्तिको इंद्रने प्रणाम किया, अरु हाथ ग्रहण करिकै अपने पास बैठाया, अरु कहत भया ॥ हे शुक्रजी ! आज हमारे धन्य भाग्य हैं, जो तुम्हारा आगमन भया है, आज हमारा स्वर्ग तुम्हारे आनेसे सफल शोभित निर्मल भया है, अब तुम चिरपर्यंत

यहांही स्थित होहु, जब इंद्रने ऐसे कहा तब शुक्रजी शोभत भये, तिसको देखिकै सुरके समूह प्रणाम करत भये कि, भृगुका पुत्र शुक्रजी आया है ॥ हे रामजी ! इसप्रकार शुक्रजी मनसों इंद्रके पास जाय बैठा ॥ इति श्रीयोगवासिष्ठे स्थितिप्रकरणे भार्गवमनोराज्यवर्णनं नाम षष्ठः सर्गः ॥ ६ ॥ वसिष्ठ उवाच ॥ हे रामजी ! जब इसप्रकार शुक्रजी इंद्रके पास जाय बैठा, तब अपना जो कोऊ निज भाव था, तिसको भुलाय दिया, वह जो मंदराचल पर्वतपै अपना शरीर था, सो भूल गया, अरु वासनासों मनोराज्यका शरीर दृढ हो गया, एक मुहूर्तपर्यंत इंद्रके पास बैठा रहा, परंतु चित्त उस अप्सरामें रहा, तिसके अनंतर उठ खडा हुआ, स्वर्गको देखने लगा, देवताओंने कहा कि,चलौ स्वर्गकी रचना देखौ,तब शुक्रजी देखत देखत जहां वह अप्सरा थी तहाँ गये, अरु और भी अप्सरा बहुत थीं, तिनमें वह अप्सरा भी बैठी है, जिसके मृगके ऐसे नेत्र हैं तिसको शुक्रजीने देखा, जैसे चंद्रमा चांदनीको देखै, तैसे देखके शुक्रका शरीर द्रवीभूत होगया, प्रस्वेदसों पूर्ण होत भया, जैसे चंद्रमाको देखिकै चंद्रकांतमणि द्रवीभूत होता है, तैसे शरीर हो गया, कामदेवके बाण तिसके हृदयमें आय लगे, तिसकरि व्याकुल हो गया, अरु शुक्रको देखिकै उसका चित्त भी मोहित हो गया, शुक्र विषे कामका बाण उसको भी आय लगा, वह भी कामसों पूर्ण हो गई, जैसे वर्षाकालकी नदी जलसों पूर्ण होती है, तैसे परस्पर स्नेह बढा, तब शुक्रजीने मनसों तहां तमको रचा, तब सब स्थानमें तम हो गया; जैसे लोकालोक पर्वतके तटाविषे तम होता है, तैसा सूर्यका अभाव हो गया, तब भूतजात सब अपने अपने स्थानमें गये,जैसे दिनके अभाव हुए पशुपक्षी अपने अपने गृहको जाते हैं, तैसे तमके होनेते सब बनको चले गये, तब वह अप्सरा शुक्रके निकट आई, शुक्रजी श्वेत आसनपर बैठ गया, अप्सरा भी चरणके निकट बैठी; सुंदर वस्त्र अरु भूषण पहिरे हुए हैं, स्नेहकरि दोनों कामवश हुए; तब अप्सरा मधुरवाणीसों कहत भई ॥ हे नाथ ! मैं निर्बल होकर तुम्हारी शरण आई हौं, मुझको कामदेव दहन करता है, तुम रक्षा करौ, मैं इसकरि पूर्ण हो गई हौं, अरु स्नेहरूपी जो रस है, तिसको सोई जानता है, जिसको प्राप्त भया है ॥ जिसको रसका स्वाद नहीं आया, सो क्या जानै ? हे साधु ! ऐसा सुख

त्रिलोकीमें और कोऊ नहीं, जैसा सुख परस्पर स्नेहसों होता है, अब तुम्हारे चरणोंको पायके आनंदवती भई हौं, जैसे चंद्रमाको पायकै कमलिनी आनंदवती होती है, जैसे चकोर चंद्रमाकी किरणोंको पायके आनंदवान् होता है, तैसे मुझको स्पर्श करिकै आनंद होवैगा, जब इसप्रकार अप्सराने कहा, तब दोनों कामके वश होइकरि क्रीडा करने लगे ॥ इति श्रीयोगवासिष्ठे स्थितिप्रकरणे भार्गव संगमवर्णनं नाम सप्तमः सर्गः ॥ ७ ॥ वसिष्ठ उवाच ॥ हे रामजी ! इसप्रकार तिसको पायके शुक्र आपको आनंदवान् मानता भया; मंदार अरु कल्पवृक्षके नीचे क्रीडा करते हैं, दिव्य वस्त्र अरु भूषण फूलोंकी माला पहिरे हुये, वन बगीचे अरु किनारेविषे क्रीडा करते हैं, चंद्रमाकी किरणोंके मार्गसों अमृतपान करते रहैं, स्वर्गमें विचरें, विद्याधरोंके गणन साथ रहैं, तिनके स्थानमें नंदनवन इत्यादिक स्थानविषे क्रीडा करत भोगते कैलास पर्वतमें गये; अप्सरासहित तहां वनकुंजमें फिरते रहैं, बहुरि लोकालोक पर्वतपर क्रीडा करते भये, मंदराचल पर्वतके कुंजमें विचरते भये, श्वेतद्वीपविषे रहे, अर्धशत युगपर्यंत बहुरि गंधर्वके नगरविषे रहे, इंद्रके वनविषे रहे, बत्तीस युगपर्यंत स्वर्गमें रहे, जब पुण्य क्षीण भया, तब भूमिलोकमें गिराय दिये गये, गिरते गिरते तिनके शरीर टूटि गये, जैसे झरणेमेंते जल बंद होवै, तैसे शरीर अंतर्धान हो गया; तब चिंतासंयुक्त उनकी पुर्यष्टक आकाशमें निराधार हो रही, जैसे पक्षी नीड विना स्थित है, तैसे उनकी पुर्यष्टक चिंतासहित निराधार भई, तब वासनारूप दोनों चन्द्रमाकी किरणोंविषे जाय स्थित हुए, बहुरि किरणोंद्वारा धान्यमें आय निवास किया, तब दशारण्य नाम ब्राह्मण था, तिसने धान्यका भोजन किया, तब वह चावल वीर्य होकरि ब्राह्मणीके गर्भमें जाय रहा, फेर वह धान्यका मालवदेशका राजा भोजन करत भया, तिसके वीर्यद्वारा अप्सरा स्त्रीके उदरविषे जाय स्थित भई; अरु दशारण्य ब्राह्मणके गृहमें शुक्र पुत्र हुआ; अरु वह मालव देशके राजाके यहां अप्सरा पुत्री हुई, तब क्रमकरिकै बडी हुई; जब षोड़शवर्षकी भई, पिताके गृहविषे यौवनवती हुई; तब महादेवकी पूजा करत भई और प्रार्थना करी कि, हे देव ! मुझको पूर्वके भर्त्तारकी प्राप्ति कर देहु, इसप्रकार नित्य पूजन करै, अरु वर मांगै, वहां वह यौवनवान् हुआ, यहां यह यौवनवती

हुई, तब राजाने यज्ञका आरंभ किया, तिसमें सब राजा अरु ब्राह्मण आये, तहां दशारण्य ब्राह्मण पुत्रसहित आया, तब राजपुत्रीने तिस पूर्वजन्मके भर्त्तारको देखा, जैसे चंद्रमाको देखिकै चंद्रकांतमणि द्रवीभूत होता है, तैसे राजकन्या होगई, अरु स्नेहसों नेत्रते जल चलने लगा, तब राजकन्या दशारण्यके पुत्रको देखिकै तिसके कंठविषे फूलनकी माला डारिकै अपना भर्त्तार किया, तब यज्ञमें देखिकै राजा आश्चर्यमान हुआ, अरु निश्चय किया कि, भला हुआ; बहुरि क्रमसों विवाह किया, तब राजा, पुत्री अरु जँवाईको राज्य देके आप वनको तप करनेके लिये चला गया, यहां यह पुरुष अरु स्त्री मालवदेशका राज्य करने लगे, चिरकाल राज्य करते रहे, बहुरि दोनों वृद्ध भये, शरीर जर्जरीभूत हो गये, तब तिसको शरीरमें वैराग्य हुआ कि, स्त्री महादुःखरूप है, सो दुःखरूप अवस्था देखिकै समानवैराग्य हुआ, विशेष वैराग्य न उपजा, जर्जरीभूत अंगविषे सेवनेते अशक्त भये; परंतु तृष्णा निवृत्त नहीं भई, राजा मृत्यु अवस्थाको प्राप्त भया, सो बांधवोंने जलाय दिया, यह महा अंधकूप मोहविषे ज्ञानकी प्राप्तिविना जाय पड़ा ॥ हे रामजी! मृत्यु मूर्च्छाके अनंतर परलोक तिसको भासि आया, तहां कर्मके अनुसार सुखदुःखको भोगिकै अंग वंग देशमें धीमर हुआ, तहां अपने धीमरकर्म करत भया; बहुरि वृद्ध अवस्था आई, तब शरीरविषे वैराग्य हुआ कि, यह संसार महादुःखरूप है, ऐसे जानिकै सूर्यभगवान्का तप करने लगा, जब मृतक हुआ तब तपके वशते सूर्यवंशविषे राजा भया सो भावनाके वशते तहां कछुक ज्ञानवान् हुआ, योग करै, अरु वेद पढै, योगकी भावनाकरि जो शरीर छूटा, तब बड़ा गुरु हुआ, सर्वको उपदेश करै, मंत्रसिद्धि करता भया, वेदमें बहुत परिपक्व हुआ, तब मंत्रके वशते विद्याधर हुआ, चिरकालपर्यंत विद्याधरमें एक कल्पपर्यंत रहा, जब कल्पका अंत भया, तब सशरीर अंतर्धान होगया, तब इसका पवनरूपी शरीर वासनासहित हो रहा, जब ब्रह्माकी रात्रि क्षय हुई, अरु दिन हुआ बहुरि सृष्टि रची, तब एक मुनीश्वरके गृहमें पुत्र हुआ, तहां बडा तप करत भया; बहुरि सुमेरु पर्वतपर जाय स्थित भया, एक मन्वंतरपर्यंत वहां रहा, इकहतर चौकड़ी युग व्यतीत भई, तहां भोगकरि हरणीका पुत्र हुआ, अरु मनुष्यका आकार तहाँ रहा, तिस

पुत्रके स्नेहसों मोहको प्राप्त भया कि, जो इस मेरे पुत्रको धन होवै, गुण आयुर्दाय बल बहुत होवे, निरंतर यही चिंतन करने लगा, इस कारणते अपने तप धर्मते विरक्त हुआ, आयुष्य क्षीण भया, मृतरूप सर्पने ग्रास लिया, तपोभ्रष्ट निमित्त अरु तपके बलकरि शरीर छूटा, तब भोगकी चिंतासंयुक्त मद्रदेशके राजाके गृहविषे पुत्र हुआ, तिस देशका राजा भया, चिरपर्यंत राज भोगकरि वृद्ध अवस्थाको प्राप्त भया, शरीर जर्जरीभूत हो गया, तहां तपकी अभिलाषामें शरीर छूटा, तिसकारि तपेश्वर गृहविषे पुत्र हुआ अब संतापते रहित होइकारि गंगाजीके किनारेपर तप करनेको लगा है ॥ हे रामजी ! इसप्रकार मनके फुरणेकरिकै शुक्र अनेक शरीरोंको भोगता भया ॥ इति श्रीयोगवासिष्ठे स्थितिप्रकरणे भार्गवोपाख्याने विविधजन्मवर्णनं नाम अष्टमः सर्गः ॥ ८ ॥

वसिष्ठ उवाच ॥ हे रामजी ! इसप्रकार शुक्र मनसों भ्रमता फिरा, तब भृगुके पास जो शरीर था, सो निर्जीव हुआ, पुर्यष्टक निकरि गई थी, पवन अरु धूपसों शरीर जर्जरीभूत हो गया, जैसे शूलते काटा वृक्ष गिर पडता है, तैसे शरीर गिर पड़ा, मन जो चंचल है सो भोगकी तृष्णासों बही गया था, जैसे हरिण वनविषे भ्रमता है, अथवा जैसे चक्रपर चढा बासन भ्रमता है, तैसे भ्रमते भ्रमांतरको देखा, जब मुनीश्वरके गृहमें जन्म लिया, तब चित्तमें विश्राम हुआ, गंगाके तटपर तप करने लगा, मंदराचल पर्वतवाला शरीर निरस हो गया, अस्थि चर्म मात्र शेष रह गया, अरु लोहू सूख गया, शरीरके रंध्रमार्गकरि पवन चलै, तब बांसुरीवत् शब्द होवै, मानो चेष्टाको त्यागिकै शरीर आनंदवान् हुआ है जब बड़ा पवन चलै तब भूमिविषे लोटने लगै, नेत्र आदिक जो रंध्र थे, सो गर्त गढेलेवत् हो गये; अरु मुख पसर गया, मानो अपने पूर्व स्वभावको देखिकै हँसता है, जब वर्षाकाल आवै, तब जलकरि पूर्ण हो जावै, अरु जल तिसविषे प्रवेश करि रंध्रके मार्गसो निकसै, जैसे झरणेसों जल निकसता है; तैसे निकसै, जब उष्णकाल आवै, तब धूपसों सूखि जावै, महाकाष्ठकी नाई वनविषे मौनरूप होकरि स्थित भया, अरु मृग पक्षी शरीरको नाश करत न भये; सो एक तौ यह कारण है कि, रागद्वेषते रहित पुण्य आश्रम था, तथा भृगुजी महातपस्वी तेजवान् थे, तिसके निकट कोऊ आय न

सकै, इस कारणतेदेहको नष्ट न करत भये, यहां शरीरकी यह अवस्था भई, अरु वहां शुक्र पवनके शरीरसों चेष्टा करत भया ॥
इति श्रीयोगवासिष्ठे स्थितिप्रकरणे भार्गवकलेवरवर्णनं नाम नवमः सर्गः ॥ ९ ॥ वसिष्ठ उवाच ॥ हे रामजी ! जब सहस्र वर्ष व्यतीत
भये, सो भूमि लोकके तीन लाख अरु साठ सहस्र वर्ष भये, तब भगवान् भृगुजी समाधिते उतरे, जागिकै देखते भये, तो अपने आगे
शुक्रका शरीर दृष्ट न आया, जब भली प्रकार नेत्र पसार देखा तब तहां देखा कि, कृश जैसा होयके शरीर गिर पडा है, तब जानत भया
कि, कालने इसको भक्षण किया है, शरीर धूप अरु वायु मेघकरि जर्जरीभूत हो गया है, नेत्र गढेलारूप हो गये हैं, शरीरमें कीट आय
स्थित भये हैं, जीवने आलयस्थान बनाये हैं, बुराण मक्खियां आती जाती हैं, श्वेतदंत निकसि आये हैं, मानौ शरीरकी दशाको
देखिकै हँसते हैं, मुख ग्रीवा महाभयानकरूप है, खपरी श्वेत हो गई है, नासिका श्रवणस्थान सब जर्जरीभूत हो गये हैं, वायु चलै
तब बांसुरीवत् बाजने लगते हैं, महा आश्चर्यरूप शरीर कृश होयके गिर पड़ा है, रागद्वेषते रहित होकरि स्थित भया है, मृग पक्षी
भक्षण न करते भए, सो एक तौ पुण्यस्थान, दूसरा भृगुजीका तेज था, इस कारणते हिंसक भक्षण न करत भये, शरीरकी यह
दशा देखिकै भृगुजी उठ खड़े हुए, क्रोधवान् होकरि कहने लगे कि, कालने क्या समझा है ? जो मेरे पुत्रको मारा है, शुक्र परम
तपस्वी अरु सृष्टिपर्यंत रहनेवाला था, सो विनाकाल मेरे पुत्रको क्यों मारा है ? यह कौन रीति है ? मैं कालको शाप देकर भस्म
करौंगा ! मेरे पुत्रको समयविना मारा है, तब कालका रूप जो काल है, सो अद्भुत शरीर धारिकरि आया, षण्मुख, षट्भुजा,
हाथविषे खड्ग, त्रिशूल अरु फाँसी, अरु कानमें मोती पहिरे हुए, मुखसों ज्वाला निकसती हैं, महाश्याम शरीर, अग्निवत् जिह्वा
है, कमलकी नाईं ज्वाला निकसती हैं, त्रिशूलके अग्रते अग्निकी लपटैं निकसती हैं, जैसे प्रलयकालके अग्निते धूम निकसता है,
तैसे श्याम शरीर बड़े पहाड़की नाईं उग्ररूप है, जहां चरण रक्खै तहां पृथ्वी पहाड़ कांपने लगैं, महाभयानकरूप काल भगवान्
भृगुऋषीश्वरके निकट आये, अरु भृगु जो महाप्रलयके समुद्रवत् क्रोधकरि पूर्ण था, तहां आगमन करि कहत भया ॥ हे मुनीश्वर !

जो मर्यादाके वेत्ता हैं, अरु परावर परमात्माके वेत्ता हैं, सो पुरुष क्रोधको नहीं प्राप्त होते, जो कोऊ क्रोध करनेको आवै, तौ भी मोहके वश होइकरि क्रोधवान् नहीं होते, तुम कारणविना काहेको मोहित होयके क्रोधको प्राप्त भये हौ ? तुम ब्रह्मतनय तपस्वी हौ, अरु हम नीतिके पालक हैं, हमारेकरि तुम पूजने योग्य हौ, यही नीतिकी इच्छा है, अरु तपके वलकरि तुम क्षोभ मत करौ, तुम्हारे शापकरि मैं भस्म भी नहीं होता, प्रलयकालका अग्नि भी मुझको दग्ध नहीं करि सकता, तौ तुम्हारे शापकरि मैं, कव भस्म होता हौं ? ॥ हे मुनीश्वर ! मैं तौ अनेक ब्रह्मांड भक्षण करि गया हौं, कई कोटि ब्रह्मा, विष्णु, रुद्र ग्रास लिये हैं, तेरा शाप मुझको क्या करि सकता है, जैसे आदिनीति ईश्वरने रची है, तैसे स्थित है, हम सबके भोक्ता हुए हैं, तुमसरीखे हमारा भोग हुए हैं, यह आदिनीति हुई है ॥ हे मुनीश्वर ! अग्नि स्वभावकरि ऊर्ध्वको जाता है, अरु जल स्वभावकरि अधःको जाता है, अरु भोग जो है, सो भोक्ताको प्राप्त होता सृष्टि सव कालके मुखमें प्राप्त होती है, आदि परमात्माकी नीति ऐसेही हुई है, जैसे रची है, तैसे स्थित है, अरु जो निष्कलंक ज्ञानदृष्टिकरि देखिये, तौ न कोऊ कर्ता है, न कोऊ भोक्ता है, न कारण है, न कार्य है, एक अद्वैतसत्ताही है, जो अज्ञानकलंक दृष्टिकरि देखिये, तौ कर्ता भोक्ता अनेक प्रकारके भ्रम भासते हैं ॥ हे ब्राह्मण ! कर्त्ता भोक्ताआदिक जो भ्रम है, सो असम्यक् ज्ञान करि होता है जव सम्यक् ज्ञान हुआ, तव कर्त्ता कार्य भोक्ता कोऊ नहीं, जैसे वृक्ष साथ पुष्प स्वभावते उपजि आते हैं, अरु स्वभावतेही नष्ट हो जाते हैं, तैसे भूतप्राणी सृष्टिविषे स्वाभाविक फुरि आते हैं, वहुरि स्वाभाविक रीतिसों नष्ट हो जाते हैं, ब्रह्मा उत्पन्न कर्त्ता है, वहुरि नष्ट कर्त्ता है, जैसे चंद्रमाका प्रतिबिंव जलविषे पड़ता है, जलके हिलनेकरि हिलता भासता है, ठहरनेकरि ठहरा भासता है, तैसे मनके फुरणेकरि आत्माविषे कर्तव्य भोक्तव्य भासता है, वास्तव कछु नहीं, मिथ्याही मनके फुरणेकरि लोकविषे कर्तव्य आदिक भासते हैं, जैसे जेवरीविषे सर्प भ्रमकरि भासता है, तैसे आत्माविषे कर्तव्य भोक्तव्य भ्रमकरिकै भासता है, वास्तव कछु नहीं ताते क्रोध मत करौ, यह दुष्ट कर्म आपदाका कारण है ॥ हे मुनीश्वर ! मैं जो तुझको यह वचन कहता हौं, सो अपनी विभुता अरु

अभिमान कारि नहीं कहता, यह स्वतःईश्वरकी नीति है, हम तिसीविषे स्थित हैं, जो बोधवान् पुरुष हैं, सो अपने प्रकृतिआचारविषे विचरते हैं, वे अभिमानकरिकै नहीं विचरते,जो कर्तव्यके वेत्ता हैं,सो बाह्य प्रकृत आचारको करते हैं, जैसा आनि प्राप्त होवै, अरु अंतरते सुषुप्तिकी नाई स्थित है, यह ज्ञानदृष्टि कहाँ, वह धैर्यता कहाँ, अरु उदारदृष्टि कहाँ जो शास्त्रकारि प्रसिद्ध है,तुम क्यों अंधकी नाई मोहमार्गविषे मोहित होते हौ ? ॥ हे साधु! तुम तौ त्रिकालदर्शी हौ, अविचारकरिकै मूर्खकी नाईं जगत्यंत्रविषे क्यों मोहको प्राप्त होते हौ ? तेरा पुत्र अपने कर्मनके फलको प्राप्त भया है, अरु तुम मूर्खकी नाईं मुझको शाप दिया चाहता है ॥ हे मुनीश्वर ! इस लोकविषे जीवनके दो दो शरीर हैं,एक मनरूप है,दूसरा अधिभूतरूप है अधिभूतरूप जड़ है, अत्यंत विनाशी है, जहां इसको मन प्रेरता है, तहां चला जाता है, आपते कछु कारि नहीं सकता, जैसे सारथी भला होता है, तौ रथको भले स्थान ले जाता है, अरु जो सारथी भलानहीं होता, तौ रथको दुःखके स्थान ले जाता है; तैसे जब मन भला होता है तब उत्तमलोकको प्राप्त करता है, जब दुष्ट होता है, तब नीच स्थानको प्राप्त करता है, जिसको मन असत् करता है, सो असत् भासता है, जिसको मन सत करता है, सो सत् भासता है, जैसा कमलका पत्ता है, तैसाही हो भासता है, जैसे माटीकी सेना बालक बनावते हैं, बहुरि भंग करते हैं, कबहूं सत् करते हैं,कबहूं असत् करते हैं, जैसे करते हैं, तैसे देखते हैं ॥ हे साधो! यह चित्तरूपी पुरुष है, जो चित्त करता है, सो किया होता है;जो चिंतन करता है, सो न किया होता, यह जो फुरणा है, यह देह है, यह नेत्र हैं, यह शिर है, ये अंग हैं इत्यादिक सब मनरूप है, जीव भी मनका नाम है, मनका जीवना जीव है,वही मनकी वृत्ति निश्चयरूप होती है, तब तिसका नाम बुद्धि होता है, अहंरूपको धरता है,तब तिसका नाम अहंकार होता है, देहको स्मरण करता है, तब तिसका नाम चित्त होता है, ताते पृथ्वीरूपशरीर कोऊ नहीं, मन दृढभावनाकारि शरीररूप होता है, सोई अधिभूत हो भासता है; जब शरीरकी भावनाको त्यागता है, तब चित्त परमपदको प्राप्त होता है, जेता कछु जगत् है, सो मनके फुरणेविषे स्थित है, जैसा मनका फुरणा होता है, तैसाही रूप हो भासता

है, अरु तेरा जो पुत्र था, शुक्र सो भी मनके फुरनेकरि अनेक स्थानको देखत भया, जब तुम समाधिविषे स्थित थे, तब विश्वाची देवसुंदरि जो अप्सरा थी तिसके पाछे मनकरि चला गया, इंद्रलोक स्वर्गको जाय प्राप्त भया, देवता होकरि मंदार वृक्षविषे विचरने लगा, पारिजात वृक्ष तमाल और नंदनवनविषे विचरता रहा; लोकपालहूंके स्थानविषे विचरा बत्तीस युगपर्यंत विश्वाची आप्सराके साथ विचरता रहा, जैसे भँवरा कमलको सेवता है, तैसे तीव्र संवेगकरि भोगता रहा, जब पुण्य क्षीण हुआ, तब तहांते गिराया गया, जैसे पका फल वृक्षते गिरता है, तब देवताका शरीर आकाशमार्गविषे अंतर्धान हो गया, भूमिलोकविषे आनि पडा धान्यविषे आय करि ब्राह्मणके वीर्यद्वारा ब्राह्मणीका पुत्र भया; मालवदेशका राज्य किया, बहुरि धीमरका जन्म पाया, बहुरि सूर्यवंशी राजा हुआ, बहुरि विद्याधर हुआ, कल्पपर्यंत विद्याधरविषे बुद्धिवान् रहा, इसप्रकार अनेक शरीरनको पायकरि अब गंगाके तटपर ब्राह्मणका पुत्र होकरि तप करता है, वसुदेव तिसका नाम है ॥ हे मुनिश्वर! इसप्रकार तेरा पुत्र वासनाकरिकै अनेक शरीर पाता रहा है, विंध्याचल पर्वतविषे गैब हुआ क्रांत देशविषे धीमर हुआ, तरंगित देशविषे राजा हुआ, क्रांत देशविषे हरिण हुआ, वनमें विचरा, बहुरि विद्यावान् गुरु हुआ, बहुरि विद्याधर श्रीमान् हुआ, बहुरि कुंडलादिक भुषणहूकरि संपन्न वडा ऐश्वर्यवान् गंधर्वहूंका मुनिनायक भूषण हूआ कल्पपर्यंत वहां रहा, जब प्रलय होने लगा, तब सब लोक पूर्व भस्म हो गये, जैसे अग्निविषे पतंग भस्म होते हैं, तब तेरा पुत्र निराधार निराकार वासना करिकै आकाशमार्गविषे भ्रमता रहा, जैसे आलयविना पक्षी रहता है, तैसे रहा, जब ब्रह्माकी रात्रि व्यतीत भई, तब सृष्टिकी रचना बनी, तब वह सत्युगविषे ब्राह्मणका बालक वसुदेव नाम गंगाके तटपर तप करता है, आठ सौ वर्ष तिसको तप करते बीते हैं, तू भी ज्ञानदृष्टिकरि देखैगा तौ सबही वृत्तांत उसका तुझको भास आवैगा, ताते देख कि, इसीप्रकार है, अथवा किसी और प्रकार है ? ॥ इति श्रीयोगवासिष्ठे स्थितिप्रकरणे कालवाक्य वर्णनं नाम दशमः सर्गः ॥ १० ॥ काल उवाच ॥ हे मुनीश्वर ! महातरंग उछलते हैं, अरु झनकार शब्द होते हैं, ऐसी गंगाके तटपर तेरा पुत्र तप करता है, शिरपर बड़ी जटा हैं, सर्व

इंद्रियके भ्रमको तिसने जीता है, जो तुमको इसके मनका विस्तार देखनेकी इच्छा है, तौ इन नेत्रनको मूँदिकरि ज्ञानके नेत्रनसों देखौ ॥ हे रामजी ! जब इसप्रकार जगत्के ईश्वर कालने कहा, कैसा काल है ? कि जिसकी समदृष्टि है तब मुनीश्वर चितवता भया, इन नेत्रनको मूँदिकरि ज्ञाननेत्रसे देखा; एक मुहूर्त्तविषे अपने पुत्रका सब वृतांत देखता भया, जैसे कोऊ अपनी बुद्धिविषे प्रतिबिंबको देखै, तैसे देखिकै बहुरि मंदराचल पर्वतपर जो भृगुशरीर था, तिसविषे प्रवेश किया, अंतवाहक शरीरकरि अरु अपने अग्रभागविषे काल भगवान्को देखता भया पुत्रको गंगाकेतटपरदेखा, आश्चर्यको प्राप्त हुआ, तब विकारदृष्टिको त्यागिकरि निर्मलदृष्टिसे वीतराग मुनीश्वर वचन कहत भया ॥ भृगुरुवाच ॥ हे भगवन् ! तीनहूँ कालके ज्ञाता ईश्वर ! हम बालक हैं, इसीते निर्दोष हैं, तुमसरीखे बुद्धिवान् हैं , तीन काल अमलदर्शी हैं ॥ हे भगवन् ! ईश्वरकी माया महाआश्चर्यरूप है, जीवनको अनेक भ्रमदिखावती है, बुद्धिमान्को भी मोह करती है, मूर्खनकी क्या बात है ? तुम सब कछु जानते हौ, जीवनकी वार्त्ता सब तुम्हारे अंतर्गत है, जीवको मनकी वृत्ति है, तिसके अनुसार भ्रमते हैं, सो मनकी वृत्ति सब तुम्हारे अंतर्गत फुरती है, इन सबनहूंके तुम वेत्ता हौ, जैसे इंद्रजाली अपनी बाजीका वेत्ता होता है ॥ हे भगवन् ! मैं जो भ्रमको प्राप्त होकरि क्रोध किया, सो इस कारणते कि, मेरे पुत्रका मृत्यु न था, चिरंजीवी था, अरु तिसको मैं मृतक हुआ देखिकै भ्रमको प्राप्त भया, अरु हमारा जो क्रोध है, सो आपदाका कारण नहीं. काहेते कि, मैं पुत्रका शरीर निर्जीव देखा, तब कहा कि, अकालमें मृतक हुआ है, इस कारणते क्रोध हुआ, सो क्रोध भी नीतिरूप है, अर्थ यह कि जो क्रोधका स्थान होवै, तहां क्रोध रहता है,मैं संसारकी गति विचारिकै क्रोध नहीं किया, अर्थ यह कि,पुत्रकी अवस्था देखिकै क्रोध नहीं किया, निर्जीव शरीरको देखिकरि क्रोध किया है, इसीते यह क्रोध आपदाका कारण नहीं, अयुक्ति कारणकरि जो क्रोध है सो आपदाका कारण है, युक्तिकरि जो क्रोध है, सो संपदाका कारण है, यह कर्तव्य संसारकी सत्ताविषे स्थित है, यह नीति है, जबलग जीव है, तबलग जगत्क्रम है, जैसे जबलग अग्नि है, तबलग उष्णता भी है, तैसे जो कर्तव्य है, सो करना है, जो त्यागने योग्य है,

सो त्यागना है, यह नीति जगत्‌विषे स्थित है, जो हेयोपादेय नहीं जानता तिसको त्यागना योग्य है, ताते मैं पुत्रका अकालमृत्यु देखिके क्रोध किया था, परंतु विचारकरिकै जब तुमने स्मरण कराया; तब मैं विचारकरि देखा कि, मेरा पुत्र अनेक भ्रमको पाता अब गंगाके तटपर तप करता है ॥ हे भगवन्! तुम जो कहा जीवनके दो दो शरीर हैं; एक मनोमय दूसरा अधिभूतक अरु मैं तौ यह मानता हौं कि, शरीर एक मनही है, दूसरा कोऊ नहीं; मनहीका किया सफल होता है; शरीरका नहीं होता ॥ काल उवाच ॥ हे मुनीश्वर! तुमने यथार्थ कहा है; शरीर एक मनही है; स्थूल देह मनकरि रचा है; जैसे घटको कुलाल रचता है; तैसे मन देहको रचता है; जो मन शरीरते रहित निराकार होता है; क्षणविषे आकारको रचि लेता है; जैसे बालक परछाईविषे वैतालको रचता है; भ्रमकरिकै मनविषे जो फुरणसत्ता है; स्वप्नभ्रम तिसकरि दिखाता है; बडे आकार अरु गंधर्वनगर भासि आते हैं; सो मनहीकी सत्ता है स्थूल दृष्टिकरि जीवको दो शरीर भासते हैं; बोधवान्‌को तीनों जगत् मनरूप भासते हैं सब मनकरि रचे हैं; जब भेदवासना होती है, तब असत्‌रूप जगत नानाप्रकार हो भासता है, जैसे असम्यक् दृष्टिकरि दो चंद्रमा भासते हैं, सम्यक्‌दर्शीको एक चंद्रमावत् सब शांतरूप आत्माही भासता है, भेद भावनाकरि घट पट आदिक अनेक पदार्थ भासते हैं कि, मैं दुर्बल हौं, मोटा हौं सुखी हौं दुःखी हौं, यह जगत् है, यह काल है, इत्यादि अनेक भ्रमको देखता है, सो संसार वासनामात्र है, जब मन शरीरकी वासनाको त्यागिकरि परमार्थकी ओर आवता है, तब भ्रमको प्राप्त होता है॥ हे मुनीश्वर! समुद्रते तरंग उठिकरि ऊर्ध्वको जाता है, जो वह जानै कि, मैं तरंगहूं तो मूर्ख है, यही अज्ञानदृष्टि है, ऊर्ध्वको जावैगा तब जानैगा मैं ऊर्ध्वको गया हौं, नीचे जावैगा तब जानैगा, मैं पातालको गया हौं, यह कल्पना अज्ञान है; वास्तव नहीं. वास्तव दृष्टि यह है, कि अध होय, अथवा ऊर्ध्व होय, परंतु आपको जलरूप जानै, तैसे जो पुरुष परिच्छिन्न देहादिकविषे अहंप्रतीत करता है, सो अनेक भ्रमको देखता है, सम्यक्‌दर्शी सब आत्मरूप जानता है, सर्व जीव आत्मरूप समुद्रके तरंग हैं, अज्ञानकरि भिन्न हैं, अरु ज्ञानकरि वहीरूप हैं, आत्मरूपी समुद्र सम है, स्वच्छ है, शुद्ध है, आदिरूप है, शीतल अविनाशी विस्तृत

रूप अपने महिमाविषे स्थित है, सदा आनंदरूप है, जैसे कोऊ जलविषे स्थित है, और तटके ऊपर पहाड़ है, तिसको अग्नि लगी होवै, अग्निका प्रतिबिंब जलविषे पडता है, अरु वह कहै, मैं दग्ध होता हौं, सो जैसे भ्रमकारि उसको ज्वलनता भासती है, तैसे जीवको आभासरूप जगत् दुःखदायक भासता है, जैसे तटकेवृक्ष पर्वतादिपदार्थ जलमें प्रतिबिंबित भासते हैं, अरु उनको देखिकै नानाप्रकार भासैं, तैसे आभासरूप जगत्को जीव नानारूप मानते हैं, जैसे एक समुद्रविषे नाना तरंग भासते हैं, तैसे आत्माविषे अनेक आकार जगत् भासता है, वास्तवते द्वैत कछु नहीं, सर्वशक्तिरूप ब्रह्मसत्ता है, तिसकारि विचित्ररूप चंचल भासता है, तौ भी एकरूप है, अपने आपविषे स्थित है, ब्रह्मविषे जगत् फुरता है बहुरि तिसीविषे लीन होता है, जैसे समुद्रविषे तरंग उपजते हैं, बहुरि तिसविषे लीन होते हैं, और भेद कछु नहीं, पूर्णविषे पूर्णही स्थित है, जैसे जलते तरंग भिन्न नहीं, तैसे ईश्वरते जगत् भिन्न नहीं, जैसे पत्र, डार, फूल, फल, वृक्षरूप हैं, तैसे सब जगत् आत्मरूप है, सो आत्मा अनेक शक्तिरूप है, जैसे एक पुरुष अनेक कर्मका कर्त्ता होता है, जैसा कर्म करता है, तैसे संगको पाता है, पाठ करनेते पाठक कहाता है, पाक करनेते पाचक कहाता है जापक, तापक आदि अनेक नामको धारता है, तैसे एक आत्मा अनेक शक्तिको धारता है, जैसे एक परछाया जिस आकारका पड़ता है, तैसा आकार भासता है, जैसे एक मेघविषे अनेक रंगसहित इंद्रधनुष भासता है, तैसे यह अनेक भ्रमको पावता है ॥ हे साधो ! जगत ब्रह्मते फुरे हैं, जड भासते हैं, सोभी चैतन्यसत्ताते फुरे हैं, जैसे बवोहा अपने मुखसों तंतु निकासिकरि आपहीको ग्रास लेता है, तैसे चैतन्यते जड उत्पन्न होते हैं, बहुरि लीन हो जाते हैं, चैतन्यजीवते सुषुप्ति जड़ता उपजती है, बहुरि तिसीविषे निवृत्त होती है, ताते अपनी इच्छाकारि यह पुरुष बंधमान होता है, अरु अपनी इच्छाकारि मुक्त होता है, जब बहिर्मुख देहादिक अभिमानकेसाथ मिलता है, तब आपको बंधमान करता है, जैसे घुरान आपही गृह रचिके बंधमान होती है,अरु जो पुरुषार्थकारिकै अंतर्मुख होता है, तब मुक्तिको पाता है, जैसे अपने हाथके बलकारि बंधनको तोड़िकै कोऊ बली निकसि जाता है ॥ हे साधो ! ईश्वरकी विचित्ररूप

शक्ति है, जैसी शक्ति फुरती है, तैसा रूप दिखावती है, जैसे ओस आकाशविषे उपजती है, तिसीको आच्छादि लेती है, तैसे आत्माविषे जो इच्छाशक्ति उपजती है, सोई आवरणकरि लेती है, तन्मयरूप हो जाती है,अरु वास्तवते इनको बंधनते बंधन नहीं, मोक्षसों मोक्ष नहीं; बंध अरु मोक्ष दोनों शब्द भ्रांतिमात्र हैं, मैं जानता नहीं कि, बंध अरु मोक्ष लोकविषे कहांते आये हैं; आत्माको न बंधन है, न मोक्ष है, ऐसे सत्‌रूपको असत्यरूपने ग्रसा है, जो कहता है, मैं दुःखी हौं, सुखी हौं, दुबला हौं, मोटा हौं इत्यादिक भ्रमनको देखता है, माया महाआश्चर्यरूप है, जिसने जगत्‌को मोहित किया है॥ हे मुनीश्वर ! जब चित्त संवित् कलनारूप होताहै, अर्थ यह कि, जब दृश्यके साथ मिलिकै फुरणारूप होता है, तब घुरानकी नाईं आपही आपको बंधन करता है,अरु जब दृश्यते रहित अंतर्मुख होता है, तब शुद्ध मोक्षरूप भासता है, बंध अरु मुक्ति दोनों मनकी शक्ति हैं, जैसा जैसा मन फुरता है, तैसा तैसा रूप भासता है, सो अनेक शक्ति आत्मासाथ अनन्यरूप हैं, सब आत्माते उपजी हैं, अरु आत्माविषे स्थित हैं, तिसविषे भिन्न होइकरि भासती हैं, तिसविषे लीन होती हैं, जैसे समुद्रविषे तरंग उपजते हैं, तिसविषे स्थित होकारि लीन हो जाते हैं, जैसे चंद्रमाते किरणैं उदय होइकरि भिन्न भासती हैं, बहुरि तिसीविषे लीन होती हैं, तैसे परमात्मरूपी महासमुद्र है, चेतनारूपी तिसाविषे जल है, तिसते जीवरूपी अनेक तरंग उपजते हैं, तिसविषे स्थित हैं, बहुरि लीन हो जाते हैं, कोऊ तरंग ब्रह्मरूप, कोऊ विष्णुरूप, कोऊ रुद्ररूप होइकारि प्रकाशते हैं, जिसते उपजे हैं, तिसी स्वभावविषे स्थित होते हैं, प्रमादते रहित कोऊ लहरी यम, कोऊ कुबेर, कोऊ इंद्र, कोऊ सूर्य, कोऊ अग्नि, कोऊ मनुष्य, कोऊ देवता, कोऊ गंधर्व, कोऊ विद्याधर, यक्ष, किन्नर आदिक रूप होइकरि उपजते हैं, बहुरि लीन हो जाते हैं, कोऊ स्थित होइकरि चिरकालपर्यंत रहते हैं, जैसे ब्रह्मादिक हैं, कोऊ उपजिकरि कछु काल रहिकरि विध्वंस हो जाते हैं, सो देवता मनुष्य आदिक हैं, अरु कोऊ कीट सर्प आदिक फुरते हैं, चिरकाल भी रहते हैं, अल्पकालविषे नष्ट हो जातेहैं, आत्मसमुद्रते तरंगवत् फुरते हैं, बहुरि तिसाविषे लीन हो जाते हैं, कोऊ ब्रह्मादिक उपजिकरि अप्रमादी रहता है, कोऊ प्रमादी हो

जाता है, तुच्छशरीर होते हैं, यह संसार स्वप्न आरंभहै, अरु दृढ होकारि भासताहै, कोऊ कैसे कोऊ कैसे रूपकारि स्थित है, स्वरूपके प्रमादकारि दीनताको प्राप्त होताहै, ऐसे मानते हैं, मैं दुःखी हौं, मैं कृश हौं इत्यादिक भ्रमको मूढताकारि देखते हैं सो सव आत्मरूपके तरंग वडे फुरते हैं, कोऊ जंगमरूप, कोऊ स्थावररूप, मनुष्य, देवता, दैत्य, तिर्यक्, पशु पक्षी सव आत्मसमुद्रकी लहरी हैं, उपाजिकारि वहुरि लीन हो जाते हैं ॥ इति श्रीयोगवासिष्ठे स्थितिप्रकरणे संसारावर्त्तवर्णनं नाम एकादशः सर्गः ॥ ११ ॥ काल उवाच ॥ हे मुनीश्वर! देवता, दैत्य, मनुष्य आदिक जो आकार हैं, सो ब्रह्मसाथ अभिन्नरूप हैं, यह सत् है, जव मिथ्या संकल्पकेसाथ जीव कलंकित होता है, तव जानता है कि, मैं ब्रह्म नहीं, इस निश्चयको पायके मोहित होता है, मोहित हुआ अधःको चला जाता है, यद्यपि ब्रह्मसाथ अभिन्नरूप है, अरु तिसविषे स्थित है, तौ भी भावनाके वशते आपको भिन्न जानिकै मोहको प्राप्त होता है, शुद्ध ब्रह्मविषे संवित्का उल्लेख होता है; सो कलंकितरूप कर्मका वीज होता है, तिसते आगे विस्तारको पाता है, जैसे जल जिस जिस वीजकेसाथ मिलता है, तिसी तिसी रसको प्राप्त होताहै, तैसे संवित्का फुरना जैसे कर्मसाथ मिलताहै, तैसी गतिको प्राप्त होता है; संकल्पकारि कलंकितहुआ अनेक दुःख पाता है, यह प्रमादरूप कर्म कैसाहै, जैसे करजुएका वीज है, तिसको मुष्टी भरि भरि बोताहै, सो अपने दुःखका कारणहै, यह जगत् आत्मरूप समुद्रकी लहरियांहैं, विस्तारकारि फुरतीहैं; कोऊ ऊर्ध्वको जातीहैं, कोऊ अधःको जातीहैं, वहुरि लीन हो जाती हैं, ब्रह्मा आदि तृणपर्यंत इन सवनका यही धर्म है; जैसे पवनका स्पंद धर्म है, तैसे इनका भीहै, तिनविषे कई निर्मल पूजने योग्य हैं, सो ब्रह्मा, विष्णु, रुद्रादिक हैं, कईक कछुक मोहसंयुक्त हैं, जैसे देवता, मनुष्य, सर्प हैं, कईक अनंत मोहविषे स्थित हैं; जैसे पर्वत वृक्ष आदिक हैं, कईक अज्ञानकारिकै मूढ हैं, सो कृमि कीट आदिक योनिको प्राप्त हुए हैं, यह दूरते दूर चले गये हैं, जैसे जलके प्रवाहकारि तृण चला जाता है, देवता, मनुष्य, सर्प आदि कईक भ्रमवान् भी होते हैं, कईक तटके निकट आयके वहुरि वहि जाते हैं, अर्थ यह जो सत्संग अरु सच्छास्त्रोंको पायके वहुरि मायाके व्यवहारमें वहे जाते हैं, यमरूप जो चूहा है, सो तिनको पड़ा काटता है,

एक अल्प मोहको प्राप्त होकरि बहुरि ब्रह्मसमुद्रविषे लीन भये हैं, अरु कईक अंतर्गत ब्रह्मसमुद्रको जानिकै स्थित हुए हैं, तम अज्ञानको तरे हैं, कईक अनेक कोटि जन्मकरि प्राप्त होते हैं, कई अधःते ऊर्ध्वको चले जाते हैं; बहुरि ऊर्ध्वते अधःचले जाते हैं, प्रमादकरि अनेकयोनि दुःखहूंको पड़े भोगते हैं; जब आत्मज्ञान होता है, तब आपदाते छूटिकै शांतिवान् होते हैं ॥ इति श्रीयोगवासिष्ठे स्थिति प्रकरणे उत्पत्तिविस्तारणं नाम द्वादशः सर्गः ॥ १२ ॥ काल उवाच ॥ हे साधो ! यह जेता कछु जगत् भूतजात विस्तार है, सो सब आत्मरूप समुद्रके तरंग हैं, एकही अनेक विचित्र विस्तारको प्राप्त भया है, जैसे वसंतऋतुविषे एकही रस अनेक प्रकारके फूलफलको धरता है, तैसे इस जीवनविषे जिनने मनको जीतिकरि सर्वात्मा ब्रह्मका दर्शन किया है, सो जीवन्मुक्त हुए हैं, और मनुष्य, देवता, यक्ष, किन्नर, गंधर्व आदिक सब पड़े भ्रमते हैं, इनते इतर भी स्थावर मूढ अवस्थाविषे हैं, तिनकी क्या बात करनी है, लोकविषे तीन प्रकारके जीव हैं, एक अज्ञानी महामूढ हैं, दूसरे जिज्ञासी हैं, तीसरे ज्ञानवान् हैं, जो मूढ हैं, तिनको शास्त्रके श्रवण अरु विचारविषे कछु रुचि नहीं, अरु जो जिज्ञासी हैं, तिनके निमित्त ज्ञानवान्ने शास्त्र रचे हैं, जिस जिस मार्गकरि वह प्रबुद्ध आत्मा हुए हैं, तिस तिस प्रकारके तिनने शास्त्र रचे हैं, तिस मार्गकरि अपर जीव भी मोक्षभागी होते हैं ॥ हे मुनीश्वर! सच्छास्त्र जो ज्ञानवान्ने किये हैं, सो जब निःपाप पुरुष तिनको विचारता है, तब उसको निर्मल बोध उपजता है, तिसकरि मोह निवृत्त होता है, जब विमलबुद्धि होती है, तब सच्छास्त्रके अभ्यासकरि मोह नष्ट होता है, जैसे सूर्यके प्रकाशकरि तम नष्ट हो जाता है, अरु जो मूढ अज्ञानी हैं, सो आत्माके प्रमादकरि विषयको तृष्णाते मोहको प्राप्त होते हैं, जैसे अंधेरी रात्रि होवै, अरु ऊपरते कुहिड भी होवै, तब तमते तम होताहै, तैसे मूढ मोहते मोहको प्राप्त होते हैं, अपने संकल्पकरि आपही दुःखी होते हैं जैसे बालक अपने परछायेविषे वेताल कल्पिकरि आपही दुःखी होताहै, ताते जेते कछु भूतजात हैं, तिन सबको सुखदुःखका कारण मनरूपी शरीरहै, जैसे वह फुरता है, तैसी गतिको प्राप्त होता है, मांसमय शरीरका किया कछु सफल नहीं होता, असत् मांस आदिकका मिला हुआ जो आधिभौतिक शरीर है, सो मनके संकल्पकरि रचा है, सो वास्तव कछु नहीं,

संकल्पकी दृढ़ताते आधिभौतिक भासने लगा है, स्वप्नशरीरकी नाईं है, मनरूपी शरीरकारि जो तेरे पुत्रने किया है तिसी गतिको प्राप्त भया है, इसमें हमारा कछु अपराध नहीं है ॥ हे मुनीश्वर ! अपनी वासनाके अनुसार जैसा कोऊ कर्म करता है, तैसे फलको प्राप्त होता है, मांसशरीरमें कछु नहीं होता, जैसे जैसे तीव्र भावनाकारि तेरे पुत्रका मन फुरता गया है, तैसी तैसी गतिको पाता भया है, स्वर्ग नरक सबका भोक्ता भया है, अपने मनके मोहकारि सब देखा है, बहुत कहनेकारि क्या है, उठहु, अब तहांही चलिये, जहां वह ब्राह्मणका पुत्र होकारि तप करने लगाहै, गंगाके तटपर तहां उसको देखैं ॥ वाल्मीकि उवाच ॥ हे भारद्वाज ! इसप्रकार जब काल भगवान्ने कहा, तब दोनों जगत्की गतिको हँसत उठि खडे हुए, हाथमें हाथ पकडिके कहते भये, बड़ा आश्चर्य है, ईश्वरकी नीति आश्चर्यरूप है, जीवको बड़े भ्रमको प्राप्त करती है, जैसे उदयाचल पर्वतते सूर्य उदय होता है, अरु आकशमार्गविषे चलता है, तैसे प्रकाशकी निधि उदार आत्मा दोनों चले, इसप्रकार वसिष्ठजीने रामजीको कहा, तब सूर्य अस्त हुआ, सर्व सभा स्नानको गई, दिन हुए बहुरि अपनेअपने आसनपर आनि स्थित भये ॥ इति श्रीयोगवासिष्ठे स्थितिप्रकरणे भृग्वाश्वासनं नाम त्रयोदशः सर्गः ॥ १३ ॥

वसिष्ठ उवाच ॥ हे रामजी ! काल अरु भृगुजी दोनों मंदराचल पर्वतसों भूमिपै उतरे, जहाँ पुत्र बैठाथा, तहाँ चले, देवतोंके महासुंदर स्थानोंको लंघते लंघते तहां गए, जहां ब्राह्मणशरीरकेसाथ गंगाके किनारे वह तप करता था, समाधिविषे स्थित है, तिसको देखते भए, मनरूपी जो मृग है, सो अचल होइकारि विश्रामको प्राप्त भया है, जैसे चिरकालका थका चिरकालपर्यंत विश्राम पावै, तैसे विश्राम पायाहै, अनेक जन्मकी चिंतनाविषे भटकता भटकता अब तपविषे लगा है, अरु विश्रामको पाया है, जैसे चक्र भ्रमता ठहर जाता, तैसे ठहर गया है, संसाररूपी महासमुद्र है, तिसके आवर्त्तते निकसिकारि एकांत स्थित भया है, इंद्रिय अरु मनकी चपलताको त्यागिकै निर्विकल्प समाधिविषे स्थित भया है, स्थावरकी नाईं अचल भया है, आधि व्याधि आदिक संपूर्ण कल्पनाजालते मुक्त परम शांतिको प्राप्त हुआहै; रागद्वेषते रहित होइकारि परमानंदपदविषे स्थित भयाहै, परमबोधरूप उदारताविषे समाधिस्थित तिसको

देखिकै कालने कहा ॥ हे भृगु ! देख; समाधिविषे स्थित है, अब जगाइये, इसप्रकार मेघकी नाईं बड़े शब्दकरि काल भगवान्ने कहा, तब तिसकी कलना फुरणेकरि अरु बाहिर शब्दकरि शुक्रजी जागे, जैसे मेघके शब्दकरि मोर जागे, तैसे जागे, अर्धोन्मीलित नेत्र खोलिकै काल अरु भृगुको अपने आगे देखत भया, अरु पहँचानता न भया, अरु देखा कि, दोनोंके श्याम आकार हैं; अरुबडे प्रकाशरूप हैं, जैसे विष्णुजी अरु सदाशिवजी होवैं, तिनको देखिकै उठि खडा हुआ, अरु प्रीतिपूर्वक चरणवंदना करी, अरु कहा कि, मेरे बड़े भाग्य हैं, जो प्रभुके चरण इस स्थानविषे प्राप्त भयेहैं, बहुरि नम्रतासहित आदर किया, तब एक शिला पड़ी थी, तिसपर दोनों बैठि गये, अरु वसुदेव नाम जो शुक्र है, तपके संयोगकरि तिसका नाम शातातप भया. तिस तपस्वीने शांत हृदय अगमवचन काल अरु भृगुसे कहे हे प्रभो ! मैं तुम्हारे दर्शनकरि शांतिको प्राप्त भया हौं, तुम सूर्य अरु चंद्रमा इकट्ठे मेरे आश्रम आये हौ, जो शास्त्रहू अरु तपकरिकै भी मोह निवृत्त होना कठिनहै, सो तुम्हारे दर्शनकरि मेरे मनका मोह नष्ट भया है ॥ हे साधो ! ऐसा सुख ऐश्वर्यकरि नहीं प्राप्त होता, अरु अमृतकी वर्षाकरि भी ऐसा सुख नहीं प्राप्त होता, जैसा सुख महापुरुषके दर्शनकरि होता है, तुम्हारे दर्शनकरि हमारा मोह नष्ट भया है, तुम ज्ञानके सूर्य अरु चंद्रमा हौ ॥ हे ऋषीश्वरो ! तुमने हमारा स्थान पवित्र कियाहै मैं शांतात्मा हुआ हौं, तुम कौन हौ ? जो प्रकाशरूप उदार आत्मा मेरे इस स्थानपर आये हौ ? जब इसप्रकार जन्मांतरके पुत्रने भृगुजीको कहा तब भृगुजीने कहा ॥ हे साधो ! तू आपको स्मरण कर कि, कौन है, अज्ञानी तौ नहीं; तू प्रबोध आत्मा है, जब इसप्रकार भृगुजीने कहा, तब नेत्र मूंदिकरि वही ध्यानविषे जुडि गया, एक मुहूर्तविषे अपना सब वृत्तांत देखिकै नेत्र खोले, अरु विस्मय होकरि कहत भया कि, ईश्वरकी गति विचित्ररूप है, इसके वश हुआ मैं बड़े भ्रमको प्राप्त हुआ हौं, जगत्‌रूपके चक्रपर आरूढ हुआ अनंत जन्मविषे भ्रमा हौं, तिन सबनको स्मरण करिकै आश्चर्यमान् होता हौं कि, मैं बहुत दुःख भोगे हैं, अरु अनेक अवस्था भोगी हैं, स्वर्गविषे रहा हौं, मंदराचल कल्पवृक्षके नीचेरहा हौं. सुमेरु कैलास आदिक वनकुंजविषे रहा हौं, अनेक स्थानविषे ऐसा पदार्थ पावने

का नहीं, जो मैं नहीं पाया? ऐसा कोऊ कार्य नहीं, जो मैंने नहीं किया; ऐसा कोई इष्ट अनिष्ट नरक स्वर्ग पदार्थ नहीं, जो मैंने नहीं देखा अब जो कछु जानने योग्य है, सो पाया हौं, अब मैं आत्मतत्त्वविषे विश्रामवान् भया हौं, संकल्पभ्रम मेरा नष्ट हो गया है, अब चलिये मेरा शरीर जहाँ मंदराचल पर्वतपर पड़ा है ॥ हे भगवन् ! अब मुझको इच्छा कछु नहीं है, हेयोपादेय मुझको कछु रहा नहीं तथापि नीतिकी रचना देखिकै कहताहौं, जो बोधवान् हैं सो प्रकृत आचारविषे विचरते हैं; आगे जैसे इच्छा होवे तैसे करिये; बोधवान् उसी आचारको अंगीकार करते हैं, ताते अपने अपने प्रकृत आचारको ग्रहण करिकै व्यवहारविषे विचरै ॥ इति श्रीयो० स्थितिप्रकरणे भार्गवजन्मांतरवर्णनं नाम चतुर्दशः सर्गः ॥ १४ ॥ वसिष्ठ उवाच ॥ हे रामजी ! इसप्रकार विचारकरिकै तीनों आकाशमार्गको चले, शीघ्रही मेघमंडलको उल्लंघिके सिद्धके मार्गसों मंदराचल पर्वतपर स्वर्णकी कंदराविषे आय स्थित भए, तब पूर्व जो शुक्रका शरीर था. तिसको देखते भए; अरु ब्राह्मण तपस्वीने कहा ॥ हे तात ! मेरा पूर्व शरीर देखौ, जो तुमने बहुत पालन किया था, कपूर सुगंधिकरि शोभित किया था, फूलकी शय्यापर शयन करता था, सो अब माटीविषे लपटा पडा है, अरु सूख गया है, जिस शरीरको देवस्त्रियां देखिकै मोहित होती थीं, अरु मुक्तामाला कंठविषे शोभती थीं; मानौ तारेकी पंक्ति हैं, सो शरीर अब पृथ्वीपर गिर पड़ा है, नंदनवनविषे इसने अनेक भोग भोगे हैं; आत्मरूप जानिकै इसको मैं पुष्ट करताथा, सो अब मुझको भयानक भासता है, जो शरीर देवांगनोंकेसाथ मिलता था, अरु रागवान् होता था, तिनकी चिंताते सूख गया है, जिन जिन विलासको चाहता था, तिनको करता था, अब तौ चिंताते रहित स्थित हो रहा है, महाअभागी हुआ धूपकरिकै सूख गया है, महाविकराल भयानक जैसा भासता है, जिसको मैं आत्मरूप जानता था, जिसविषे अहंकरिकै विलास करता था, जिस शरीरविषे फूल कमल पडते थे, अरु तारागण प्रकाशते थे, तिसविषे कीडियां फिरती हैं; जो शरीर द्रवत् स्वर्णवत् सुंदर प्रकाशरूपथा, सो धूपकरि सूखा भयानक भासता है, सब गुण इसको छोडि गये हैं, मानौ विरक्त आत्मा भया है, विषयते मुक्त निर्विकल्प समाधिविषे स्थित भया है ॥ हे शरीर ! तू

अदृष्ट तनुको प्राप्त भया है, अब तेरेविषे क्षोभ कोऊ नहीं चित्तरूपी वैताल तेरेविषे शांत हो गया है, आनेजानेते रहित विश्रामवान् हुआ है, सब कल्पना तेरी नष्ट भई हैं, संकल्पजाल मिटगया है, सुखसे सोयाहै; चित्तरूप मर्कटते रहित शरीररूप वृक्ष ठहरि गया है, हलनेते रहित भया है सब अनर्थते रहित पहाड़की नाईं अचल भया है, यह देह अब सर्व दुःखते रहित परमानंदविषे स्थित भया है॥ हे साधो ! सब अनर्थका कारण चित्त है, जबलग चित्त शांतिमान् नहीं होता, तबलग जीवको आनंद प्राप्त नहीं होता, जब अमनशक्तिपदको प्राप्त होते हैं, तब महा आधि व्याधि जगत्के दुःखको तर विगत जो परमानंद तिसको प्राप्त होता है राम उवाच ॥ हे भगवन् ! सर्व धर्मके वेत्ता, भृगुका जो पुत्र था, तिसने तौ अनेक शरीर धारे थे, अरु बहुरि बहुरि भोग भोगे थे, अरु भृगुते जो शरीर उत्पन्न भया था, तिसको बहुत परिदेवना करी, अरु औरका चिंतवना न किया सो क्या कारण है ? ॥ वसिष्ठ उवाच ॥ हे रामजी ! शुक्रकी जो संवेदनकलना थी, सो जीवभावको प्राप्त भई थी सो कर्मात्मक होइकरि भृगुते उपजी थी, सो सुन, आदि जो परमात्मतत्त्वते चित्कला फुरी है, सो भूताकाशको प्राप्त भई है, वही बात कलाविषे स्थित होइकरि पान अपानके मार्गसों भृगुके हृदयाविषे प्रवेश करती भई वीर्यके स्थानको प्राप्त होइकरि गर्भमार्गसों उत्पन्न भई, क्रमकरिकै बड़ी हुई; विद्या अरु गुणसंपन्न शुक्रशरीर होत भया, तिसको जो चिरकाल सेवन किया था, तिस कारणते उसको परिदेवना करी, यद्यपि वीतराग अरु निरिच्छित था, तौ भी जो चिरकालका अभ्यास किया था, सोई फुरि आया ॥ हे रामजी ! ज्ञानी होवै, अथवा अज्ञानी होवै, व्यवहार दोनोंका तुल्य होता है; परंतु शक्ति अशक्तिका भेद है, ज्ञानवान् असंसक्त निर्लेप रहता है, अज्ञानी क्रियाविषे बंधमान् होता है, ज्ञानवान् मोक्षरूप है, अरु अज्ञानी दरिद्री है, जैसे वनविषे जालमें पक्षी फँसता है, तैसे अज्ञानी लोक व्यवहारविषे बंधमान् होता है, व्यवहार जैसे ज्ञानी करता है, तैसे अज्ञानी करता है, वासनारहित सो निर्बंध है, वासनासहित बंध है, वासना मात्र भेद है, जबलग शरीर है, तबलग सुखदुःखभी होता है, परंतु ज्ञानवान् दोनोंविषे शांतबुद्धि रहता है, अज्ञानी हर्षशोककरि तपायमान होता है, जैसे स्तंभका प्रतिबिंब जलविषे

पडता है, सो जलके हिलनेकरि हिलता भासता है, परंतु स्वरूपते स्थितही है, तैसे अज्ञानविषे सुखदुःखकरि सुखी दुःखी भासता है, परंतु स्वरूप ज्योंका त्यों है, जैसे सूर्यका प्रतिबिंब जलके हिलनेकरि हिलता भासता है; परंतु स्वरूपते ज्योंका त्यों है, तैसे ज्ञानवान् इंद्रियकरि सुखी दुःखी भासता है, स्वरूपते ज्योंका त्यों है, अरु अज्ञानी बाह्यते क्रियाका त्याग करता है, तौ भी बंध रहता है, ज्ञानवान् क्रिया करता है, तौ भी मोक्षरूप है, अंतःकरण इंद्रियकरि जो अनात्मधर्मविषे बंधमान् है, बाह्य कर्म इंद्रियकरि मुक्ति है, तौ भी बंधनमें है अरु अंतःकरणकरि मुक्ति है, कर्म इंद्रियकरि बंधन भासता है, तौ भी मुक्तिरूप है, जो सब क्रीडाको त्यागि बैठा है, अरु अंतर जगत्की सत्यता है, भावै कछु करै, भावै न करै, तौ भी वह बंधनमें है, अरु बाह्य भावै तैसा व्यवहार करै, अंतरते अद्वैत ज्ञान है, तौ वह मुक्तिरूप है, तिसको कर्म बंधन नहीं करता, ताते हे रामजी ! सब कार्य करौ, अरु अंतरते शून्य रहौ; सर्व ईषणाते रहित आत्मपदविषे स्थित होहु, अपने प्रकृति व्यवहारको करौ यह संसाररूपी समुद्र है, तिसविषे आधिव्याधिरूपी गढेले हैं, अहंममतारूपी गर्त हैं, तिसविषे जो गिरा है, सो ऊर्ध्वते अधःको जाता है, ताते संसारके भावविषे मत स्थित होहु, शुद्ध बुद्धि आत्मस्वभावविषे स्थित होहु, ब्रह्म है, शुद्ध है, सर्वात्मा है, निर्विकार निराकार आत्मपदविषे जो स्थित है, तिसको नमस्कार है ॥ इति श्रीयोगवासिष्ठे स्थितिप्रकरणे शुक्रप्रथमजीवनं नाम पंचदशः सर्गः॥ १५ ॥ वसिष्ठ उवाच ॥ हे रामजी ! इसप्रकार जब शुक्रने शरीरका वर्णन किया, अरु विकरालरूप देखिकै उसविषे त्यागबुद्धि करी, तब काल भगवान् शुक्रके वचनको न मानिकै गंभीर वाणीसों बोलत भया ॥ काल उवाच ॥ हे शुक्र ! तू इस तपरूपी शरीरका त्याग कर, अरु भृगुके पुत्रका जो शरीर है भार्गव, तिसको अंगीकार कर, जैसे राजा देशदेशांतरको भ्रमता अपने नगरविषे आता है,तैसे तू इस शरीरविषे प्रवेश कर काहेते जो भार्गव तनुके साथ असुरका गुरु होना है, यह आदि परमात्माकी नीति है, महाकल्पपर्यंत तेरा आयुबल है, महाकल्पका अंत होवैगा, तब भार्गवतनु नष्ट होवैगा, तुझको बहुरि शरीरका ग्रहण न होवैगा, जैसे रस सूखेते पुष्प गिरपडता है, तैसे प्रारब्धवेगके पूर्ण हुएते

तेरा शरीर गिर पड़ैगा, अरु शरीरके होते जीवन्मुक्तिपदको प्राप्त हुआ प्रकृत आचारविषे विचरैगा, ताते तू शुक्रशरीर था, दैत्यका महागुरु होकरि स्थित होहु; यह ईश्वरकी नीति है, ताते इस शरीरको त्यागिकरि भार्गवशरीरविषे प्रवेश करु, अब हम जाते हैं, तुम दोनोंका कल्याण होवै, तुम अपने वांछितको प्राप्त होवहु ॥ वसिष्ठ उवाच ॥ हे रामजी ! काल भगवान् ऐसे कह दोनोंके ऊपर पुष्प डारे, अरु अंतर्धान हो गया तव तपस्वी नीतिको विचारने लगा कि, क्या होना है ? विचारकरि देखा, जैसे काल भगवान्ने कहा, तैसेही होना है, ऐसे विचारकरि महाकृतरूप जो शरीर था तिसविषे प्रवेश किया, अरु तपस्वी ब्राह्मणका देह त्यागि दिया; जैसे वसंतऋतुविषे वल्लीमें रस प्रवेश करता है, तैसे भार्गवशरीरमें प्रवेश किया, जैसे सर्प कंचुकीको त्यागता है, तैसे तपस्वीशरीरका त्याग किया, तव उस शरीरकी शोभा जाती रही, कंप कंप पृथ्वीपर गिर पडा, जैसे मूलके काटेते वल्ली गिरपडती है, तैसा वह देह गिरा, अरु शुक्रदेह जीवकलासंयुक्त हो आया, तव भृगुजी जीवकलासंयुक्त देह कृश जैसा देखिकै उठि खड़े हुए, हाथविषे जलका कमंडलु लिया, अरु मंत्रविद्या जो पुष्टिशक्ति है, तिसको पाठ कर पुत्रके शरीर ऊपर जल डारा, तिसके पानेकरि शरीरकी नाडी सव पुष्ट हो गई, जैसे वसंतऋतुविषे कमलनी प्रफुल्लित होती है, तैसे शरीर प्रफुल्लित हो आया, श्वास आने लगे, तव पिताके सन्मुख होइकरि नमस्कार करत भया, जैसे मेघ जलसों पूर्ण होइकरि पर्वतके आगे नमता है, तैसे विधिसंयुक्त नमस्कार कर नमता भया, अरु स्नेहकरि नेत्रते जल चलने लगा, तव पुत्रको देखिकै भृगुजी कंठ लगाया कि, मेरा पुत्र है, ऐसे स्नेहकरि पूर्ण हो गया ॥ हे रामजी ! जवलग देह है, तवलग देहके धर्म फुरि आते हैं, इसप्रकार ज्ञानीको ममता स्नेह फुरि आई; तौ अपरकी क्या वात कहनी है, पिता अरु पुत्र दोनों वैठि गये, एक मुहूर्तपर्यंत कथा वार्त्ता करते रहे, वहुरि उठिकरि तपस्वीशरीरको जलाया, जो बुद्धिमान् सो शास्त्रा चारविषे स्थित होते हैं, तिसके अनंतर दोनों मंदराचल पर्वतविषे स्थित भए तपकरिके प्रकाशित है वपु जिनका, अरु श्याम कांति है, जीवन्मुक्त उदार आत्मा होइकरि वहां रहते भये, समयकरिकै शुक्रजी दैत्यका गुरु होवैगा, अरु भृगुजी समाधिविषे स्थित

होवैगा, तातै जो सब विकारते रहित जीवन्मुक्त पुरुष जगत्गुरु है, सो सबको पूजने योग्यहै ॥ इति श्रीयोगवासिष्ठे स्थितिप्रकरणे भार्गवजन्मांतरवर्णनंनाम षोडशः सर्गः ॥ १६ ॥ राम उवाच ॥ हे भगवन् ! जैसे भृगुके पुत्रको यह प्रतिभा फुरती गई, अरु सिद्ध होती गई तैसे अपर जीवको सिद्धि क्यों नहीं होती ॥ वसिष्ठ उवाच ॥ हे रामजी ! शुक्रका जो ब्रह्मतत्त्वते फुरणा हुआ है, सो भार्गवजन्म हुआ है, अपर जन्मकरि कलंकित नहीं भया, सर्व ईषणाते रहित शुद्ध चैतन्य था निर्मल हृदयको जैसा फुरणा होता है, तैसी सिद्धि हो जातीहै; अरु मलिन हृदयवान्का शीघ्रही संकल्प सिद्ध नहीं होता, जैसे भृगुके पुत्रको मनोराज्य हुआ, अरु भ्रमता फिरा तैसे सबही स्वरूपके प्रमादकरि भ्रमते हैं, जबलग स्वरूपका साक्षात्कार नहीं होता तबलग शांति प्राप्त नहीं होती, यह मैंने भृगुके पुत्रका वृत्तांत तुझको सुनाया है, मनोराज्यकी दृढताअर्थ जैसे बीजते अंकुर फूल फल अनेक भावको प्राप्त होते हैं, तैसे सब भूतजातिको मनका भ्रमणा अनेक भ्रमको प्राप्त करता है, जेता कछु जगत् तुझको भासता है, सो सब मनके फुरनेका रूप है, मिथ्या भ्रमकरिकै नानात्व भासता है और कछु हुआ नहीं, एक एक प्रति ऐसा भ्रम है, सब संकल्पमात्र है, न कछु उदय होता है, न अस्त होता है, कदाचित् किसीको सब मिथ्यारूप मायामात्र है, जैसे स्वप्नपुर अरु संकल्पनगर भासता है, परस्पर व्यवहार दृष्टि आते हैं अरु हुआ कछु नहीं तैसे यह जाग्रद्भ्रम भी अज्ञानकरि दृष्ट आता है, भूत पिशाच आदिक जेते कछु जीव हैं, तिनका भी संकल्प मात्र शरीर है, जैसे उनको सुखदुःखका भोग होता है, तैसे तुम हमको होता है, जैसे यह जगत् है, तैसे अनंत जगत् पड़े वसते हैं, परस्पर अज्ञानत्व है, एकको दूसरा नहीं जानता, जैसे एक स्थानविषे बहुत पुरुष शयन करते हैं, तिनको मनोराज्य स्वप्नभ्रम परस्पर अज्ञात होता है, तैसे यह जगत् है, वास्तवते कछु हुआ नहीं, केवल ब्रह्मसत्ता अपने आपविषे स्थित है, जो इस जगत्को सत जानता है, तिसका पुरुषार्थ नष्ट होता है, जो भ्रांतिकरि वस्तु भासती है, तिसका सम्यक् ज्ञानकरि अभाव हो जाता है, यह जाग्रत जगत् भी दीर्घ स्वप्न है, चित्तरूप हस्तीको बंधन है, चित्तसत्ताकरिकै जगत् सत भासता है, अरु जगत् सत्ताकरिकै चित्त है, एकके

नाश हुएते दोनोंका नाश हो जाता है जब जगत्का सद्भाव नष्ट होता है, तब चित्त नहीं रहता, जब चित्त उपशम होता है, तब जगत् शांत होता है, इसप्रकार एकके नाश हुएते दोनोंका नाश होता है, सो दोनोंका नाश आत्मविचारकरिकै होता है, अरु विचार तहाँ उपजता है जहाँ हृदय निर्मल होता है, जैसे उज्ज्वल वस्त्रपर केसरका रंग शीघ्रही चढ़ि जाता है, मलिन वस्त्रपर नहीं चढ़ता, सो निर्मल हृदय तब होता है जब शास्त्रके अनुसार क्रिया करता है ॥ हे रामजी ! एक एक जीवको हृदयाविषे अपनी अपनी सृष्टि है, मलिन चित्तकरि एकको दूसरा नहीं जानता, जब चित्त शुद्ध होता है, तब औरकी सृष्टिको भी जान लेता है, जैसे शुद्ध धातु परस्पर मिलि जाती है, इसको जब दृढ अभ्यास चिरपर्यंत होता है, तब सब कछु भासने लगता है, काहेते कि, सबका अधिष्ठाता एक आत्मा है, तिसविषे स्थित होनेते सबका ज्ञान होता है ॥ राम उवाच ॥ हे भगवन् ! शुक्रको प्रतिभा मात्र आभास हुआ था, तिसविषे देश, काल, क्रिया, द्रव्य उसको दृढ होइकरि कैसे भासे हैं ? ॥ वसिष्ठ उवाच ॥ हे रामजी ! जो कछु जगत् शुक्रने देखा है, सो अपने अनुभवरूप भंडारविषे मनकरि देखा है, जैसे मोरके अंडेसों अनेक रंगवान् निकसते हैं, तैसे उसको अपने अंतर भ्रम भासि आया, जैसे बीजसों पत्र, टास, फूल, फल, निकसते हैं, तैसे जीव जीवको अपने अपने अनुभवविषे संसार खंड पड़े फुरते हैं, यहां स्वप्नदृष्टांत प्रत्यक्ष है, जैसे एकएकके स्वप्नविषे जगत् होता है, तैसे यह जगत् है, दीर्घ स्वप्न जाग्रत् हो भासता है, जैसा दृढ होता है, तैसा भासने लगता है ॥ राम उवाच ॥ हे भगवन् ! सृष्टिके समूह परस्पर कैसे मिलते हैं, अरु कैसे नहीं हैं ? ॥ वसिष्ठ उवाच ॥ हे रामजी ! मलिन चित्त है, सो परस्पर नहीं मिलता है, जो शुद्ध है, सो मिलता है, जैसे शुद्ध धातु मिलिजाती है, सुषुप्तिरूप आत्मासों सब फुरते हैं, सो तन्मयरूप हैं, जिसको तिसविषे विश्राम होता है सो ज्ञानदृष्टिकरि सबके साथ मिलि जाता है, जैसे जलकेसाथ जल मिलि जाता है, तैसे वह सबके साथ मिलिकरि सबको जानताहै और कोई नहीं जानता ॥ ॥ इति श्रीयोगवासिष्ठे स्थितिप्रकरणे मनोराज्यसंमीलनवर्णनं नाम सप्तदशोऽध्यायः ॥ १७ ॥

वसिष्ठ उ० ॥ हे रामजी ! जेते कछु संसार खंडहैं, तिनसबका बीजरूपआत्माहै, सब आत्माहीका आभासहै, सो आभासके उदयास्त होने विषे आत्मसत्ता ज्योंकी त्यों है, अपने स्वभावके त्यागते रहितहै, अरु सर्वजीवका अपनाआप वास्तवरूपहै, अरु सुषुप्तकी नाईं अस्फुरण है; तिस सत्ताते जीव फुरते हैं, सब स्वप्नवत् जगत् भ्रमको देखते हैं, सो जीव जीव प्रति अपनी सृष्टि स्थित है, जो पुरुष उलटिकै आत्म परायण होता है, सो आत्मपदको प्राप्त होता है, जिन पुरुषोंको आत्मब्रह्मके साथ एकता भई है, तिनको परस्पर औरकी सृष्टि भासती है, अंतःकरणविषे सृष्टि होतीहै, सो तिनका अंतःकरण मिलता है, तिस अंतःकरण जीवकलाके मिलेते परस्पर सृष्टि भासि आती है, वह जानते हैं, जीवको अपनीअपनी सृष्टि है, सबको अपनी आप सन्मात्रसत्ता है, तिसविषे सब सृष्टि स्थित होती है, जैसे कपूरका पर्वत होवै, तिसके अणुअणुविषे सुगंधता होती है, अरु सर्व अणुकी सुगंधताको पर्वतविषे एकता होती है, तैसे सब जीवका अधिष्ठान आत्मसत्ता है, जैसे सब नदीके जलका अधिष्ठान समुद्र है, तैसे सब जीवका अधिष्ठान आत्मा है, सो सृष्टि कहूँ परस्पर मिलती हैं, कहूं भिन्न भिन्न स्थित हैं, जहां चैतन्यमात्र सत्ताकेसाथ एकता है, तहां चित्तकी वृत्ति जिसकेसाथ मिला चाहै, तिसको मिलजाती है, मलिनचित्तवाला नहीं मिल सकता, अरु एक एक जीवविषे सहस्र सृष्टि परस्पर गुप्तरूप होती हैं, जहां जैसा फुरना दृढ होताहै तहां तैसाही भासताहै, जहां मनका फुरना कोमल होताहै, सो सफल नहीं होता अरु जहां दृढ होताहै, सो भासने लगताहै ॥ हे रामजी ! जब देहकी भावना मिटि जाती है, अरु प्राणपवनहीके स्थित करनेते चित्तकी वृत्ति स्वभावकरि स्थित होतीहै तब अपरके चित्तकी चेष्टा इसके चित्तविषे फुरि आती है, अरु जबलग चित्त मलिन होता है देहकी भावनाको नहीं त्यागता तबलग किसी पदार्थकेसाथ एकता नहीं होती अरु जिसका चित्त निर्मल होता है तिसको जैसे औरके चित्तका ज्ञान हो आता है; तैसे और सृष्टिविषे भी मिलनेकी शक्ति हो आती है अशुद्धको नहीं होती अरु सर्व जीवकी तीन अवस्था जाग्रत् स्वप्न सुषुप्ति होती हैं, यह तीनोंही अवस्था आत्माविषें जीवत्वका लक्षण हैं, जैसे मृगतृष्णाकी नदीके तरंग किरणोंविषे होते हैं, तिनका अभावहै, अरु जीवको

आत्माविषे प्रमाद है, तिसकरि तीनहू अवस्थाविषे पड़ा भटकता है, जब चित्तकला तुरीयाविषे स्थित होती है, तब जीवन्मुक्त होता है, आत्मसत्ता स्वभावविषे स्थित हुएते आत्माके साथ एकताको प्राप्त होता है, अरु सब जीवनके साथ सुहृद्भाव होता है, जब अज्ञानी सुषुप्त आत्मसत्ताते जागता है, अर्थ यह कि संसारको चिंतवता है, तब संसारको प्राप्त होता है, संसारविषे और संसार, तिसविषे और, इसप्रकार प्रमादकरिकै अनेक सृष्टिको देखता है, जैसे केलेके स्तंभसों पत्रका समूह निकसि आता है, तैसे सृष्टिसों सृष्टिको देखता है, शांतिको नहीं प्राप्त होता, अनेक भ्रमको देखता है, जब उलटिकै अपने स्वभावविषे स्थित होता है, तब नानात्व भाव मिटि जाता है, शांतरूप होता है, जैसे केलेका अंतर शीतल होता है ॥ हे रामजी ! जगत्के समूह भासते हैं, तौ भी आत्मा विषे कछु द्वैत नहीं, आत्माके साथ एकरूप हैं, जैसे केलेके अंतर पत्रते इतर कछु नहीं निकसता, तैसे आत्माते इतर जगत् कछु नहीं, जैसे बीज फूलभावको प्राप्त होताहै, फूलते बहुरि बीज होता है, तैसे ब्रह्मते मन होता है, बहुरि बुद्धिकरि ब्रह्म होता है, बीजका कारण वही रस है, आत्माविषे कारण कार्यभाव कछु बनता नहीं अद्वैत अचिंत्यरूप है, आदिपरमात्मा अकारणरूप है, सोई विचारने योग्य है, औरके साथ क्या प्रयोजन है ? बीज जब अपने भावको त्यागता है, तब फूलभावको प्राप्त होता है, अरु ब्रह्मसत्ता अपने स्वभावको कदाचित् नहीं त्यागती, अरु बीज परिणामकरि आकाररूप है, आत्मा अकृत्रिम निराकार अच्युतरूप है, इसकारणते आत्मा बीजकी नाईं भी कहना नहीं बनता,आकाशते आकाश नहीं उपजता है, अरु अभिन्नरूप है, न कोऊ उपजता है, न किसीको उपजाया है, केवल ब्रह्म आकाश अपने आपविषे स्थित है, जब द्रष्टा पुरुषको देखता है, तब आपको नहीं देख सकता, काहेते कि; मनोराज्यका जगत्विषे परिणाम जाता है, तब विद्यमानवस्तुकी संभाल नहीं रहती, देहादिकविषे आत्मअभिमान होता है, जो पुरुष आत्मसत्ताको देखता है, तिसको जगद्भाव नहीं रहता, अरु जो जगत्को देखता है, तिसको आत्मसत्ता नहीं भासती, जैसे मृगतृष्णाकी नदीको झूठ जानता है, तिसको जलभाव नहीं रहता, अरु जल जानता है, तिसको असत्बुद्धि नहीं होती आकाशकी

नाई पूर्ण पुरुष द्रष्टा है, जब इस दृश्यकी ओर जाते हैं, तब आपको देखि नहीं सकते, आकाशकी नाई ब्रह्मसत्ता सब ठौर पूर्ण है, सो अज्ञानीको नहीं भासती, अरु जो दृश्यका अत्यंत भाव है, सोई पड़ा भासता है, अनुभवका भासना दूर हो गया है ॥ हे रामजी ! जो कोऊ स्थूल पदार्थ होता है, पहाड वृक्ष आदिक तिसके आगे पटल आवता है, तब वह नहीं भासता, तौ जो सूक्ष्म निराकार द्रष्टा पुरुष है, तिसके आगे आवरण आवै, तब वह कैसे भासै ! द्रष्टा पुरुष अपनेही भावविषे स्थित है; दृश्यभावको नहीं प्राप्त होता, अरु दृश्य भासता है, तब द्रष्टा देखनेविषे नहीं आता; अरु दृश्य कछु वस्तु नहीं है, ताते द्रष्टा एक परमात्माही अपने आपविषे स्थित है, जो आत्मरूप सर्व शक्तिमान् देव है, जैसा फुरणा तिसविषे होता है, तैसाही शीघ्र भास आता है, जैसे वसंतऋतुविषे एक रस अनेकरूपको धारताहै, टास, फूल, फल होते हैं, तैसे एक आत्मसत्ता अनेक जीवदेह होके भासती है, जैसे अपनेही अंतर अनेक स्वप्नभ्रमको देखता है, तैसे अहं आदिक जगत् दृश्यभ्रमको अनुभव प्राप्तही होता है, अरु स्वरूपते कछु अपर हुआ नहीं; जैसे एक बीजके अंतर पत्र, टास, फूल, फल अनेक होते हैं, तिसविषे और बीज होता है, बीजके अंतर और वृक्ष, तिसके अंतर और बीज; इसीप्रकार एक बीजके अंतर अनेक वृक्ष होते हैं, तैसे एक आत्माविषे चिद्अणु अनेक फुरते हैं, तिनके अंतर सृष्टि, बहुरि सृष्टिके अंतर चिद्अणु, बहुरि चिद्अणुके अंतर सृष्टि, इसीप्रकार आत्माविषे अनेक सृष्टि ब्रह्मांड हैं, तिनकी संख्या कछु कही नहीं जाती अपने आपकरि फुरते हैं, आप स्वाद लेता है; एक एक चिद्अणुके अंतर अनेक सृष्टि हैं, जैसे तिलविषे तेल है, तैसे चिद्अणुविषे आकाश पवन आदिक अनेक सृष्टि स्थित हैं, आकाशविषे पवन, अग्निविषे जल, सर्व भूतविषे पृथ्वी सृष्टि स्थित है, ऐसा पदार्थ कोऊ नहीं, जो चित्तसत्ताते रहित होवै, अरु जहां चित्त है, तहां तिसका आभासरूप द्रष्टा भी स्थित है, जैसे एक डब्बेविषे लौंग होते हैं, तिनके नष्ट हुएते डब्बा नष्ट नहीं होता, जैसा जैसा तिसविषे फुरना होता है, तैसा स्थित होता है, सबका अधिष्ठानरूप आत्मा है, जैसे जेते कछु कमल हैं, तिनको पूरणहारा जल है; तिसकरि सब विस्फूर्जित होते हैं, अरु प्रकाशते हैं, तैसे सब नष्टहूंको

सत्ता देनेहारा आत्माहै, सबका आश्रयरूप आत्मतत्त्व है, अरु यह जगत् दीर्घ स्वप्नरूप अपने अनुभवते उदय हुआ है, सो बाह्यरूप होइ करि भासताहै, तिस स्वप्नते आगे और स्वप्नांतर होता है, तिसते आगे और स्वप्न इसीप्रकार सृष्टिकी स्थिति भई है, जैसे एक बीजते अनेक वृक्ष होते हैं, तैसे एक चिद्अणुविषे अनेक सृष्टि स्थित हैं, जैसे जलविषे अनेक तरंग भासते हैं, तैसे आत्मानुभवविषे अनेक जगत् भासते हैं, सो अभिन्नरूप हैं, ताते द्वैतभ्रमको त्यागि दे, न कोऊ देश है, न कालक्रिया जगत् है, केवल एक अद्वैत आत्मसत्ता अपने आपविषे स्थित है, जैसे आकाशविषे आकाश स्थितहै, तैसे आत्मसत्ता अपने आपविषे स्थितहै, ब्रह्म आदि कीटपर्यंत जेता कछु जगत् भासता है, सो एक परमात्माही अपने आपविषे किंचनरूप होताहै, जैसे एक रससत्ता कहूं फूल सुगंधसहित भासती है, कहूं काष्ठरूपको प्राप्त होती है, तैसे एक परमात्मसत्ता कहूं चेतनरूप होइकरि भासती है, कहूं जडरूप होइकरि दिखाई देती है, जो सर्व गत अविनाशी आत्मा है, सोई सबका बीजरूप है, तिसीके अंतर सब जगत् स्थित है, जिसको आत्माका प्रमाद है, तिसको नानारूप भासता है, जैसे जलविषे डुबै, बहुरि निकसै, बहुरि डुबै, बहुरि निकसै अरु जैसे स्वप्नविषे और स्वप्नांतरको प्राप्त होताहै, तैसे प्रमाददोषकरिकै भ्रमते भ्रमांतर नानाप्रकारके जगत्को देखता है, जगत् अरु आत्माविषे भेद कछु नहीं, जगत् कछु हुआ नहीं, काहेते कि, आत्माही जगत् जैसा हो भासताहै, भ्रांति करिकै जगत् भासताहै, जैसे विचाररहितको स्वर्णविषे भूषणबुद्धि होतीहै, विचार कियेते भूषणबुद्धि नष्ट हो जाती है, एकही स्वर्ण भासता है, तैसे जो विचारते रहित है, तिसको यह जगत्पदार्थ भासतेहैं कि, यह मैं हौं, यह जगत् है, यह उपजा है, यह लीन होता है, अरु जिसको सत्संग शास्त्रके संयोगते विचार उपजा है, तिसको दिनप्रतिदिन भोगकी तृष्णा घटती जाती है, आत्मविचार दृढ होता जाता है, जैसे किसीको ताप आता है, सो औषधकरिकै निवृत्त हो जाता है, सो दो लक्षण तिसविषे प्रत्यक्ष होते हैं; एक तृषा बहुत थी, सो निवृत्त हो जाती है, दूसरी शरीरसों तप्त निवृत्त हो जाती है, शीतलता प्रगट होती है, तैसे ज्यों ज्यों विवेक दृढ होता है, त्यों त्यों इंद्रियका जीतना होता है; संतोषकरि अंतर शीतल होताहै, सर्व

आत्मही भासताहै, यह विवेकका फलहै ॥ हे रामजी ! जिस पुरुषको वचनका विवेकहै, अरु निश्चयविषे नहीं, तिसका विवेक कछु कार्य सिद्ध नहीं करता, जैसे मूर्त्तिका अग्नि लिखा होता है, तिसते कछु कार्य सिद्ध नहीं होता, तैसे निश्चयते रहित वचनका विवेक है, सो दुःखको निवृत्त नहीं करता, शांति नहीं प्राप्त होती है, जैसे जब पवन चलताहै, तब पत्र वृक्ष हिलते हैं, उसका लक्षण भासता है, अरु वाणीकरि कहिये तब हिलते नहीं, तैसे जब विवेक हृदयविषे आता है, तब भोगकी तृष्णा घट जाती है, मुखके कहनेकरि तृष्णा घटती नहीं; जैसे चित्रकी मूर्तिपर अमृत लिखा होवै, सो पान करने अरु अमर होनेका कार्य नहीं करता, अरु मूर्त्तिका लिखा अग्नि तिसको निवृत्त नहीं करता, अरु मूर्त्तिकी लिखी स्त्री स्पर्श करने अरु संतान उपजनेका कार्य नहीं करती, तैसे मुखका विवेक वाणी विलास है, अरु भोगकी तृष्णाको निवृत्तकर शांतिको प्राप्त नहीं करता; जैसे मूर्त्तियां देखनेमात्र हैं; तैसे वह विवेक वाग्विलास है ॥ हे रामजी ! प्रथम जो विवेक आताहै, तब रागद्वेषको नाश करता है, अरु ब्रह्मलोकपर्यंत जेते कछु विषय भोगरूप हैं, तिनकी तृष्णा अरु वैरभावको नष्ट करता है, जैसे सूर्यके उदय हुएते अंधकार नष्ट होता है, तैसे विवेकके उदय हुएते अज्ञान नष्ट हो जाता है, अरु पावनपदकी प्राप्ति होती है ॥ इति श्रीयोगवासिष्ठे स्थितिप्रकरणे जीवपदवर्णनं नाम अष्टादशः सर्गः ॥१८॥ वसिष्ठ उवाच ॥ हेरामजी! सर्व जीवका बीज परमात्मा है, सो सर्व ओरते आकाशकी नाईं स्थित है, तिसके फुरनेका नाम जीव है, सोजीव जीवके अंतर जगत है, तिसके आगे और नानाप्रकारकी रचना है, वस्तुते चिद्घन जीवके रूपसों अंतर स्थित भयाहै, ताते सब जीव चिद्घनरूपहैं, जैसे केलेके स्तंभविषे पत्र होते हैं, तैसे आत्मसत्ताके अंतर जीव स्थित हैं; जैसे पुरुषके अंतर कीट होतेहैं. तैसे आत्माके अंतर जीवराशि हैं; जैसे प्रस्वेदकरिकै जुवां लीखैं आदिक जीव उपजते हैं; और पदार्थते कीट उपज आते हैं, तैसे आत्मासों चित्कलाके फुरनेकरि जीवके समूह फुरि आते हैं, बहुरि जीव जैसी जैसी सिद्धताके निमित्त यत्नउपासना करते हैं, तैसी गतिको प्राप्त होते हैं; उपासनाकी विचित्रताते नानाप्रकारकी गतिको प्राप्त होते हैं, जो देवताकी उपासना करते हैं सो देवताको प्राप्त होते हैं, यक्षके उपासक यक्षको प्राप्त

होते हैं, इसीप्रकार जिसकी उपासना करते हैं; तिसीको प्राप्त होते हैं, ब्रह्मके उपासक ब्रह्मको प्राप्त होते हैं, ताते जो अतुच्छ पद है; तिस महत्पदका आश्रय करो, जैसे शुक्र जब दृश्यके ओर लगा, तब अनेक प्रकारके दृश्य भ्रमको प्राप्त हुआ, जब शुद्ध बुद्धकी ओर आया, तब निर्मल बोधको प्राप्त हुआ, जैसे जिसकी कोऊ उपासना करताहै, सो तिसको प्राप्त होता है, अन्यको नहीं प्राप्त होता॥ राम उवाच॥ हे भगवन्! जाग्रत् अरु स्वप्नका जो भेद है सो कहौ कि, जाग्रत् क्या है, अरु स्वप्न क्या है?॥ वसिष्ठ उवाच॥ हे रामजी! स्थिरप्रतीतिका नाम जाग्रत् है, अरु अस्थिरप्रतीतिका नाम स्वप्न है, जो चिरकाल रहता है, तिसका नाम स्थिर है, अरु जो अल्पकाल रहे, तिसका नाम अस्थिर है, दीर्घ काल प्रतीतिका नाम जाग्रत् है; अल्पकालका नाम स्वप्न है. और भेद कोऊ नहीं, दोनोंका अनुभव सम होता है, जो शरीरके अंतर स्थित होइकरि शरीरको जिवावता है, तिसका नाम जीव है, तेजरूप है; बीजरूप है; जीवधातु है, यह सब तिसके नाम हैं, जब जीवधातु स्पंदरूप होता है, जीवतके रंध्रविषे पसरती है, तब मन वाणी देहकरि सब व्यवहार होता है, रंध्र खुलि जाते हैं; तब इसको जाग्रत् कहते हैं, अरु जब चित्तकला जाग्रत् व्यवहारविषे स्पष्टरूप होती है, अरु अंतर होइकरि फुरती है, तिसकरि अंतर जगद्भ्रम भासने लगता है, तब स्वप्न कहाता है, अब सुषुप्तिका क्रम श्रवण कर. मन, वाणी अरु शरीरकरि जहां क्षोभ कोऊ नहीं, अरु स्वच्छवृत्ति जीवधातु अंतर स्थित होती है, हृदयकोशविषे प्राणवायुकरि क्षोभ नहीं होता, नाडी रसकरि पूर्ण होती हैं, उस मार्गते प्राण आनेजानेसों रहित होते हैं, क्षोभते रहित सम वायु चलता है, तिसका नाम सुषुप्ति है, जैसे वायुते रहित दीपक गृहविषे एकांत उज्ज्वल प्रकाशता है, तैसे तहां संवित्सत्ता अपने आपका अनुभव लेती है, जैसे तिलविषे तेल स्थित होता है, तैसे जीव संवित्कलनाकरिकै जो कल्पता है, सो तिस कालमें अपने आपविषे स्थित होता है, जैसे बर्फविषे शीतलता होती है, घृतविषे चिकनाई होती है; तैसे तहां संवित्‌विषे संवित्सत्ता स्थित होती है; तिसका नाम सुषुप्तिअवस्था है, जडरूप तिस सुषुप्तिअवस्थाते जागै अरु दृश्य भावको प्राप्त न होवै, निर्विकल्प प्रकाशताविषे स्थित होवै; सो ज्ञानरूप

तुरीया है, तब व्यवहार पडा करै, तौ भी जीवन्मुक्त है, जाग्रत् स्वप्न सुषुप्तिविषे बंधमान नहीं होता ॥ हे रामजी ! आत्मसत्तातें फ़ुरना होता है, अरु स्वरूप विस्मरण हो जाता है; अरु फ़ुरना दृढ होकरि स्थित होता है, इसीका नाम जाग्रत् है, अरु स्वरूपते प्रमाददोषकरिके फुरै, जगत् भासै, तिसको सत्‌रूप जानै, यह प्रतीति थोडा काल रहिकरि बहुरि निवृत्त हो जावै, तिसका नाम स्वप्न है, अरु दृश्य फ़ुरनेका अभाव हो जावै अरु अज्ञातवृत्ति जडतारूप तिसका नाम सुषुप्ति है, अरु अनुभवविषे ज्ञान स्थित है, जाग्रत् स्वप्न सुषुप्ति तीनोंका व्यवहार होवै, अरु निश्चयविषे इनका सद्भाव रंचक भी न होवै, केवल ज्ञानविषे अहंप्रतीति होवै, वृत्ति तिसते चलायमान न होवै, तिसका नाम तुरीयापद है, तिसविषे स्थित भया जीवन्मुक्त होता है, और जो जीव हैं, सो जाग्रत् स्वप्न सुषुप्ति तीन अवस्थाविषे स्थित होते हैं, जब नाडी अन्नके रससों पूर्ण हो जाती हैं; प्राणवायु हृदय नाम्नी नाडीविषे नहीं आता, तब चित्तसंवित् अक्षोभरूप सुषुप्त होता है, जब अन्न उस नाडीसों पचता है, अरु प्राणवायु चलने लगता है, तब चित्तसंवित् क्षोभरूप फ़ुरणे लगता है, तिस फ़ुरणेकरि अपने अंतरही बडे जगद्भ्रमको देखता है, जैसे बीजते वृक्ष होता है, जब वायुका रस नाडीविषे बहुत होता है, तब चित्तसत्ता आकाशविषे उडना, अरु वायु अँधरियादिक पदार्थको देखता है, अरु जब कफका रस नाडी विषे अधिक होता है, तब फूल, वेलियां, बावलियां, जल, मेघ, बगीचे, आदिक पदार्थ भासते हैं, जब पित्तकी अधिकता होती है; तब उष्णरूप अग्नि रक्त वस्त्र आदिक भासने लगते हैं, इसप्रकार वासनाके अनुसार जगद्भ्रमको देखता है, जैसी जैसी भावना दृढ होती है, तैसाही पदार्थ दृढ हो भासता है, अरु जब पवन क्षोभायमान होता है, चित्तसंवित् नेत्र आदिक द्वारसों बाह्य निकसिकरि रूपादिकका अनुभव करती है, सत् जानिकै चिरपर्यंतका नाम जाग्रत् है, वासनाके अनुसार मनरूपी शरीरसाथ नेत्र जिह्वादिक विना रूपरसादिकका अनुभव होताहै, तिसका नाम स्वप्न है, स्वरूपते न कोऊ स्वप्न है, न जाग्रत है, न सुषुप्ति है केवल सत्ता अपने आपविषे स्थित है, तिसके फ़ुरनेका नाम जाग्रत् स्वप्न सुषुप्ति है, चिरकाल फ़ुरनेका नाम जाग्रत है, अल्प कालका नाम स्वप्न है, सो

प्रतीतिका भेद हुआ, वस्तुते भेद कछु नहीं, जो वस्तुसे भेद हुआ, तौ जगत्स्वरूप हुआ क्यों ? ताते यही भावना दृढ करहु कि, जगत असत्रूप स्वप्नवत् है, सद्भावना करनी इसविषे दुःखका कारण है ॥ इति श्रीयोगवासिष्ठे स्थितिप्रकरणे जाग्रत्स्वप्नसुषुप्तितुरीयारूप वर्णनं नाम एकोनविंशतितमः सर्गः ॥ १९ ॥ ॥ वसिष्ठ उवाच ॥ हे रामजी ! यह मैं तुझको मनका रूप निरूपण करि दिखाया है, अवस्थाका निरूपण भी इसनिमित्त किया है और प्रयोजन कछु नहीं ताते जैसा निश्चय चित्तविषे होता है, तैसाही हो भासता है, जैसे अग्निविषे लोहा डारिये सो अग्निरूप हो जाता है, तैसे मन जिस पदार्थकेसाथ लगता है, तिसका रूप हो जाता है; भवा, अभाव, ग्रहण, त्याग, सब मनहीकरि होते हैं, और न कोऊ सत् है, न असत है, केवल मनकी चपलताकारि पडे फुरते हैं, मनके मोहकारि जगत् भासता है, मनके नष्ट हुएते जगत् नष्ट हो जाता है, जो मलीन मन है,सो अपने फुरनेकारि जगत्को रचता है, यह मनही पुरुष है, इसको तुम अशुभ मार्गविषे नहीं जोड़ना, जब मनको जीतौगे, तब सर्व जगत्विषे तुम्हारी जय होवैगी, मनके जीते सब जगत जीता जाता है, तब बड़ी विभूति प्राप्त होती है, जो शरीरका नाम पुरुष होवै, तौ शुक्रका शरीर पड़ा था और शरीर न रचता, शरीर वहाँ पडा रहा, अरु मन और शरीरको रचता फिरा, ताते शरीरका नाम पुरुष नहीं, मनहीका नाम पुरुष है, शरीर चित्तका किया होता है, शरीरका किया चित्त नहीं होता, जिस ओर चित्त जाय लगता है, तिसी पदार्थकी प्राप्ति होती है इसविषे संशय नहीं, ताते अति तुच्छ पद है, आत्मसत्ताका चित्तविषे सदा अभ्यास करै और भ्रमको त्यागि देहु, जब मन दृश्यकी ओर संसरता है, तब अनेक जन्मके दुःखको प्राप्त होता है, अरु जब आत्माकी ओर इसका प्रवाह होता है, तब परमपदको प्राप्त होता है, ताते दृश्य भ्रमको त्यागिकै आत्मपदविषे स्थिति करहु ॥ इति श्रीयोगवासिष्ठे स्थितिप्रकरणे भार्गवोपाख्यानसमाप्तिवर्णनं नाम विंशतितमः सर्गः ॥ २० ॥ राम उवाच ॥ हे भगवन् ! सब धर्मके वेत्ता ! मेरे हृदयविषे बड़ा संशय उत्पन्न भया है, जैसे समुद्रविषे तरंग उपजिकै पसर जाता है, तैसे मेरे हृदयविषे संशय पसर गया है, जो देश काल वस्तुके परिच्छेदते रहित नित्य निर्मल विस्तृत निरामय आत्मसत्ता है, तौ

तिसविषे मन नामक मलिन संवित् जो है सो कहांते आया, अरु कैसे स्थित भया जिसते इतर और वस्तुही कछु नहीं, न आगे होवैगी, तिसविषे कलंकता कहांते आई ॥ वसिष्ठ उवाच ॥ हे रामजी ! तुझने भला प्रश्न किया है, अब तेरी बुद्धि मोक्षभागी हुई है, जैसे नंदनवनके कल्पवृक्षके साथ कल्पमंजरी लगती है, तैसे तेरी बुद्धि पूर्व अपरके विचारते जागी है, तू अब तिस पदको प्राप्त होवैगा, जिस पदको शुक आदिक प्राप्त हुए हैं, अरु तेरे प्रश्नका उत्तर मैं सिद्धांतकालविषे कहौंगा; अरु तिस कालविषे तुझ को आत्मपद हस्तामल भासैगा ॥ हे रामजी सिद्धांतका प्रश्न उत्तर सिद्धांत कालविषे शोभता है, जिज्ञासु कालविषे जिज्ञासुका शोभता है, जैसे वर्षाकालविषे मोरकी वाणी शोभती है, अरु शरत्कालविषे हंसकी वाणी शोभती है, अरु जैसे वर्षाकालके नष्ट हुएते स्वाभाविकही आकाशकी नीलता पडी भासती है, अरु जैसे वर्षाकालविषे मेघकी घटा शोभती है, तैसे प्रश्न उत्तर भी जैसा समय होवै, तैसाही शोभता है ॥ हे रामजी ! मैं तुझको अनेक प्रकारके दृष्टांत युक्तिकरि कहौंगा, मनका स्वरूप अरु जिसप्रकार यह निवृत्त होता है सो भी क्रमकरि बहुत प्रकार कहौंगा. मनकी शांतिका उपाय वेदने निर्णय किया है अरु शास्त्रकारने कहा है, तिनके लक्षण तू श्रवण कर. चंचल जो मन है, तिसने जैसा जैसा भाव अंगीकार किया है, तैसाही रूप होइकरि भासने लगा है, जैसे पवन जैसी सुगंधिकेसाथ मिलता है, तैसा तिसका स्वभाव हो जाता है, जैसे जल जिस रंगकेसाथ मिलता है, तैसा रूप हो भासता है, तैसे मन जिस पदार्थकेसाथ मिलता है, तिसका रूप हो जाता है, जो मनते रहित शरीरकेसाथ क्रिया करता है, तिसका फल कछु नहीं होता, अरु मनकरिकै करता है तिसका फल पूर्ण होता है, जिस ओर मन जाता है, शरीर भी तिसी ओर लगा जाता है, जो कर्म इंद्रिय क्षोभवान् होवैं, अरु बुद्धि इंद्रिय जो मनरूप हैं; सो क्षोभको प्राप्त होवैं, अरु देह इंद्रिय स्थिर होवै, तौ कार्य होता है जैसे धूलि क्षोभायमान होवै, तौ पवनविना आकाशको उड नहीं सकती अरु पवन क्षोभायमान होवै तौ भावै तैसी धूलि स्थित होवै, तिसको उड़ाय ले जाता है, तैसे देह पड़ा रहता है, मन अपने फुरनेकरि स्वप्नविषे अनेक अवस्थाको प्राप्त होता है, अरु जाग्रत्‌विषे भी जिस

ओर मन फुरता है, देहको भी तहां ले जाता है, ताते सब कार्यका बीज मन है, मनते सब कर्म होते हैं, मन अरु कर्म परस्पर अभिन्नरूपहैं, जैसे फूल अरु सुगंध अभिन्नरूप होते हैं, तैसे मन अरु कर्म हैं, जिस कर्मका अभ्यास मनविषे दृढ होताहै, तिस कर्मकी शाखा पसरता है, अरु तिसी फलको प्राप्त होता है, अरु तिसी स्वादका अनुभव करता है; जिस जिस भावको चित्त ग्रहण करता है, तिसी तिसी भावको प्राप्त होता है, अरु तिसीको कल्पनारूप मानता है. धर्म, अर्थ, काम, मोक्ष ये चार पदार्थ हैं, तिनविषे जिसकी भावना मन दृढ करता है, तिसको सिद्ध करता है, कपिलदेवने जो सब शास्त्र किये, सो मनकी सत्ताकरि किये हैं, तिसने निर्णय किया है कि, प्रकृति जो माया है, तिसके दो स्वभाव हैं, एक अनुलोम परिणाम है, दूसरा प्रतिलोमपरिणाम है, प्रतिलोमपरिणाम होता है, तब दृश्यभावको प्राप्त होताहै, अरु अनुलोमपरिणाम होताहै, तब अंतर्मुख आत्माकी ओर आता है, आत्मा शुद्धरूप है, आत्माकी ओर अनुलोमपरिणाम मोक्षका कारण है, और उपाय कोऊ नहीं. अरु वेदांतवादीने यह निश्चय किया है कि, यह सर्व ब्रह्महीं है,शम दम आदिककरि जब मन संपन्न होता है, तब यह निश्चय धारण होता है कि, सर्व ब्रह्म है, ब्रह्मज्ञानविना और यत्नकरि मोक्ष नहीं होता, उनके चित्तविषे यही निश्चय है, अरु विज्ञानवादी कहते हैं, जबलग बुद्धि पडी फुरती है, तबलग संसार है, जब इसका फुरणा अपने स्वभावविषे होताहै, तब उस कालविषे स्वरूप स्थित होता है, जब वह काल आवैगा, तब मोक्षकी प्राप्ति होवैगी, अर्हंत जैसे वडे हैं, तिनको अपने निश्चयअनुसार भासता है, मीमांसा, पातंजल, वैशेषिक न्यायते आदिक लेकरि शास्त्रकार हैं, सो अपनी बुद्धिकरि जैसा निश्चय तिनने धाराहै, तैसाही तिनको भासता है, स्वरूपते न कोऊ मत है, न शास्त्र है, सबका कारण मन है, मनको अंगीकार करिकै सब मत डूबे हैं, सबका कारण मन है, न निंब कटु है, न मधु मिष्ट है, न अग्नि उष्ण है, न चंद्रमा शीतल है, जैसा जैसा जिनके मनविषे निश्चय होता है, तैसा तैसा तिसको भासता है, किसीको निंब प्यारी होती है, मधु कटु लगता है, नीमका जो कीट है, तिसको मधु नहीं रुचता, तो मधु कटुक हो गया क्यों ? इसी कारणते वास्तव नहीं; विरहिणी स्त्रीको चंद्रमा

अग्निवत् भासताहै; चकोर अग्निको भक्षण करि लेताहै, जैसी जैसी भावना पदार्थविषे हो गई है, तैसा तैसा हो भासता है, सब जगत् भावनामात्र है, जिस पुरुषको दृश्यविषे भावना है, सो अनेक दुःख भ्रमको देखता है, अरु जिसको शमदमादिक साधनकरिकै अकृत्रिमपदकी प्राप्ति हुई है, अरु मन तदाकार भया है, सो शांतिको प्राप्त भया है, और नहीं प्राप्त होता ॥ हे रामजी ! यह जगत् दृश्य तेरे मनके स्मरणविषे स्थित भयाहै, सो तुच्छरूप है, इसका मनते त्याग करहु, यह सुख दुःख आदिक महाभ्रमको देनेहारा है, यह संसार अपवित्र अरु असत् मोहरूप महाभयका कारण है, आभासरूप है, मायामात्र अविद्यारूप है, इसकी भावना भयका कारण है; जगत्के साथ संवित्की तन्मयता होती है, इसका नाम कर्मबुद्धीश्वर कहते हैं, जब द्रष्टाको दृश्यके साथ संयोग होता है, तब बडे मोहको प्राप्त होता है, दृश्यके साथ मिलिके भ्रमकरि अनात्मविषे आत्माभिमान करता है, देहादिकको अपना आप जानता है, संसाररूप मदकरिकै उन्मत्त हो जाताहै, स्वरूपकी संभाल इसको नहीं रहती, इसका नाम अविद्या बुद्धीश्वर कहते हैं, जो दृश्यके साथ मिला है, तिसका कल्याण नहीं होता, जिसके आगे मनका पटल है, तिसको स्वरूपका भान नहीं होता, जैसे सूर्यके आगे मेघका आवरण आता है, तौ नहीं भासता, तैसे मनके आवरणकरि आत्मा नहीं भासता, ताते मनरूपी आवरणको दूर करहु, मनका रूप जो है सो फुरणा है, तिसको संकल्प कहिये, जो जो संकल्प फुरै तिसका त्याग करहु, असंकल्प होनेते मन नष्ट हो जावैगा ॥ हे रामजी ! जब तू सर्व भावविषे असंग होवैगा, तब सर्व पदार्थविषे द्रष्टा पुरुष प्रसन्न होवैगा, तिसकरि निर्विकल्प चिदात्माकी प्राप्ति होवैगी, तहां न जगत्की सत्ता है, न सुख है, न दुःख है, केवल केवलीभाव है, सो अपने आपविषे प्रकाशता है; जब संसारकी भावना तेरे हृदयते उठि जावैगी, तब निर्मल स्वरूपविषे स्थित होवैगा, तब दृश्यभ्रम निवृत्त हो जावैगा, जैसे जेवरीके सम्यक् ज्ञानते सर्पभ्रम नष्ट हो जाता है, तैसे चिदात्माके सम्यक् ज्ञानते जगद्भ्रम नष्ट हो जावैगा; ताते दृश्य भावनाको त्यागिकै चिदात्माकी भावना कर, जैसे भावना होती है, तैसे हो भासताहै, जब प्रथम भावनाका त्याग करि और भावना करताहै तब प्रथमका

अभाव हो जाता है, जैसे दिन हुएते रात्रिका अभाव हो जाता है, तैसे आत्मभावना दृश्य भावनाका अभाव होता है, जैसे लोहेको लोहा काटता है, तैसे भावनाको भावना काटतीहै, ताते अतुच्छपद निरुपाधि निःसंशयरूपका आश्रय करहु, जब तिसकी भावना दृढ होवैगी, तब भ्रमते रहित सिद्ध पदको प्राप्त होवैगा ॥ हे रामजी ! तेरा स्वरूप आत्मा है, तू बुद्धि आदिककी कल्पना मत करु, जैसे बालकको कहिये कि, शून्यविषे सिंह है, तब वह भयवान् होताहै, तैसे जब शून्य शरीरादिकविषे विचारते बुद्धि नहीं पाती यह मैं हौं यह अपर है, इत्यादिक जो कल्पना होती है, आत्माकेविषे सो ऐसे हैं, जैसे बालकको अपने परछाईविषे वैतालकल्पना होती है, तैसे इसको अपनी कल्पनाके वशते भाव अभाव शुभ अशुभ क्षणक्षणविषे प्राप्त होते हैं, कोऊ सत्रूप कोऊ असत्रूप भासते हैं, जैसी जैसी भावना होती है, तैसा तैसा भासता है ॥ परस्त्रीविषे कामबुद्धि होती है, तब स्पर्श कर स्त्रीवत् आनंददायक होता है, अरु जो स्त्रीकेविषे माताकी भावना करता है तब तिसते कामबुद्धि जाती रहती है, ताते तू देख, जैसी जैसी भावना होती है, तैसाही हो भासता है, भावनाके अनुसार इसको फल होता है, तत्काल तिसी आकारको देखता है, ऐसा पदार्थ कोऊ नहीं, जो सत् नहीं, अरु ऐसा कोऊ नहीं जो असत् नहीं, जैसा जैसा जिसने निर्णय कियाहै, तैसाही तिसको भासताहै, ताते इस संसारकी भावनाको त्यागिकै स्वरूपविषे स्थित होहु ॥ हे रामजी ! मणिविषे जो प्रतिबिंब पडता है, तिसके दूर करनेको मणि समर्थ नहीं होता, तू तौ मणिवत् जड़ नहीं तू चैतन्यरूप आत्मा है, तेरेविषे जो दृश्यका प्रतिबिंब पड़ता है, तिसका त्याग करहु, कैसे त्यागो कि, जो संकल्प दृश्यका उठे, तिसको असत्रूप जानिकै त्यागि देहु; अरु प्रकृति व्यवहार आन प्राप्त होवै, तिसको करहु, अरु मणिकी नाईं अंतरते रंजते रहित होहु, जैसे प्रतिबिंब बहिर्दृष्टि आता है अरु अंतरते रंग नहीं चढ़ता तैसा बहिर्दृष्टि व्यवहार तेरेविषे भासै, अरु अंतर राग दोष स्पर्श न करै ॥ इति श्रीयोगवासिष्ठे स्थितिप्रकरणे विज्ञानवादो नाम एकविंशतितमः सर्गः ॥ २१ ॥ ॥ वसिष्ठ उवाच ॥ हे रामजी ! जब जीवको संतके संग अरु सच्छास्त्रके विचारकरि विचार उपजता है, तब अपर ओरते वृत्ति उपरत होती है, अरु

संसारका मनन निवृत्त हो जाता है, विवेकरूप बुद्धि आनि उदय होती है, तव संसार दृश्यकी त्यागबुद्धि होती है, द्रष्टा आत्माविषे अंगीकारबुद्धि होती है, द्रष्टा पुरुष प्रकट होता है; दृश्य जो है सो अदृश्यताको प्राप्त होताहै, अर्थ यह जो द्रष्टाके लक्षकरि दृश्यको असत्‌रूप जानता है, जब यह पुरुष ज्ञान ज्ञेय होता है, तव परम तत्त्वविषे जागता है, अरु संसारकी ओरते घन सुषुप्त मृतकी नाईं होता है, संसारकी ओरते वैराग्य भोगविषे अभोग, रसविषे नीरस बुद्धि उपजती है, जब ऐसी बुद्धि हुई तब मन अपनी सत्ताको त्यागिकरि आत्मरूप होता है, जैसे बर्फका पूतला सूर्यके तेजकरि जलरूप हो जाता है, जब मनविषे संसारकी सत्ता होती है, तिस फुरनेकरि जड़भागी होता है, जब विवेकरूपी सूर्य उदय होता है, तब मन गलिकै आत्मरूप हो जाता है, जैसे जबलग मरुस्थलविषे धूप होताहै तबलग वहांते मृगतृष्णाकी नदी नष्ट नहीं होती, जब वर्षा होती है, तब नष्ट हो जाती है, तैसे जबलग संसारकी सत्यता होती है, तबलग मन नष्ट नहीं होता, जब ज्ञानकी वर्षाहोती है, तब दृश्यसहित मन नष्टहो जाताहै ॥ हेरामजी ! संसाररूपी वासनाकी जालहै, तिसविषे जीवरूपी पक्षी फँसे हैं, जब वैराग्यरूपी चूहा इसको कतर जाता है, तब जीव निर्बंध होता है; जैसे मलिन जल निर्मल होता है, तैसे वैराग्यके वशते जीवका स्वभाव निर्मल होताहै, जब जीव निराग निरुपाधि असंग होता है, अरु रागद्वेष मोहते रहित होता है, तब जैसे पिंजर टूटेते पक्षी निर्बंध होता है, तैसे जीव निर्बंध होता है, संदेहकी जो दुर्मति है, सो शांत हो जाती है, जगद्भ्रम नष्ट होता है, अंतर पूर्ण हो जाता है, जैसे पूर्णमासीका चंद्रमा शोभता है, तैसे ज्ञानवान् शोभता है, सबते उत्तम सौंदर्यताको प्राप्त होता है; उदय अस्त राग द्वेष नष्ट हो जाता है, अरु सर्व समताभाव आनि वर्त्तता है, न्यूनता और विशेषता भाव नष्ट हो जाता है, जैसे पवनते रहित सोम समुद्र अचलरूप होता है, तैसे असंग पुरुष मूक जड अंध कर्मकी वासनाते रहित अचल हो जाता है, वह सब चेतन प्रकाश देखता है, तिसकी बुद्धि विवेककरि प्रफुल्लित हो आती है, जैसे सूर्यके उदय हुएते सूर्यमुखी कमल प्रफुल्लित हो आते हैं, तैसे वह पुरुष परम लक्ष्मीकरि शोभता है, जैसे पूर्णमासीका चंद्रमा शोभता है, अरु बहुत कहनेकरि क्या है, ज्ञान ज्ञेय

पुरुष जो है, सो आकाशवत् हो जाता है, न उदय होता है, न अस्त होता है, विचारकरिकै जिसने आत्मतत्त्वको जाना है, सो तिस पदको प्राप्त होता है. जहां ब्रह्मा, विष्णु, रुद्र स्थित हैं, सबही तिसपर प्रसन्न होते हैं, प्रकट आकार उसका भासता है, अरु अंतर अहंकारते रहित है, विकल्पके समूह तिसको खैंच नहीं सकते, जैसे जलका अभाव जाननेवालेको मृगतृष्णाकी नदी खैंच नहीं सकती ॥ हे रामजी ! आविर्भाव अरु तिरोभावरूप जो संसार है, तिसको रमणीयरूप जानिकै ज्ञानवान् खेद नहीं पाता, देहके नाशविषे अपना नाश नहीं मानता उपजनेविषे उपजना नहीं मानता, जैसे घट उपजेते आकाश उपजता नहीं; काहेते जो आगे सिद्ध है, अरु घटके अभावते आकाशका अभाव नहीं होता, तैसे देहके उपजेते आत्मा उपजता नहीं, देहके नष्ट हुएते नष्ट नहीं होता, जब ऐसा विवेक उदय होता है, तब वासनाका जल नष्ट हो जाता है; कोऊ भ्रम नहीं रहता, जैसे मृगतृष्णाकी नदी ज्ञानकरिकै अभाव हो जाती है, जबलग इसको यह विचार नहीं उपजता कि, मैं कौन हौं, अरु जगत् क्या है, तबलग संसाररूपी अंधकार रहता है, अरु जो पुरुष ऐसे जानता है कि, संसारभ्रम मिथ्या उदय हुआहै, परम आपदाका कारण देह अनात्मरूपहै, आत्माते भिन्न यह जगत् कछु नहीं, सब आत्मसत्ताकरिकै स्थित है; जो ऐसे देखता है, सोई यथार्थ देखता है, सब चैतन्यसत्ता है, मैं अनंत चिदाकाशरूप हौं, देश काल वस्तुके परिच्छेदते रहित हौं, आधि व्याधि भय उद्वेग जरा मरण जन्म आदिक संयुक्त देह है, सो मैं नहीं ऐसे जो देखता है सोई देखता है बालके अग्रके लक्षभाग करिये बहुरि एक भागके कोटि भाग करिये ऐसा सूक्ष्म सर्वव्यापी है, ऐसे जो देखता है, सोई देखता है, मैं सर्वशक्त अनंत आत्मा हौं, सर्व पदार्थविषे स्थित, मैं अद्वैत चिदादित्य हौं ऐसे जो देखताहै सोई देखता है, अध ऊर्ध्व मध्य सबविषे व्यापाहौं, मुझते इतर द्वैत कछु नहीं, ऐसे जो देखता है सोई देखताहै, जैसे सूत्रकारि मणके परोये होते हैं, तैसे सर्व मुझकरि परोये हैं, ऐसे जो देखता है सोई देखताहै, न मैं हौं, न यह जगत् है. केवल ब्रह्मसत्ता स्थितहै, सत् असत्के मध्यविषे जो एक देव प्रकाशक है, त्रिलोकीविषे जो एक है सो मैं एक अविनाशी पुरुष हौं जैसे समुद्रविषे तरंग फुरते हैं, अरु लीन

होते हैं, तैसे मेरेविषे जगत् फुरते हैं, अरु लीन होते हैं, ऐसे जो देखता है; अथवा प्रथम अहं है, तब पाछे दृश्य जगत् होता है, सो न मैं हौं न जगत् है, केवल एक आत्मसत्ता है, अहं अरु मम तिसविषे कोऊ नहीं, ऐसे जो देखता है सो देखता है, दृश्यते रहित मैं चैतन्यरूप भैरव अपार हौं, मैं जगज्जालको पूर्ण करि रहा हौं, ऐसे जो देखता है, सो देखता है ॥ जो पुरुष ज्ञानवान् है, सो सुखदुःख भाव अभावविषे चलायमान नहीं होता, केवल ब्रह्मरूपविषे स्थित है और जगत्के भाव अभावते रहित अनाभास सन्मात्ररूप है, जो हेयोपादेय बुद्धिते रहित आकाशवत् सर्वात्मभावविषे स्थित भयाहै, कोऊ पदार्थ जगत्का उसको अपने वश नहीं कर सकता, सो महात्मा पुरुष महेश्वर तमप्रकाशते रहित है, सर्व कल्पनाते मुक्त शम स्वच्छरूप है, उदयअस्तते रहित समवृत्त है, जिसको ऐसी परम बोध अनंतसत्ताविषे स्थिति है, तिसको मेरा नमस्कार है ॥ इति श्रीयोगवासिष्ठे स्थितिप्रकरणे अनुत्तमविश्राम वर्णनं नाम द्वाविंशतितमः सर्गः ॥ २२ ॥ वसिष्ठ उवाच ॥ हे रामजी ! उत्तम पदका जिसने आश्रय किया है, ऐसा जो जीवन्मुक्त पुरुष है, जिसका कुंभकारचक्रकी नाईं प्रारब्ध शेष रहा है, सो पुरुष शरीररूपी नगरविषे राज्य करता है, अरु लेपायमान नहीं होता, तिसको भोग अरु मोक्ष दोनों सिद्ध होते हैं, जैसे इंद्रका वन सुखरूपहै, तैसे उसका शरीररूपी नगर सुखरूप होताहै, शरीरके सुखकरि सुखी नहीं होता, दुःखकरि दुःखी नहीं होताहै, अपने स्वरूपविषे स्थित रहता है ॥ राम उवाच ॥ हे महामुनीश्वर ! शरीररूपी नगर कैसा है, अरु इसविषे रहिकै योगिराज कैसे करता है, अरु सुख कैसे भुगतता है ॥ वसिष्ठ उवाच ॥ हे रामजी ! ज्ञानीका शरीररूपी नगर रमणीय होता है, सर्व गुणसंयुक्त ज्ञानवान्को अनंत आनंद विलास दिखाता है, जैसे सूर्य प्रकाशको उदय करताहै तिस नगरका स्वरूप और लक्षण श्रवण करहु ॥ शरीरविषे गांठी हैं, सो ईंटे हैं, अरु रुधिर मांस चिक्कडके स्थानहैं, अस्थि लकडियां स्तंभ हैं; अरु किंवार पट हैं, अरु रोम वनस्पती हैं, उदर खाई है, छाती चौक है, नवद्वार हैं तिनविषे नेत्र झरोखे हैं, तिस द्वारकरि त्रिलोकीका प्रकाश होताहै, हाथ गली हैं, जिसकरि लेता देता है, मुख बडी कंदरा है; ग्रीवा शीश बड़े मंदिर हैं, अरु रेखा माला हैं; भिन्न भिन्न

लगी हुई हैं, अरु नाड़ी विभाग करनेके स्थान हैं, अरु प्राणवायु आदिककरि नाड़ीविषे जीव विचरते हैं, आत्मचिंतामणिरूपी तिस विषे श्रेष्ठबुद्धिरूपी स्त्री रहती है, अरु जिनने इंद्रियरूपी वानर बांधि छोड़े हैं, हँसनेरूप जिसविषे महासुंदर फूल हैं, ऐसा शरीररूपी पुर ज्ञानवान्‌को महासुखके निमित्त है, सौभाग्य सुंदररूप है, शरीरके सुखदुःखकरि ज्ञानवान् सुखी दुःखी नहीं होता ॥ हे रामजी ! जो अज्ञानी है, तिसको शरीररूपी नगर अनंत दुःखका भंडार है, अज्ञानकरिकै शरीरके नष्ट हुएते आपको नष्ट हुआ मानता है; अरु ज्ञानवान् इसके नाश हुएते नाश नहीं पाता, जबलग रहता है, तबलग शब्द, स्पर्श, रूप, रस, गंध इनको ग्रहण करता है, इष्टरूप होके भासता है, अरु शरीररूपी नगरविषे भ्रमते रहित निष्कंटक राज्य करता है, लोभते रहित है, इस कारणते शत्रु कछु लेता नहीं, अरु उनको अपने स्थानविषे आने नहीं देता, सो शत्रु कौन है, काम, क्रोध, मान, मोहादिक अज्ञान देश हैं. तिनकेविषे आप प्रवेश नहीं करता, अरु अपने देशविषे तिनको आने नहीं देता, सावधानही रहता है, सो अपना देश कौन है, उदारता, धैर्य, संतोष, वैराग्य, शमता, मित्रता, मुदिता, उपेक्षा, ज्ञानदेश है, तिसविषे अज्ञानको प्रवेश करने नहीं देता, अरु आप ध्यानरूपी नगरविषे रहता है, सत्यता अरु एकता दोनों स्त्रियोंको साथ रखता है, तिनकरि सदा शोभायमान रहता है, जैसे चंद्रमा चित्रा विशाखा दोनों स्त्रियों करि शोभता है, तैसे ज्ञानवान् सत्यता अरु एकताकरि शोभता है, मनरूपी घोडेपर आरूढ होके तीर्थके स्नानको गमन करता है, विचाररूपी तिसको लगाम रखता है, अरु जीव ब्रह्मकी एकतारूपी संगम तीर्थविषे स्नान करता है, सदा आनंदमान रहता है, भोग अरु मोक्ष दोनोंकरि संपन्न होता है, जैसे इंद्र अपने पुरविषे शोभता है; तैसे ज्ञानवान् देहविषे शोभता है, अरु जैसे घटके फूटेते आकाशकी कछु न्यूनता नहीं होती, तैसे देहके नाश हुएते ज्ञानीकी कछु हानि नहीं होती, ज्योंका त्यों रहता है, जो देह होता है, तौ भी तिसके साथ स्पर्श नहीं करता, जैसे घटकेसाथ आकाश स्पर्श नहीं करता, सर्व क्रियाका कर्त्ता भोक्ता है; परंतु किसीकरि लेप नहीं पाता, सदा एकरस भगवान् आत्मदेवविषे रहता है, जब विमानपर आरूढ होइकै शरीररूप नगरविषे विचरता है, तब मैत्रीरूप

नेत्रोंके साथ सबको देखता स्थित होता है, मैत्रीभाव सदा तिसाविषे रहता है. अरु सत्यता एकता सदा तिसके पास है, तिसकरि शोभता है, सदा आनंदमान विचरता है, अपर जीवको दुःखरूपी आरेकेसाथ कटते देखता है, जैसे कोऊ पहाडके ऊपर चढ़िकै पृथ्वीविषे लोकको जलता देखै, अरु आप आनंदवान् होवै, तैसे ज्ञानवान् जीवको दुःखी देखता है; अरु आप आनंदमान् है. उसीकी दृष्टीविषे तौ सदा अद्वैतरूप है; अरु आत्मानंदकी अपेक्षाकरि अनात्मधर्मको दुःखी देखता कहता है, उसके निश्चयविषे जगत् जीव कोऊ नहीं, अरु चारों प्रयोजन धर्म, अर्थ, काम, मोक्ष तिनके पूर्णताको प्राप्त होता है, किसी ओरते उनको न्यूनता नहीं, सर्व संपदा संपन्न विराजमान होता है, जैसे पूर्णमासीका चंद्रमा न्यूनताते रहित विराजता है, यद्यपि भोगको सेवता तौ भी तिसको दुःखदायक नहीं होते, जैसे कालकूट विषको सदाशिवने पान कियाथा, परंतु तिसको दुःखदायक न भया, तैसे वह भी समर्थ है, ताते भोग दुःखदायक नहीं होते, जैसे चोरको जानिकै अपने वशवर्त्ती किया, तब मित्रभाव हो जाताहै, तैसे भोग उसको दुःख नहीं देते, जब भोगको जानता है कि, यह कछु वस्तु नहीं, तब सुखका कारण होते हैं, जबलग इनको सत् जानिकै आसक्त होता है, तबलग दुःखके कारण होते हैं ॥ हे रामजी ! जैसे कोऊ यात्राको जाता है, अरु मार्गविषे स्त्रियां पुरुष मिलते हैं, उनविषे इकट्ठा बैठना, अरु चलना भी होता है, परंतु आपसमें आसक्त नहीं होते, आगे पाछे चले जाते हैं, तैसे ज्ञानवान् संसारके पदार्थोंविषे चित्तको नहीं लगाता, जैसे कोऊ कासिद किसी देशविषे जाता है, अरु मार्गविषे कई सुंदर रमणीय स्थान दृष्ट आते हैं, कई मलिन कष्टके स्थान भासते हैं, परंतु रागद्वेष किसीविषे नहीं करता, जैसे तैसे देखता चला जाता है, तैसे ज्ञानवान् भोगक्रियाविषे रागद्वेषकरि बंधमान नहीं होता, सर्व संशय तिसके सम्यक्ज्ञानकरि शांत हो जाते हैं, कोऊ पदार्थ उसको आश्चर्यताकरि दिखाई नहीं देता, वासनाके समूह नष्ट हो जाते हैं, चक्रवर्त्ती राजाकी नाईं शोभता है, परिपूर्ण होके स्थित होता है, जैसे क्षीरसमुद्र अपने आपविषे पूर्ण समाता नहीं, तैसे ज्ञानी अपने आपविषे पूर्ण समाता नहीं॥ हे रामजी ! इन जीव

नको भोगकी इच्छा दीन करती हैं, तिसकरि आत्मपदते गिरते हैं, अनात्मविषे प्राप्त हुए कृपण हो जाते हैं, तिनको देखिकै आत्म उत्तमपद आलंवी हँसते हैं कि, यह मिथ्या दीनभावको प्राप्त हुए हैं, जैसे स्वामी होकर स्त्रीके वश होवै, स्त्री स्वामीकी नाईं होवै, अरु भर्त्ता दीन हो जावै, अरु तिसको देखिकै लोक हँसते हैं, तैसे ज्ञानवान् भोगकी तृष्णावालेको दीन देखिकै हँसते हैं, चंचल मनही परमसिद्धांतसुखते जीवको गिरावता है, ताते मनरूप हस्तीको विचाररूपी कुंदे से वश करहु; तव सिद्धपदको प्राप्त होवोगे, जिसका मन विषयकी ओर पड़ा धावता है, सो संसाररूपी विषका वीज बोता है, ताते प्रथम इस मनको ताड़न कर, तव शांतिकी प्राप्ति होवैगी, जो मानी होता है, अरु कोऊ उसका मान करता है, तव वह उपकार कछु नहीं मानता, जव प्रथम उसको ताडन करता है, तव वडे थोडे उपकार कियेते प्रसन्न होता है, जैसे धान्य जलकरि पूर्ण होते हैं, तव जलके सींचनेकारि उनते उपकार नहीं होता, अरु जो ज्येष्ठ आषाढकी धूपकरि तप्त होते हैं, तव थोडा जल सींचनेकरि भी उनको अमृतवत् होता है, तैसे जव प्रथम मनका सन्मान करिये तव मित्रभाव नहीं होता, अरु जव ताडन करिकै पाछे सन्मान करिये, तव उपकार मानिकै मित्रभाव हो रहैगा, सो ताडन करना यह है कि, विषयते संयम करना, जव संयम करिकै निर्माण हुआ तव यह सन्मान करना कि, संसारके पदार्थ विषे वर्तावना, तव शत्रुभावको त्यागिकै मित्र हो जाता है, जैसे वर्षाकालविषे नदी जलकरि पूर्ण होती है, तिसविषे जलका उपकार नहीं होता, शरद्कालविषे जलका उपकार होता है, जैसे राजाको अपर देशकाराज्य प्राप्त होवै, तव वह कछु प्रसन्नताको नहीं प्राप्त होता, प्रथम बंदीस्थानविषे डारिये, पाछे एक थोडा ग्रास दीजिये, तिसकरि प्रसन्न होता है, तैसे जव प्रथम मनको ताडन करिये, तव पाछे थोडे सन्मानकरि भी सुखदायक होता है, ताते हाथसों हाथ मीडके अरु दंतसों दंत मिलाइकै अरु अंगसों अंग रोकिकै इंद्रियको जीति ले; इस पुरुषके हृदयविषे मनरूपी सर्प कुंडल मार वैठा है, अरु कल्पनारूपी विषकरि पूर्ण है, जिस पुरुषने उसको मर्दन किया है, तिसको मेरा नमस्कार है ॥ इति श्रीयोगवासिष्ठे चतुर्थ स्थितिप्रकरणे शरीरनगरवर्णनं नाम त्रयोविंशतितमः सर्गः ॥ २३ ॥

॥ वसिष्ठ उवाच ॥ हे रामजी ! अज्ञानी जीव महानरकको प्राप्त होता है, आशारूपी वाणकी शलाका तिनको लगती है, इंद्रियरूपी शत्रु मारते हैं, इंद्रियां दुष्ट बडी कृतघ्न हैं, जिस देहके आश्रय रहती हैं, तिसको शोक अरु इच्छाकरि पूर्ण करती हैं, अरु महादुष्ट दुःखदायक भंडार हैं, इनको तुम जीतहु, इंद्रियां मनरूपी चील पक्षी हैं, जब विषय नहीं होते, तब ऊर्ध्वको उडते हैं, जब विषय प्राप्त होते हैं, तब नीचेको आय गिरते हैं, जिस पुरुषने विवेकरूपी जालसे इनको बांधा है, तिसको ये भोजन नहीं करिसकते जैसे पाषाणके कमलको हस्ती भोजन नहीं कर सकता ॥ हे रामजी ! ये भोग आपातरमणीय हैं, अत्यंत विरस हैं, जो पुरुष इनविषे रमण करता है, सो अंत नरकको प्राप्त होवैगा, जो पुरुष ज्ञानके धनकरि संपन्न है, अरु देहरूपी देशविषे रहता है, सो परमशोभाको पाता है, अरु आनंदवान होता है. काहेते कि, वडे ऐश्वर्यकरि तिसने इंद्रियरूपी शत्रु जीते हैं ॥ हे रामजी ! स्वर्णके मंदिरविषे रहनेकरि ऐसा सुख नहीं प्राप्त होता, जैसा निर्वासनिक ज्ञानवान्को होता है, जो अपने शरीरनगरविषे रहता है, जिस पुरुषने इंद्रियां अरु असत् रूपी शत्रुको जीता है, सो परमशोभाकरि शोभता है, जैसे हिमऋतुको जीतिकै वसंतऋतुविषे मंजरी शोभती है, जिस पुरुषके चित्तका गर्व नष्ट भया है, अरु इंद्रियांरूपी शत्रु जीते हैं, तिसकी भोगवासना नष्ट होजाती है, जैसे शीतकालविषे पद्मिनियां नष्ट हो जाती हैं ॥ हे रामजी ! वासनारूपी वैतालनिशाचर तबलग विचरते हैं, जबलग एक तत्त्वका दृढ अभ्यास करिकै मनको नहीं जीता, जब विवेकरूपी सूर्य उदय होता है, तब अंधकार नष्ट हो जाता है, जब विवेककरि मनको वश करता है, तब इंद्रियां भृत्य टहलुए हो जाते हैं, अरु मनरूपी सब मित्र हो जाते हैं, आप राजा होके राज्यस्वरूपको भुगतता है ॥ हे रामजी ! विवेकीकी इंद्रियां पतिव्रता स्त्रीवत् हो जाती हैं, अरु मन सीताकी नाईं पालना करनेवाला होता है, अरु चित्त सुहृद् हो जाता है, जब निश्चयवान् पुरुष सच्छास्त्रको विचारता है, तब परमसिद्धांतको प्राप्त होता है, अरु मन अपने मननभावको त्यागिकै शांतरूप सो पितावत् प्रतिपालक हो जाता है, ताते मनको विवेककरिकै वश करहु, जैसे मणिको घसाय छेद पाडिकै धागेकेसाथ परोते हैं, अरु कंठविषे पहनते हैं, तब बडी

शोभाको प्राप्त होते हैं, तैसे मनरूपी मणि है, तिसको आत्मविचार शिलाके साथ घसावना, वैराग्य जलकरि उज्ज्वल करना, अभ्यासरूपी छेद पाडिकै विवेकरूपी तागेके साथ परोय कंठविषे स्थित करनेसे शोभा होती है, विवेक कैसाहै, जो जन्मरूपी वृक्षको कुहाडा जैसा काटि डारताहै, अरु मनरूपी शत्रुको मित्र करता है, सदा शुभकर्मको करताहै, अरु विषयके परिणामिक दुःखको निकट आने नहीं देता, ताते मनको वश करना आनंदका कारण है, जो मन वश नहीं होता, तौ दुःख देता है, जब वश होता है तब सुखदायक होता है ॥ हेरामजी ! मनरूपी मणि है, सो भोगकी तृष्णाकरि कलंकित हुई है, जब विवेकरूपी जलकरि इसको शुद्ध करै, तब शोभायमान होवैगी, यह संसार महाभयका देनेहारा है, अल्पविवेकवान् पुरुष भी मायारूप संसारविषे गिरि पड़ै हैं, तू छलकरि इतर जीवकी नाईं इसविषे मत गिर यह संसार मायारूप है, अनेक अर्थकी सांकरसंयुक्त है, महामोहरूपी कुहरकरि जीव अंधे हो गये हैं, ताते तू विवेकपदका आश्रय कर, बोधकरि सत्का अवलोकन कर, इंद्रियते वैराग्यरूपी नौकाकरि संसारसमुद्रको तरिजाहु; शरीर भी असत् है, इसविषे सुख अरु दुःख भी असत् हैं; तुम दामव्यालकटकी नाईं मत होहु भीम भास दटकी स्थितिको ग्रहण करिकै विशोक होहु, अहं मम आदिक जो निश्चय है, सो वृथा है, तिसको त्यागिकै तत्पदका आश्रय करहु, चलते बैठते खाते पीते मनविषे मननका अभाव न होवै ॥ इति श्रीयोगवासिष्ठे स्थितिप्रकरणे मनस्विसत्यताप्रतिपादनं नाम चतुर्विंशतितमः सर्गः ॥ २४ ॥

राम उवाच ॥ हे भगवन् ! संसारपापके दूर करनेहारे यह तुमने क्या कहा ? इसको खोलिकरि कहौ; दाम व्याल कटकी नाईं कैसे अरु भीम भास दटकी स्थिति कैसे है ? जैसे वर्षाकालका मेघ तप्तको दूर करता है, मोरको शब्दकरि जगावता है, तैसे तुम अपनी कृपाकरि जगावहु ॥ वसिष्ठ उवाच ॥ हे रामजी ! प्रथम इनकी नाईं स्थित होय श्रवण करु, पाछे जो इष्ट होवै, तिसविषे विचरना, पाताल कुहरविषे शम्बर नाम दैत्यराजा होत भया था, सो मायारूप गणिका समुद्र अरु सर्व आश्चर्यरूप मनके मोहनहारा रमणीय था, सो दैत्य अपनी मायाकरिकै आकाशविषे नगर रचता भया; बाग रचे, दैत्यके मन्दिर रचे, सूर्य अरु चन्द्रमा रचे, अनंत ऐश्वर्यकरि

जीती अरु चन्द्रवत् वृक्ष रचे, सम्पन्न दैत्य रचे, अरु रत्नकी स्त्रियां रची; सो गान करैं, तिस गानकरि देवताकी स्त्रियां भी तिनने जीती अरु चन्द्रवत् वृक्ष रचे, तिनमें फल लगे, अरु कमलिनी श्वेत पीत रत्नकी रची, स्वर्णके हंस रचे, अरु स्वर्णके सारस पक्षी रचे जो स्वर्णके कमल अरु स्वर्णके वृक्षकी वड़ी शाखा पर बैठे हुए, अरु करंजुवेके बूटे, तिनमें कमलवृक्षके फूल लगे, रत्नकरि जडे हुए, सुन्दर स्थान, वर्फकी नाईं शीतल बगीचे वन स्थान चन्दनके रचे, इंद्रका नन्दनवन तिसते विशेष सर्व ऋतुके फूल, तिनविषे दैत्यनहूकी स्त्रियां क्रीडा करती फिरैं, अरु बड़े ऐश्वर्य रचे, विष्णु अरु सदाशिवके सदृश ऐश्वर्यसंयुक्त अपना नगर किया, रत्नके तारागण रचे, वडे प्रकाशसंयुक्त जव रात्रि पडै तव सो चन्द्रमाके साथ उदय होवैं, अरु पुतलियां गान करैं, अरु मायाके हस्ती ऐसे रचे, जो इंद्रके ऐरावतको जीति लेवैं, त्रिलोकीकी विभूतिते उत्कृष्ट विभूति इसने रची, अन्तर्वाहिर सर्व सम्पदाको पूर्ण किया, सब ऐश्वर्यकारि सम्पन्न अरु सब दैत्यमण्डलेश्वर वन्दना करैं, सो आप सर्व दैत्योंका शासन करनेहारा राजा हुआ, सब इसकी आज्ञामें वर्तैं, महा वड़ी भुजा तिनके नीचे सब दैत्य विश्राम करैं, इसप्रकार सम्पूर्ण राज्य अरु स्थानके मण्डलेश्वर तिसने रचे, सेना रची अरु राज्य करत भया, जब शंबर दैत्य शयन करै, अथवा देशांतरको जावै, तब अवकाश देखिकै देवताके नायक तिसकी सेनाको मारि जावैं अरु स्थान लूटि ले जावैं; तव शंवरने रक्षा करनेहारे सेनापति रचे, वहुरि समय देखिके देवता तिनको भी मारिगये, तब शंवरन सुनिकै कोप किया कि, इनको मारौं, ऐसे विचारिकै अमरपुरीपर चढिकै गया, देवता भयभीत होके सुमेरु पर्वतमें भवानीशंकरके पास जायके छिपते हुए; अपर नव कुंज अरु समुद्रविषे जाय छिपे, जैसे प्रलयकाल विषे सव दिशा शून्य हो जाती हैं, तैसे अमरपुर स्वर्ग शून्य हो गया, तब दैत्यराज अमरपुरीको शून्य देखिकै कोपमान हो अग्नि लगादी, लोकपालके पुर सव जलाय दिये, देवतोंको ढूँढ रहा; परंतु कहूं देखनेविषे न आये, जैसे पापी पुण्यको देखै, अरु कहूं दृष्टि न आवै, तैसे देवता कहूं न भासैं, तब शंवर कोपमान होके वडी वली राक्षससेनाको रक्षाके निमित्त माया करिकैं रचत भया, मानो कालकी मूर्त्तियां हैं, ऐसे होकरि स्थित भये, मानो वड़े आकारवाले पर्वत पंखन

संयुक्त हिलते हैं, ऐसे शरीर दाम, व्याल, कट यह तीन तिनके नाम हैं अरु हाथविषे बड़े शस्त्र, अरु भुजा कल्पवृक्षकी नाईं, अरु यथाप्राप्त कर्मविषे लगे रहैं, यह उनका धर्म अरु उनको कर्मका अभाव, काहेते जो पूर्व वासना, कर्म उनको न था, निर्विकल्प चिन्मात्र उनका स्वरूप था, अरु अपने स्वभावसत्ताविषे स्थित न थे, अरु अनात्मभावको प्राप्त भये न थे, एक स्पंदमात्र कर्मरूप चेतना उन विषे थी, सो कर्मका बीज चित्तकलना स्पन्दरूप हुईथी, मननात्मक शस्त्रप्रहारको रचे थे, तिसीको पड़े करैं, परन्तु अन्तरविषे स्पष्ट वासना उनको कोऊ न फुरै, आकाशमात्र स्वभावकारि क्रिया उनकी पडी होवै जैसे अर्ध सुषुप्त बालक अपने अंगको स्वाभाविक हिलाताहै, वासनाते रहित तैसे वह वासनाविना चेष्टा करैं, गिरना अरु गिरावना कुछ न जानैं अरु न जानैं कि, हम इसको मारते हैं, न यह जानैं हम मत हैं, न दौडना जानैं, न भागना जानैं, न जानैं हम जीते हैं, न जानैं हम मरते हैं, जीत अरु हारको कछु न जानैं, केवल शस्त्रका प्रहार करैं, जैसे यन्त्रकी पूतली तागेपर पडी चेष्टा करती है; विना संवेदन तैसे दाम, व्याल, कट चेष्टा करैं, महाबली जिनके प्रहारकारि पहाड़ भी चूर्ण हो जावैं, तिनको देखिकै शंबर प्रसन्न हुआ कि, ये सैन्यकी रक्षाको बड़े बली हैं, इनका नाश भी उनसों न होवैगा. काहेते कि, इनको इष्ट अनिष्ट कछु नहीं, जिनको इष्ट अनिष्टका ज्ञान अरु वासना नहीं, तिनका नाश कैसे होवै, अरु भागे कैसे ? जैसे देवताके हाथी भी बड़े बली हैं, तौ भी सुमेरुको उखारि नहीं सकते, दन्तके चूर्ण होजाते हैं, तैसे देवता बड़े बली भी हैं, परन्तु इनको मार नहीं सकैंगे, यह बड़े बली रक्षक हैं ॥ इति श्रीयोगवासिष्ठे स्थितिप्रकरणे दामव्यालकट उत्पत्तिवर्णनं नाम पञ्चविंशतितमः सर्गः ॥ २५ ॥ वसिष्ठ उवाच ॥ हे रामजी ! इसप्रकार निर्णय करिकै शंबरने दाम व्याल कटको स्थापन किये, अरु भूतलविषे देवताका सैन्य भी आया जब शंबर चढ़ता था, तब भाग जाते थे, अरु सैन्यको देखिकै वह भी निकसे, समुद्र अरु पहाड़से उछलिके एक ओर देवता निकसे, बडी सेनासाहित युद्ध करने लगे, जैसे प्रलयकालके समुद्र क्षोभते हैं, अरु सब जलमय हो जाताहै, तैसे देवता अरु दैत्य सर्व ओरते पूर्ण हो गए, बडे बाणकारि युद्ध करने लगे, शंखध्वनिकारि शस्त्र चलैं,

तिनते शब्द होवे, अरु अग्नि निकसै, ताराकी नाईं चमत्कार करैं; शरीरके शिर काटे जावैं, अरु धड कम्पि कम्प गिर पडैं, परस्पर दोनों ओरते शस्त्र चलैं, दाम, व्याल, कट, भाग नहीं जावैं, मारतेही जावैं, जिनके प्रहारसे पहाड़ चूर्ण हो जावैं, सब दिशाविषे शस्त्र पूर्ण हो गए, रुधिरके प्रवाह चल तिनविषे देव दैत्य मरे बहते जावैं, महाप्रलयकी नाईं भय उदय हुआ, एक एक अस्त्र ऐसा चलै, जिसते शस्त्रकी नदियां चलैं, कोऊ अग्निका अस्त्र चलावै, कोऊ मेघका अस्त्र चलावै, कोऊ तम अस्त्र चलावै, दूसरा प्रकाश रूप अस्त्र चलावै, कोऊ निद्रारूप, दूसरा प्रबोधरूप, कोऊ सर्परूप, दूसरा गरुडरूप, इसप्रकार परस्पर युद्ध करैं, बहुरि ब्रह्मास्त्र चलावैं, शिलाकी वर्षा होवै, तब सब पृथ्वी रक्त अरु मांसकरि पूर्ण हो गई, अनेकन जीवनके धड शीश गिरि पडैं; जैसे वृक्षते फल गिरते हैं, तैसे देवता दैत्य गिरे, बड़ा युद्ध हुआ, गंधर्व, किन्नर, देवता, बहुत नष्ट भये, दैत्य भी बहुत नष्ट हुए, परंतु कछु उनकी जीत रहै, इसप्रकार मायावी शंबरका सैन्य अरु देवतोंका युद्ध हुआ, जैसे वर्षाकालमें आकाशविषे मेघघटा पूर्ण हो जाती हैं; तैसे देवता अरु दैत्यकी सेना इकट्ठी होगई, दिशा विदिशा सब स्थान पूर्ण होत भए ॥ इति श्रीयोगवासिष्ठे स्थितिप्रकरणे दामव्यालकटसंग्रामवर्णनं नाम षड्विंशतितमः सर्गः ॥ २६ ॥ ॥ वसिष्ठ उवाच ॥ हे रामजी ! इसप्रकार घोर संग्राम हुआ, देवता अरु दैत्यके शरीर गिरे, जैसे पंख टूटेते पर्वत गिरते हैं, रुधिरके प्रवाह चले, बडे शब्द हुये, आकाश, पृथ्वी शब्दकरि पूर्ण हो गए, दामने देवताके समूह वेष्टित किये, व्यालने पकड़िके देवतोंको पहाड़विषे पीसि डारे, कटने देवतोंके समूह चूर्ण किये उनके स्थान तोड डारे, बडा क्रूर संग्राम किया, देवतोंका हस्ती जो मदकरि मस्त था, सो ताडनकरि क्षीण होगया, सो वहांते भागा, भयभीत होइकरि देवता भी भागे, तब दैत्यकी सेना वृद्धि होत भई, जैसे मध्याह्नके सूर्यका बड़ा प्रकाश होता है, तैसे दैत्य प्रकाशवान् भए, देवता बहुत मारे गए, जैसे जलका प्रवाह पुल टूटेते तीक्ष्ण वेगकरि चलता है, तैसे देवता तीक्ष्ण वेगकरि भागे, जलके प्रवाहवत् मर्यादा छूटि गई, दाम, व्याल, कटकी सेना जीत पाती भई, देवतोंके पाछे लागे मारते जावें, जैसे काष्ठते रहित अग्नि अंतर्धान हो जाता है, तैसे

बलवान् देवता बलसों हीन भए अंतर्धान हो गए, दैत्य ढूँढते फिरैं, परंतु देवता कहूं न पावैं, जैसे जालसों निकसे पक्षी कहूं हाथ नहीं आते, तैसे देवता तिनके हाथ नहीं आये, जैसे मृग बंधनसों छूटा निकस जावै, अरु हाथ न आवै, तब दाम, व्याल, कट, तीनों सेनासहित पातालविषे आनि स्थित भए, अपना स्वामी जो शंबर था, तिसके पास प्रसन्नताके लिये आए अरु वहाँ देवतोंने श्रवण किया कि, दैत्य पातालविषे जाय स्थित भए, तब विचार करिकै चिंतवते भए कि, किसीप्रकार इनते ईश्वर हमारी रक्षा करे, ऐसी चिंताकरि आतुर भए, तब ब्रह्माजी देवतोंके निकट आनि प्राप्त भए, अमित तेज है जिसका, अरु अमित जिसके रक्तवस्त्र हैं, जैसे संध्याकालमें रक्तवर्ण बादल होते हैं, तिनविषे चंद्रमा शोभता है, ऐसे प्रकाशवान् ब्रह्माजीको देखिकै इंद्रादिक देवता प्रणाम करत भये, शंबर दैत्यकी शत्रुताकरिकै कहत भये ॥ हे त्रिलोकीके ईश्वर ! हम तेरी शरण आए हैं, हमारी रक्षा करो, शंबर दैत्यने हमको बहुत दुःख दिया है, तिसके सेनापति दाम, व्याल, कट हैं, सो बड़े दैत्य हैं, किसी प्रकार हमसों मारे नहीं जाते, अरु हमारी सेना उन्होंने बहुत चूर्ण करी ॥ हे रामजी ! इसप्रकार संपूर्ण वृत्तांत दाम, व्याल, कटका ब्रह्माजीप्रति कहत भये अरु कहा कि, इनके मारनेका उपाय हमको कहौ, जिसप्रकार यह नष्ट होवैं, तब संपूर्ण जगतपर दया करनेहारा ब्रह्माजी वचन कहत भया, कैसे वचन जो शांतिके कारण हैं ॥ ब्रह्मोवाच ॥ हे अमरेश ! ये दैत्य अब तौ नष्ट नहीं होवैंगे, जब इनको अहंकार उपजैगा, तब यह मरैंगे, तुमही उनको जीतौगे, मैं इनकी भविष्यत् देखी है, अरु दाम, व्याल, कट युद्धविषे भागना नहीं जानते, अरु मरने मारनेका ज्ञान भी इनको नहीं, ये शंबर दैत्यकी मायाकरि रचे हैं, इनका नाश कैसे होवै, जिसको अहंममका अभिमान होवै, तिसका नाश भी होता है, सो अहं मम आदिक शत्रुको ये जानते नहीं, इनका नाश कैसे होवै ? इसप्रकार इनका नाश कदाचित् होना नहीं, जब इनको अहंकार उपजैगा, तब इनका नाश होवैगा, सो अहंकार उपजानेका उपाय मैं तुमको कहता हौं, तुम उनके साथ युद्ध करते रहौ, और इसप्रकार करौ कि, कभी उनके सन्मुख कभी दाहिने कभी बांये होहु, कभी भागि जाहु, इसप्रकार जब तुम वारंवार

करौगे, तव उनके युद्धके अभ्यासवशते अहंकारका अंकुर आनि उपजैगा, जव अहंकारका चमत्कार हृदयविषे उपजा; तव तिसका प्रतिबिंब इदंरूप भी देखैंगे, वहुरि वासना भी फुरि आवैगी कि, हम ये हैं, हमको यह कर्तव्यहै, यह ग्रहण करने योग्यहै, यह त्यागने योग्य है, इत्यादिक वासनाजाल उनके चित्तविषे फुरि आवैगी, आपको दाम, व्याल,कट जानैंगे, तव तुम उनको वश कर लेहुगे, तुम्हारी जय होवैगी; जैसे जालविषे फँसा पक्षी वश होता है, तैसे वे अहंकारकरिकै वश होवेंगे, अभी वे वश नहीं होते, सुखदुःखते रहित वड़े धैर्यवान् हैं, अभी उनको तुम्हारा जीतना कठिनहै ॥ हे साधो ! जो पुरुष वासना तंतुसे बांधे हुए हैं, अरु कीटके कार्यके वश हैं; सो इस लोकविषे वश होजाते हैं, अरु जो निर्वासनिक पुरुष वुद्धिमान् हैं, सर्वत्र असंसक्तवुद्धि हैं, किसी विषे वंधमान् नहीं होते, इष्ट अनिष्टविषे समभाव रहते हैं, सो किसीकरि जीते नहीं जाते, ये अजित पुरुष हैं, अरु जिनके अंतर वासना है, इसी जेवरी केसाथ वांधे हुए हैं, देहविषे अभिमान है, अथवा सर्वको वेत्ता भी है, तौ वालक भी उसको जीति लेते हैं, अहं मम आदिक कल्पनाकरि जो कलंकित है, सो सव आपदाका पात्र है, सव आपदा तिसविषे आनि प्रवेश करती हैं, यह देह मात्र परिच्छिन्नरूप जो पुरुष आपको जानता है, तिसविषे भावना भावती करी है; जो सर्वज्ञ है, तौ भी वह कृपणताको प्राप्त होता है, उसविषे उदारता कहां है, इसका अपना स्वरूप अनंत आत्मा है, अप्रमेय है, तिस स्वरूपका जिसको प्रमाद हुआ है, अरु देहादिकाविषे आत्मअभिमान हुआ है, तिसने आपको आपही दीन किया है, जवलग आत्मतत्त्वते इतर इसको त्रिलोकीविषे कछु भी सत भासता है, तवलग तिसकी उपादेय वुद्धि होती है, भावनाके साथ वांधा रहता है, संसारविषे सत भावना करनी अनंत दुःखका कारण है, अरु संसारविषे असत् वुद्धि सखका कारणहै, हेसाधो ! जवलग दाम, व्याल, कटको जगत्के पदार्थनविषे आस्थाभाव नहीं तवलग तुम इनके जीतनेको समर्थ न होवोगे जैसे मक्खी वायुके जीतनेको समर्थ नहीं होती, जिसको देहविषे अहंभावना होती है, अरु जगत्विषे सतबुद्धि होती है, सो जीव है, अरु दीनताको प्राप्त होता है भावै कैसा वली होवै, उसको जीतना सुगम है, अरु

तुच्छ कृपण है, अरु जिसके अंतर वासना नहीं अरु मक्षिकावत् है, तौ भी सुमेरुकी नाईं गरिष्ठ हो जाता है॥ हे देवताओं ! जो वासनासंयुक्त है, सो परमकृपणताको प्राप्त होता है, सो गुणी गुणोंकरि बांधा जाता है, जैसे मणिकेविषे छिद्र होता है, तब तागेकरि परोया जाता है, अरु छिद्रते रहित है, सो परोया नहीं जाता, तैसे जिसका हृदय वासनाकरि वेधा है, तिसके अंतर गुणावगुण प्रवेश करते हैं, अरु जो निर्वंध है, तिसके अंतर प्रवेश नहीं करते हैं, ताते जिसप्रकार अहं इदं आदिक वासना दाम, व्याल, कटके अंतर उपजै, सोई उपाय करौ, तब तुम्हारी जय होवैगी, जिस जिस इष्ट अनिष्टके भाव अभावको जीव प्राप्त होते हैं, सो तृष्णारूपी करेजुवेका बूटा है, तिसकरि आपदाको प्राप्त होते हैं, इसते रहित हुएते आपदाका अभाव हो जाता है, जो वासनारूपी तंतुकेसाथ बांधे हुए हैं, सो अनेक जन्म दुःखको प्राप्त होवैंगे, जो बलवान् है, अरु सर्वज्ञ है, कुलका अधिष्ठाता बड़ा भी है, अरु तृष्णासंयुक्त है, तौ बँधा है, जैसे सिंह है, अरु साँकरके पिंजरेविषे बांधा है, तब उसका बल अरु बडाई किसी कार्य नहीं आती, तैसे जो तृष्णाकरि बांधा है, सो तुच्छ है, तिसको देहमात्रविषे अहंभाव है, हृदयविषे तृष्णा पड़ी उत्पन्न होती है, सो पुरुष ऐसा है, जैसा पक्षी तागेमें बांधा होवै, अरु यम भी तिसको वश करता है, जैसे रज्जुकेसाथ बांधे हुए पक्षीको बालक भी खैंच वश करता है, अरु जो निर्वासनिक पुरुष है, तिसको मारि कोऊ नहीं सकता, जैसे आकाशविषे उड़ते पक्षीको कोऊ पकड नहीं सकता, ताते शस्त्रयुद्धको त्याग, अरु उनको वासनाउपजावहु, तब वश होवैंगे॥ हे इंद्र ! जिसको अहं मम इदं आदिक वासना नहीं, राग द्वेषकरि अंतःकरण क्षोभवान् नहीं होता, तिसको शस्त्रकरि अरु अस्त्रकरि कोऊ जीति नहीं सकता, ताते दाम, व्याल, कटके जीतनेको अपर उपायकरि समर्थ न होहुगे, युद्धके अभ्यासकरि जब इनको अहंकार उपजाओगे, तब ये तुम्हारे वश होवैंगे, तुम इनके जीवनेको समर्थ होहुगे॥ हे साधो ! यह तौ शंबर दैत्यके रचे हुए यंत्रपुरुष हैं, इनके अंतर वासना कोई नहीं, जैसे उसने रचे हैं, तैसेही निर्वासनिक पुरुष हैं, जब तुम उनको युद्धका अभ्यास करावहुगे, तब इनको अहंकार वासना उपजि आवैगी, ये तुमको वश करनेकी परम युक्ति कही है,

जबलग उनके अंतर वासना नहीं फुरती तबलग तुमकरि ये अजीत हैं ॥ इति श्रीयोगवासिष्ठे स्थितिप्रकरणे दामोपाख्याने ब्रह्मवाक्यवर्णनं नाम सप्तविंशतितमः सर्गः ॥ २७ ॥ ॥ वसिष्ठ उवाच ॥ हे रामजी ! इसप्रकार कहिकै ब्रह्माजी अंतर्धान होत भया, जैसे समुद्रविषे तरंग उपजिकै शब्दकरि लीन होता है, तैसे शब्दकरिकै अंतर्धान हो गया, तब देवता वचन सुनिकै अपनी वांछित दिशाको गमन करते भये, जैसे कमलकी सुगंधिको पवन ले जाता है; तैसे जायकरि कुछ दिन अपने स्थानविषे रहे, जैसे भँवरे कमलविषे रहते हैं, तैसे रहिकै अपने कल्याणके निमित्त उनके नाश करनेको उठे, अपने स्थानते उठिकै युद्धको चले, प्रथम देवतोंने शंख बजाए, जिनका महा शब्द हुआ, जैसे प्रलयकालविषे मेघ गर्जते हैं, तैसे शब्दकरि संस्थान पूर्ण हो गए, तब पाताल छिद्रते शब्द सुनिकै दैत्य निकसे, आकाश मार्गते देवता आए, युद्ध होने लगा, तब बरछी, बाण, मुद्गर, मुसल, गदा, चक्र, वज्र, पहाड, वृक्ष, सर्प, अग्नि, आदिक शस्त्र अस्त्र चलने लगे; एक ओर देवता चलावें, एक ओर दैत्य चलावें, शस्त्रअस्त्रके प्रवाह चले, देशप्रदेशविषे पहाड वृक्षकी नदी चलीं; चक्र, मुसल, त्रिशूल, आदिक शस्त्र ऐसे चलैं, जैसे गंगाका प्रवाह चलता है, तैसे शस्त्रअस्त्रके प्रवाह चले जावें और अग्नि लगाई, देवता अरु दैत्यके समूह नष्ट हो गए, अंग फूटि गए, शीश, भुजा काटे गए, संपूर्ण पृथ्वी रक्तकरि पूर्ण हो गई, जैसे समुद्रके उछलनेकरि पृथ्वी जलसों पूर्ण हो जाती है, तैसे रुधिर करि पूर्ण हो गई, आकाश दिशाविषे अग्निका तेज बढ गया, जैसे प्रलयकालविषे द्वादशसूर्यका तेज होता है, बड़े पहाड़की वर्षा होवे, रुधिरके प्रवाहविषे पहाड़ भ्रमते फिरैं, जैसे समुद्रविषे तरंग घूम २ फिरते हैं ॥ हे रामजी ! ऐसा युद्ध हुआ, क्षणविषे पहाड़के प्रवाह दृष्टि आवैं, क्षणविषे शस्त्रके प्रवाह, क्षणविषे सर्पके, क्षणविषे गरुडके, क्षणविषे अप्सरागण अंतरिक्षविषे भासैं, क्षणविषे जलमय हो जावैं, क्षणविषे सभास्थान अग्निसों पूर्ण हो जावैं, क्षणविषे सूर्यका प्रकाश भासै, क्षणविषे सर्व ओरते अंधकार भासै, महाभयानक युद्ध होने लगा; दैत्य आकाशविषे उड़ैं उड़ उड़ युद्ध करैं, देवता वज्र आदिक शस्त्र चलावैं, जैसे पंखते रहित पहाड़ गिरते हैं, तैसे दैत्य गिरैं, सो भूमिलोकविषे आय पड़ैं, अनेक

देवता दैत्यके समूह गिर पड़े, किसीका शिर,किसीकी भुजा काटी गई, चरण हाथ काटे गये, जैसे वृक्ष पहाड़ होते हैं, ऐसे जिनके शरीर हैं सो गिर गिर पड़, अनेक संकटको देवता अरु दैत्य प्राप्त भये, महादारुण युद्ध होने लगा ॥ इति श्रीयोगवासिष्ठे स्थितिप्रकरणे सुरासुरयुद्धवर्णनं नाम अष्टाविंशतितमः सर्गः ॥ २८ ॥ ॥ वसिष्ठ उवाच ॥ हे रामजी ! इसप्रकार जब देवता अरु दैत्यनका युद्ध हुआ, बहुरि देवतोंका धैर्य नष्ट हो गया, युद्धते कृपण होके अंतर्धान भए, बहुरि पैंतीस वर्षते उपरांत युद्ध करने लगे, कभी पांच दिन उपरांत कभी सात अष्ट उपरांत, कभी मासउपरांत, युद्ध करैं, बहुरि छुप जावैं ऐसे विचारकरि छलसों उनकेसाथ युद्ध करैं, कबहूं दाम, व्याल, कटके निकट जावैं, कबहूं दाहिने, कबहूं बायें, कबहूं आगे, कबहूं पाछे दौडने लगैं, इधर उधर देखिकै मारने लगैं, इसप्रकार जब देवतोंने बहुत उपाय किये, तब युद्धके अभ्यासते दाम, व्याल, कटभी देवतोंके पाछे दौडने लगे, वह भी ये भी इधर उधर देखने लगे देहादिकविषे तिनको अहंकार फुरि आया ॥ हे रामजी ! जैसे निकटताकरिकै दर्पणमें प्रतिबिंब पड़ता है, दूरका नहीं पड़ता, तैसे अतिशय अभ्यासते अहंकार फुरि आता है, अन्यथा नहीं फुरता, जब अहंकार तिनको फुरा, तब पदार्थकी वासना भी फुरि आइ, बहुरि यह फुरा, हम दाम, व्याल, कट हैं, किसीप्रकार जीते रहैं, जीनेकी इच्छाकरि दीनभावको प्राप्त भये, अरु भय पाने लग कि, इसप्रकार हमारा नाश होवैगा, इस प्रकार हमारी रक्षा होवैगी, सो उपाय करैं, जिसकरि हम जीवते रहैं, इसप्रकार आशाकी फांसीविषे बांधे हुए, दीनभावको प्राप्त हुए, आपको देहमात्रविषे आस्था करत भए कि, देहरूपी लता हमारी स्थिर रहै, हम सुखी होवैं, इस वासनासंयुक्त पूर्वकी धैर्यको त्यागते भये और जानने लगे कि, ये हमारे शत्रु हैं, नाशकर्त्ता हैं, इनते हमारी रक्षा होवै, इत्यादिक कृपणताको प्राप्त हुए धैर्य नष्ट हो गया जैसे जलविना कमलकी शोभा जाती है, तैसे इनकी शोभा जाती रही, खानपानकी वासना फुरि आई, संसारकी भयानक गतिको प्राप्त भये युद्ध करैं तब आश्रय लेकर करैं, ढाल आदिक आगे रक्खैं, अहंकारकरिकै भयभीत हुए, यह हमको मारते हैं हम इनको मारते हैं,

इस चिंताकरिकै इन सबके हृदय फँसि गये, शनैः शनैः युद्ध करने लगे, जब देवता शस्त्र चलावैं, तब बच जावैं, भयभीत होकरि भागैं, अहंकार जो आय उदय हुआ, तिसकरि तिनके मस्तकपर आपदाने चरण आन रक्खे, महादीन जैसे होगए, मुखकी शोभा जाती रही; धैर्य बल नष्ट हो गया, ऐसे हो गये, जो कोऊ आगे पडै, तौ भी तिसको मारि न सकैं, जैसे काष्ठते रहित हुआ अग्नि क्षीरको नहीं भक्षण करता तैसे वे निर्मल होगए, अंग काटे जावें भाग जावें जैसे और सामान्य शूरमें युद्ध करते हैं, तैसे युद्ध करने लगे ॥ हे रामजी ! बहुत कहना क्या है, मरनेते डरने लगे, युद्ध कारि न सकैं, तब देवता जो वज्र आदिककरि तिनको प्रहार करने लगे, तिसकरि चूर्ण हो गए, भयभीत होकरि भागे, सब सैन्य दैत्यकी भाग जावै, जो जो देश देशांतरसों आए थे, सो सब भागैं, अरु मारैं, कोऊ किसी देशको, कोऊ किसी देशको, पहाड कंदरा जलविषे गये, जहां जहां स्थान देखा, तहां तहां चले गए, दैत्य भयभीत होकरि हारको प्राप्त भये, अरु देवतोंकी जीत भई, दैत्य भागिके पातालविषे जायके छिपे ॥ इति श्रीयोगवासिष्ठे स्थितिप्रकरणे दामव्यालकटोपाख्याने असुरहननवर्णनं नाम एकोनत्रिंशत्तमः सर्गः ॥ २९ ॥ वसिष्ठ उवाच ॥ हे रामजी ! इसप्रकार भया तब देवता प्रसन्न हुए, अरु दाम, व्याल, कट भयभीत होके पातालको गए, देवतोंका भय पाये, अरु शंबरसों भी भय पाये, जैसे प्रलयकालकी अग्नि प्रज्वलित होती है, तैसे शंबर प्रज्ज्वलित अग्निका रूप है, तिसके भयकारि दाम, व्याल, कट सप्तवें पातालविषे जाय स्थित भए, तहां दैत्यके मंडलको छेदिकै जहां यमकिंकर रहते हैं, तिसविषे जाय रहे, वहां इनका कुकुहा नाम तहांते भया, नरकरूपी समुद्रके आपालक यमकिंकर हैं, तिनने दयाकारि इनको बैठाया, जैसे पापीको चिंता प्राप्त होती है, तैसे इनको स्त्रियां प्राप्त भईं, इनसहित सप्तवें पातालविषे रहत भए, आगे इनकी बड़ी संतान पुत्रपौत्रादिक भए, सहस्र वर्ष व्यतीत किए, तहां वासना दृढ़ हो गई, यह मेरी स्त्री है, पुत्र कलत्र बांधवविषे स्नेह बहुत होगया, एक कालमें तहां अपनी इच्छाकारि धर्मराज आवत भया, नरकका कछु कार्य करना था, तिसको देखिकै सब किंकर उठ खड़े हुए प्रणाम किया, अरु दाम, व्याल, कट,

तिसकी बड़ाईको जानते न थे और किंकरसमान जानिके प्रणाम कछु न करत भए, तव वैवस्वत यमराजाने क्रोध किया कि, यह दुष्ट मानी हैं, इनको शासना देनी चाहिए, इसप्रकार विचारकरिकै किंकरोंको इसारा किया कि, इनको परिवारसंयुक्त अग्निकी खाईविषे डारि देहु, रुदन करते पुकारते रहे, अरु इनको डारि दिये, परिवारसंयुक्त नरककी अग्निविषे जलि गए, जैसे दावाग्नि-विषे पत्र, टास, फूल, फलसंयुक्त वृक्ष जल जाता है, तैसे जल गए, तव मलिन वासनाकरिकै क्रांत देशका जो राजा था, तिसके किंकर धीवर जाय हुए, तहां जीवकी हिंसा करते रहे, जब धीवरका शरीर छूटा, तब कुंजर हुए, बहुरि चील्हहुए, बहुरि बगले हुए, बहुरि तीरगत देशविषे धीवर हुए, बर्वर देशविषे मच्छर हुए, मगधदेशविषे जाय कीट हुए ॥ हे रामजी ! इसप्रकार दाम व्याल कट तीनों वासनाकारि अनेक जन्मोंको प्राप्त भए, बहुरि अब काश्मीर देशविषे एक ताल है, तिसविषे तीनों मच्छ हुए हैं, वनको अग्नि लगी थी, तिसकरि जल भी सूख गया, अल्प उष्णजल रह गया है, तिसविषे रहते हैं, अरु वही जलपान करते हैं, न मरते हैं, न जीते हैं, जिनकी जो संपदा है, तिनको भी नहीं भोगते, चिंताकरि पड़े जलते हैं ॥ हे रामजी ! अज्ञानकारि अनेकवार जन्मते मरते हैं, जैसे समुद्रविषे तरंग उपजते अरु मिटते हैं, जैसे जलके भ्रमर विषे तृण आय भ्रमता है, तैसे वासनाकरिकै भ्रमते फिरे, अवलग उनको शांति नहीं प्राप्त भई, अहंकार वासना महादुःखका कारण है, इसके त्यागेते सुख है, अन्यथा सुख कदाचित् नहीं ॥ इति श्रीयोगवासिष्ठे स्थितिप्रकरणे दामव्यालकटजन्मांतरवर्णनं नाम त्रिंशत्तमः सर्गः ॥ ३० ॥

वसिष्ठ उवाच ॥ हे रामजी ! तेरे प्रबोधके निमित्त मैं तुझको दाम, व्याल, कटका न्याय कहा है कि, तिनकी नाईं तू मत होहु, इस निमित्त इतिहास कहा है, अपर किसी लीलाका प्रयोजन न था, अविवेकीका निश्चय ऐसा है, अनेक आपदाको प्राप्त करता है, जो अनंत दुःखको भुगतता है, कहां शंबर दैत्यकी सेनाके साथ अरु देवतोंके नाशकर्त्ता अरु कहां तप्त जलके मच्छ जर्जरी भावको प्राप्त हुए जिनके शरीर कहां, वह धैर्य अरु बल जिसकारि देवतोंको नाश करना, अरु भगावना, अरु आप

चलायमान न होना, अरु कहां क्रांत देशके राजाके किंकर धीवर होना, कहां वह निरहंकार चित्त शांत उदारता अरु धैर्य, अरु कहां वासनाकरि मिथ्या अहंकारसों संयुक्त होना ? एते दुःख आपदाको प्राप्त हुए, सो अहंकारकरि हुए हैं, अहंकारकरिकै संसाररूपी विषकी मंजरी शाखा प्रतिशाखा बढी हैं, संसाररूपी वृक्षका बीज अहंकार है, जबलग अहंकार है, तबलग अनेक दुःख आपदा प्राप्त होते हैं, ताते तुम अहंकारको यत्नकरिकै मार्जन करहु, मार्जन करना यह है कि, अहंवृत्ति है तिसको असत् जानो कि; मैं कछु नहीं; इस मार्जनकरि सुखी होवैगा ॥ हे रामजी ! आत्मरूपी अमृतका चंद्रमा है, शीतल शांतरूप तिसका अंग है,अहंकाररूपी मेघ आया है, तिसकरि वह अदृष्ट हुआ भासता नहीं, जब विवेकरूपी पवन चलै, तब अहंकार बादल नष्ट होवै, आत्मारूपी चंद्रमा प्रत्यक्ष भासै, अहंकार पिशाच जब उपजा, तब दाम, व्याल, कट तीनों मायारूप दानव सत् होके अनेक आपदाको भोगते हैं, अबलग काश्मीरके तालविषे मच्छ हुये पडेहैं, सिवारके भोजन करनेको पडे यत्न करतेहैं, जो अहंकार न होता तौ एती आपदाको क्यों प्राप्त होते ? ॥ राम उवाच ॥ हे भगवन् ! सत्का अभाव नहीं होता, अरु असत्का भाव नहीं होता, असत् दाम, व्याल, कट सत् कैसे भये ? ॥ वसिष्ठ उवाच ॥ हे रामजी ! इस प्रकार है, जो सत् नहीं सो किसीको कबहू कछु भान नहीं होता; परंतु सत् किसीको असत् प्राप्त हुआ देखता है, अरु असत्को न हुआ देखा है जो स्थित हुआ है, इसी तेरे कहनेसों मैं युक्तिकरि तुझको प्रबोध करौंगा ॥ राम उवाच ॥ हे भगवन् ! हम तुम जो ये सब हैं, सो सत्यरूप हैं, अरु दामादिक जो थे, सो मायामात्र असत्रूप थे, सत् कैसे भए सो कहौ ! ॥ वसिष्ठ उवाच ॥ हे रामजी ! जैसे दामादिक मायारूप असत्करि मृगतृष्णाके जलवत् स्थित भये तुम हम देवता दानव संपूर्ण संसार असत् मायामात्र सत् होके भासता है वस्तुते कछु हुआ नहीं. जैसे स्वप्नविषे अपना मरणा भासता है सो असत्रूप है, तैसा हम तुम आदिक यह जगत भासता है, सो असत्रूप है जैसे स्वप्नविषे अपने मरे बांधव आनि मिलते हैं, और चर्चा करते हैं अरु प्रत्यक्ष भासते हैं सो असत्रूप

होते हैं, तैसे यह जगत् असत्‌रूप है ॥ हे रामजी! यह जो मेरे वचन हैं, सो मूढको विषयभूत नहीं, उनको नहीं शोभते. काहेते कि, अज्ञानीके हृदयविषे संसारका सद्भाव दृढ हो गयाहै अरु अभ्यासविना इस निश्चयका अभाव नहीं होता जैसा निश्चय किसीके हृदय विषे दृढ़ हो रहा है, सो दृढ अभ्यासके यत्नविना कदाचित् दूर नहीं होता. जिसको यह निश्चय है कि, जगत् सत् है, सो मूर्ख उन्मत्त है, अरु जो ज्ञानवान् है तिसके हृदयविषे जगत्का सद्भाव नहीं होता केवल ब्रह्मसत्ताका भाव होता है, अरु अज्ञानीको जगत् सत् भासता है, अज्ञानीके निश्चयको ज्ञानी नहीं जानता, अरु ज्ञानीके निश्चयको अज्ञानी नहीं जानता, जैसे मदकरि मत्त होवै तिसके निश्चयको अमत्त नहीं जानता, अरु अमत्तके निश्चयको मत्त नहीं जानता तैसे ज्ञानी अज्ञानीका निश्चय इकट्ठा नहीं होता जैसे प्रकाश अरु अंधकार इकट्ठा नहीं होता, धूप अरु छाया इकट्ठी नहीं होती, तैसे ज्ञानी अरु अज्ञानीका निश्चय इकट्ठा नहीं होता, जिसके चित्तविषे जो निश्चय है तिसको वही अभ्यास यत्नकरि दूरकरै तब दूर होता है अन्यथा नहीं होता ज्ञानी भी अज्ञानीके निश्चयको दूर नहीं करसकता जैसे मृतककी जीवकलाको मनुष्य ग्रहण नहीं करिसकते कि, उसके निश्चयविषे क्या है. जो ज्ञानवान् है तिसके निश्चयविषे सर्व ब्रह्मका भान होता है और जगत् द्वैत कछु नहीं तिसीको मेरे वचन शोभते हैं आत्मअनुभव सर्वदा सत्‌रूप है और सब असत् पदार्थ हैं यह वचन प्रबुद्धका विषय है तिसको शोभते हैं अरु अज्ञानीको जगत् सत् भासता है ताते ब्रह्मवाणी तिसको शोभा नहीं देती. ज्ञानीको यह निश्चय है कि, जगत् रंचकमात्र भी सत्य नहीं एक ब्रह्महीं परमसत्तास्वरूप है और यह अनुभव बोधवान्का है तिसके निश्चयको कोऊ दूर नहीं करि सकता, परमात्माते व्यतिरेक कछु नहीं, जैसे स्वर्णविषे भूषणभाव नहीं तैसे आत्माविषे सृष्टिभाव नहीं, अरु अज्ञानीको पंचभूतते व्यतिरेक कछु नहीं भासता, जैसे स्वर्णविषे भूषण नाममात्र होता है, तैसे वह आपको नाममात्र जानता है, सम्यक्‌दर्शीको इसते विपरीत भासता है, अरु जो पुरुष होवै और कहै मैं घट हौं, जैसे यह निश्चय उन्मत्त है, तैसे हम तुम आदिक असत्‌रूप हैं, सत् वही है जो शुद्ध संवि

त्बोध आकाश निरंजनरूप है, सर्वगत शांतरूप है, उदयअस्तते रहित है, जैसे नेत्र दूषणवालेको आकाशविषे तरुवरे भासते हैं, तैसे अज्ञानीको जगत् सत्‌रूप भासता है, आत्मसत्ताविषे जैसा जैसा किसीको निश्चय हो गया है, तैसाही तत्काल हो भासता है, वस्तुते जैसे दामादिक अणुहोते थे, तैसे तुम हम आदिक जगत् है, अनंत चेतन आकाश सर्वगत निराकारविषे फुरना होता है, सोई देहाकार हो भासते हैं, जैसे संवित्‌का किंचन दामादिक निश्चयसों आकारवान् हो भासे, तैसे हम तुम भी फुरनेमात्र हैं, संवेदनके फुरनेहीकारि स्थित भए हैं, जैसे स्वप्ननगर भासता है, जैसे मृगतृष्णाकी नदी भासती है, तैसे हम तुम आदिक जगत् आत्मरूप भासता है, प्रबुद्धको सब चिदाकाशही भासता है, अपरको सब मृगतृष्णा अरु स्वप्ननगर भासता है. जो आत्माकी ओर जागे हैं, अरु जगत्‌की ओर सोये हैं, सो मोक्षरूप हैं, अरु जो आत्माकी ओरते सोये हैं जगत्‌की ओर जागे हैं, सो अज्ञानी बंधरूप हैं, अरु वास्तवते न कोऊ सोये हैं, न जागते हैं न बंधे हैं, न मोक्ष हैं, केवल चिदाकाश है, सोई जगत्‌रूप हो भासता है, निर्वाणसत्ताही जगल्लक्ष्मी होइकरि स्थित भई है, अरु जगत् निर्वाणरूप है, दोनों एक वस्तुके पर्याय हैं, जैसे तरु अरु विटप एकही वस्तुके दो नाम हैं, तैसे ब्रह्म अरु जगत् एकही वस्तुके पर्याय हैं, जैसे आकाशविषे तरुवरे भासते हैं, अरु हैं नहीं, आकाशही है, तैसे अज्ञानीको ब्रह्मविषे जगत् भासता है, सो है नहीं; ब्रह्मही है. जैसे किसीको नेत्रविषे तिमिरका रोग होता है, तिसकरि तरुवरे भासते हैं, सो तरुवरे नेत्ररोगते भिन्न नहीं तैसे अज्ञानीको अपना आपही अन्यत्‌रूप हो भासता है, सो चिदाकाश स्थानविषे भासता है, सो चिदाकाश सर्व ओर व्यापकरूप है, तिसते इतर जगत् असत् है, कछु वस्तु नहीं, सत्यरूप एक विस्तृत आकार वही सत्ता है, महाशिलावत् घन स्वच्छ निस्पंद उदयअस्तते रहित है, सर्व कलनाको त्यागिकरि तिसी अपने आपविषे स्थित होहु ॥ इति श्रीयोगवासिष्ठे स्थितिप्रकरणे निर्वाणोपदेशवर्णनं नाम एकत्रिंशत्तमः सर्गः ॥ ३१ ॥ ॥ राम उवाच ॥ हे भगवन् ! असत्‌ही सत्‌की नाईं होके स्थित भया है, जैसे बालकको अपने परछाईंविषे वैताल हो भासता है, सो जैसे हुआ तैसे हुआ है, अब यह कहो,

दाम व्याल कटके दुःखका अंत कैसे होवैगा ॥ वसिष्ठ उवाच ॥ हे रामजी ! जब तिसको अग्निविषे यमराजने भस्म कराये तब यमरा जसों किंकर पूछते भए कि, हे प्रभो ! इनका उद्धार कब होवैगा तब यमराजने कहा, हे किंकरो ! जब ये तीनों आपसमें बिछुरि जावेंगे, अरु अपनी संपूर्ण कथा श्रवण करेंगे, तब निःसंदेह होके मुक्त होवेंगे यह नीति है ॥ राम उवाच ॥ हे भगवन् ! यह वृत्तांत कहाँ सुनेंगे, अरु कब सुनेंगे, अरु कौन निरूपण करैगा ? ॥ वसिष्ठ उवाच ॥ हे रामजी ! काश्मीरदेशविषे एक बड़ा ताल है, अरु कमलोंकरि पूर्ण है, तिसके निकट एक छोटा ताल है, तिसविषे चिरपर्यंत वारंवार मच्छ होवेंगे फिर मच्छका शरीर त्यागिकरि सारस पक्षी होवैं गे, कमलोंके तालऊपर रहैंगे, कमल अरु कमलनियां उत्पल आदिक फूलोंविषे विचरेंगे, सुगंधको लेते चिरकाल व्यतीत करैंगे, तब दैवसंयोगकरि उनके पाप नष्ट होवैंगे, अरु बुद्धि निर्मल हो आवैगी, तब तीनों आपसमें बिछुरि जावैंगे, अरु मुक्तियुक्तिको प्राप्त होवैंगे; जैसे राजसी तामसी सात्त्विक गुण आपमें स्वेच्छित बिछुरि जाते हैं; तैसे वे स्वेच्छित बिछुरि जावैंगे, काश्मीर देशविषे एक पहाड़ है, तिसके शिखरपर एक नगर वसैगा,तिसका नाम प्रद्युम्न होवैगा, तिस शिखरपर कमलोंकरि पूर्ण एक ताल होवैगा, तहां एक राजाका स्थान होवैगा. ईशान कोणकी ओर राजाका मंदिर होवैगा, तिस मंदिरके एक छिद्रविषे घास तृणकरि आलय बनाय व्यालनाम दैत्य चिडिया होकरि तहां रहैगा. कैसा आलय कि, वायुकरि तिसके तृण पड़े हिलैंगे, तहां वह शब्द करैगा. कैसा कि, तिसका अर्थ कछु समझिये नहीं निरर्थक शब्द होवैगा, तिस कालमें श्रीशंकर नाम राजा होवैगा, गुण अरु भूतिकरि संपन्न मानो दूसरा इंद्र है, तिसके मंदिरकी छतकी कडीके छिद्रविषे दामनाम दैत्य मच्छर होकरि रहैगा, भूं भूं शब्द करता विचरैगा, अरु कट नाम दैत्य तहां क्रीडाका पक्षी होवैगा, रत्नोंकरि जडे हुए पिंजरेविषे रहैगा, तिस राजाका मंत्री वडा बुद्धिमान् होवैगा, जैसे हाथविषे आंवला होता है, तैसे उस मंत्रीको बंध अरु मुक्तिका ज्ञान प्रसिद्ध होवैगा, अरु नरसिंह मंत्रीका नाम होवैगा, सो मंत्री राजाके आगे दाम व्याल कटकी कथा श्लोक बांधिकरि कहैगा, तब करकर नामा पक्षी हुआ जो

कट दैत्य है, सो पिंजरेविषे श्रवण करैगा तिस श्रवण करनेसों उसको अपना वृत्तांत सब स्मरण होवैगा, तिसको विचारैगा, तब मिथ्या अहंकार शांत होवैगा, परम निर्वाण सत्ताको प्राप्त होवैगा, इसीप्रकार राजाके मंदिरविषे चिडिया हुआ व्याल नाम दैत्य भी श्रवण करैगा. वह भी परमनिर्वाण सत्ताको प्राप्त होवैगा, इसप्रकार लकडीके छिद्रविषे मच्छर हुआ दाम नाम दैत्य भी श्रवण करिकै मोक्ष होवैगा ॥ हे रामजी ! करकर पक्षी अरु चिडिया अरु मच्छर तीनों पहाडके शिखरपर राजमंदिरविषे वसनेहारे मोक्ष होवैंगे, यह संपूर्ण क्रम तुझको कहा है, सो संसारभ्रम मायामय है, अत्यंत भास्वर प्रकाशरूप भासता है, तौ भी महाशून्य अविचारते सिद्ध है, विचारकरिकै ज्ञान हुएते शांत हो जाता है, जैसे मृगतृष्णाका जल भली प्रकार देखेते शांत हो जाता है, यद्यपि अज्ञानी बडे पदको प्राप्त होता है, तौ भी अधोते अधो मोहते चला जाता है, जैसे दाम व्याल कट महाजालविषे पड़ेथे, कहां वह बल भौंहैं टेढी करनेसे सुमेरु मंदराचल जैसे पर्वत पड़ि जावैं, अरु कहां राजाके गृहविषे काष्ठके छिद्रसों मच्छर होना ? कहां वह बल जिसके हाथकी चपेटकरि सूर्य अरु चंद्रमा गिरि पडैं, अरु कहां प्रद्युम्नका पहाड़के गृहछिद्र विषे चिडिया होना ! कहां वह बल जो सुमेरु पर्वतको पीले फूलकी नाईं लीलाकरि उठाय लेना, अरु कहां पहाडके शिखरपर गृहविषे पक्षी होना ! एक अज्ञानरुपी अहंकारकरिकै एती लघुताको जीव प्राप्त होते हैं अज्ञानकरिकै रंजित हुए मिथ्या भ्रमको देखते हैं. प्रकाशरूप चिदाकाश सत्ताविना इनको भासता है, अपनी वासनाकी कल्पनाकरिकै जगत् सत्‌रूप भासता है. जैसे मृगतृष्णाका जल भ्रमकरिकै सत् भासता है, तैसे अपनी कल्पनाकरिकै जगत् सत् भासता है, इस संसारसमुद्रके तरणेको वही समर्थ होता है, जो शास्त्रके विचारद्वारा निर्वासनिक पुरुष हुआ है, अरु जो संसारनिरूपणका शास्त्र है, तारक कहनेको बड़ा प्रकाशरूप है शब्द जिसका, तिसका आश्रय करता है, सो संसारके पदार्थको शुभरूप जानता है, तिसकरि अधःको गिरता है, जैसे टोयेको जलरूप जानिकै स्नानके निमित्त जावै, अरु गिर पडै ॥ हे रामजी ! अपना अनुभवरूपी जो प्रसिद्ध मार्ग है, तिसविषे जो प्राप्त भये हैं, तिनका नाश नहीं होता, सुखसों

स्वच्छंद चले जाते हैं, जैसे पथिक सूधे २ मार्ग चला जाता है, ब्रह्मनिरूपक जो शास्त्र है, सो निर्वंदमार्ग, और संसारनिरूपक शास्त्र दुःखदायक मार्ग है, यह जगत् असतरूप भ्रांतिमात्र है, जिसकी बुद्धि इसविषे है कि, यह पदार्थ यह सुख मुझको प्राप्त होवै, इसप्रकार संसारके विषयकी तृष्णा करते हैं; सो अभागी हैं अरु जो ज्ञानवान् पुरुष है तिसको जगत् वास तृणकी नाई तुच्छ भासता है, जिस पुरुषके हृदयविषे परमात्माका चमत्कार भया है, सो इस ब्रह्मांड खंड लोक अरु लोकपालको तृणवत देखता है, जैसे जीव आपदाको त्यागता है, तैसे उसके हृदयविषे ऐश्वर्यभीआपदारूप त्यागने योग्य है, ताते अंतर निश्चयात्मक तत्त्वविषे रहौ, अरु बाहिर जैसा अपना आचार है, तैसा करौ, आचारका व्यतिक्रम नहीं करना, व्यतिक्रम करनेकरि शुभकार्य भी अशुभ हो जाता है, जैसे राहु दैत्यने जो अमृतपान करनेका यत्न किया तौ भी व्यतिक्रमते शरीर कटता भया; ताते शास्त्रानुसार चेष्टा करनी कल्याणका कारण है, संतजनकी संगत अरु सच्छास्त्रकरि बडा प्रकाश प्राप्त होता है, जो पुरुष इनको सेवता है, सो मोह अंध कूपविषे नहीं गिरता ॥ हे रामजी ! वैराग्य, धैर्य, संतोष, उदारता आदिक जो गुण हैं, सो जिसके हृदयविषे प्रवेश करते हैं, सो पुरुष परम संपदावान् होता है, आपदाको नष्ट करता है, जो पुरुष शुभ गुणकरि संतुष्ट है, अरु सच्छास्त्रके श्रवणरागविषे राग है अरु सत्‌की वासना है, सो पुरुष है; और सब पशु हैं, जिसमें वैराग्य, संतोष, धैर्य आदि गुणकरि चांदनी पसरती है, अरु हृदयरूपी आकाशविषे विवेकरूपी चंद्रमा प्रकाशता है, सो पुरुष शरीर नहीं मानो क्षीरसमुद्र है, तिसके हृदयविषे विष्णु विराजते हैं, जो कछु तिन्हैं भोगना था सो भोगा है, जो कछु देखना था, सो देखा है, बहुरि भोगने अरु देखनेकी तृष्णा नहीं रहती, जिस पुरुषका यथाक्रम यथाशास्त्र आचार है, अरु निश्चय है, तिसके भोगकी तृष्णा निवृत्त हो जाती है, तिन पुरुषोंके गुण आकाशविषे सिद्ध देवता अप्सरा गायन करते हैं, सो मृत्युको तरते हैं, अपर भोगके तृष्णावाले कदाचित् नहीं तरते ॥ हे रामजी ! जिन पुरुषोंके गुण चंद्रमाकी नाईं शीतल हैं, अरु सिद्ध अप्सरा गान करते हैं, सो पुरुष जीवते हैं और सब मृतक हैं, ताते परम

पुरुषार्थका आश्रय करहु, तब परमसिद्धताको प्राप्त होवोगे. वह कौन वस्तु है, जो शास्त्रअनुसार पुरुषार्थ कियेते अनुद्वेग होइकरि प्राप्त न होवै ॥ अवश्यमेव प्राप्त होता है, यथाशास्त्र क्रिया करै, अरु चिरकाल व्यतीत हो जावै, सिद्धता न होवै तौ भी उद्वेग न करै, वह फल परिपक्क होइकरि प्राप्त होवैगा; जैसे वृक्षसों परिपक्क होके फल उतरता है, तब अधिक मिष्ट अरु सुखदायक होता है, यथाशास्त्र व्यवहार करनेहारा तिस पदको प्राप्त होता है, जहां शोक भय यत्न सब नष्ट हो जाते हैं, अरु शांतिवान् होता है ॥ हे रामजी ! मूर्ख जीवकी नाईं संसारकूपविषे मत गिरहु, यह संसार मिथ्या है, तुम उदार आत्मा हौ, उठि खडे होहु, अपने पुरुषार्थका आश्रय करहु, अरु इस शास्त्रको विचारहु, जैसे रणविषे प्राण निकसने लगैं तौ भागता नहीं, शस्त्रको पकडिकै युद्ध करता है, जो अमरपद प्राप्त होवै, तैसे संसाररूपी रणविषे पुरुषार्थ शस्त्र है, यही पुरुषार्थही करौ शास्त्रको विचारौ कि, कर्तव्य क्या है ? जो विचारते रहित है, सो दौर्भाग्य दीनता अशुभको प्राप्त करनेहारा है, महामोहरूपी घन निद्रा है, तिसको त्यागिकरि जागौ, पुरुषार्थको अंगीकार करौ, सो जरामृतके शांतिका कारण है, और जेते कछु अर्थ हैं, सो सब अनर्थरूप हैं, भोग सब रोगके समान हैं, संपदा सब आपदारूप हैं, ये सब त्यागने योग्य हैं, सन्मार्गको अंगीकार करिकै अपने प्रकृत आचारविषे विचारौ, शास्त्र अरु लोकमर्यादाअनुसार व्यवहार करौ, शास्त्रके अनुसार कर्मका करना सुखदायक होता है, जिस पुरुषका शास्त्रके अनुसार व्यवहार है, ऐसा जो विवेकी पुरुष है, तिसका संसारदुःख नष्ट हो जाता है, आयुर्बल, यश, गुण और लक्ष्मीकी वृद्धि होती है, जैसे वसंतऋतुकी मंजरी प्रफुल्लित होती है तैसे वह प्रफुल्लित होता है ॥ इति श्रीयोगवासिष्ठे स्थितिप्रकरणे दामव्यालकटोपाख्याने देशाचारवर्णनं नाम द्वात्रिंशत्तमः सर्गः ॥ ३२ ॥ ॥ वसिष्ठ उवाच ॥ हे रामजी ! सर्व दुःखके देनेहारा, सर्व सुखका फल, सब ठौर सब कालविषे सबको अपने कर्मके अनुसार होता है, एक दिन नंदीगण एक सरोवरपै जायके सदाशिवका आराधन करत भया, तब सदाशिव प्रसन्न भया, तिसकरि उसने मृत्युको जीता, अरु प्रथम नंदी था, सो नंदीगण नाम भया, अरु मित्र बांधव सबको सुख

देनेहारा भया, सो क्योंकरि भया, अपने स्वभाव यत्नकरिकै भया, अरु दैत्यशास्त्रके अनुसार यत्न करते हैं, तब क्रमकरिकै देवताको मारते हैं, कैसे देवता हैं, जो सबते उत्कृष्ट वर्तते हैं जैसे हस्ती कमलको उखाड़ते हैं, तैसे देवताको दैत्य उखडाते हैं सो अपनाही पुरुषार्थ है, अरु मरुत् राजाके यज्ञविषे संवृतनामक एक महाऋषि आया, तिसने देवता दैत्य मनुष्य आदिक अपनी सृष्टि रच लीनी, मानो दूसरा ब्रह्मा है, सो ऐसी सृष्टि अपने पुरुषार्थकरि रची अरु विश्वामित्रने वारंवार तप किया, तपकी अधिकताकारि राजर्षिते ब्रह्मर्षि हुआ, सो अपनेही शुद्धाचार करि हुआ ॥ हे रामजी! एक दुर्भाग्य ब्राह्मण था, उपमन्यु तिसका नाम था, तिसको अपने गृहविषे भोजनकी सामग्री प्राप्त न थी तब उसने एक गृहस्थके घर पितासंयुक्त भोजन किया, दूध चावल खाँडसहित भोजन करिकै अपने गृहविषे आया, बहुरि पितासे कहने लगा, मुझको वही भोजन देहु, जो खाया था सो, तब पिताने साँवेके चावल अरु आटेका दूध घोलिकै दिया, उसने भोजन किया तब तैसा स्वाद न लगा, बहुरि पितासे कहा, मुझको वही भोजन देहु जो वहां खाया था, पिताने कहा, हे पुत्र! वह भोजन हमारे पास नहीं, सदाशिवके पास वह भोजन है, जो वे देवैं तो हम खावैं तब वह ब्राह्मण सदाशिवकी उपासना करने लगा, ऐसा तप किया कि, शरीर अस्थि मात्र हो रहा, अरु रक्त मांस सब सूख गया, तब शिवजीने प्रसन्न होकरि दर्शन दिया अरु कहा, हे ब्राह्मण! जो तुझको इच्छा है सो वर माँग; ब्राह्मणने कहा, दूध अरु चावल देहु, तब सदाशिवने कहा, दूध अरु चावल क्या, कछु और माँग, अरु तुझने कहा है, तौ यही भोजन किया कर, तब उसको वही भोजन प्राप्त हुआ, अरु कहा, जब तू चिंतन करैगा, तब मैं दर्शन देऊँगा ॥ हे रामजी! यह भी तौ अपना पुरुषार्थ हुआ, त्रिलोकीकी पालना करनेवाले विष्णु हैं, तिनको काल तृणकी नाईं मर्दन करता है, तिस कालको श्वेतने जीता है, सो अपना उद्यम हुआ, अरु सावित्रीका भर्ता मृतक हुआ था वह पतिव्रता थी, सो स्तुति नमस्कार करिकै यमको प्रसन्न करती भई, भर्त्ताको परलोकसों ले आई, यह भी अपना पुरुषार्थ है. श्वेतनामा एक ऋषीश्वर हुआ है, सो अपने पुरुषार्थकरि कालको जीति,

मृत्युंजय नामको पावत भया, ताते ऐसा पदार्थ कोऊ नहीं जो यथाशास्त्र उद्यम कियेते प्राप्त न होवै, जो अपने पुरुष प्रयत्नका त्याग नहीं करै, तौ सर्व सुखफलकी प्राप्ति होती है, जो अविनाशी सुखकी इच्छा होवै, तौ आत्मबोधका अभ्यास करै, अपर जेते कछु संसारके सुख हैं, सो दुःखकेसाथ मिलेहुए हैं, अरु आत्मसुख सब दुःखका नाश करता है, किसी दुःखके साथ मिला नहीं, वास्तव कहिये तौ शम अशम सर्व ब्रह्महीं है, यद्यपि ऐसे है, तौ भी शम परमकल्याणका कर्ता है, ताते अभिमानका त्यागकरि शमका आश्रय करहु, अरु निरंतर बुद्धिकरि विचार करहु, अरु यत्नकरि संतका संग करौगे, तब परमपदको प्राप्त होवैंगे॥ हे रामजी! संसारसमुद्रके पार करनेको ऐसा समर्थ तप नहीं, न तीर्थ करनेकरि और समान शास्त्रोंकरिकै तरनेको समर्थ होता है, जैसे संतजनके सेवनसों भवसागरते सुखसों तरना होता है. जिस पुरुषके लोभ, मोह, क्रोध आदिक विकार दिन दिन प्रति क्षीण हो जाते हैं, अरु यथाशास्त्र तिसका कर्म है, ऐसे पुरुषको संतजन कहते हैं, अरु आचार्य कहते हैं, तिनकी संगति संसार पापकर्मते निवृत्त करती है, अरु शुभविषे जोडती है आत्मवेत्ता जो पुरुष है, तिसकी संगति इसकी बुद्धिविषे संसारका अत्यंत अभाव होता है जब दृश्यका अत्यंत अभाव हुआ तब शेष आत्मा रहता है इस क्रमकरिकै जीवका जीवनभाव निवृत्त हो जाता है, शेष बोध तत्त्व रहता है, जगत् न उपजता है, न आगे होवैगा, न वर्तमानविषे है, इसप्रकार मैंने तुझको अनंत युक्तिकरि कहा है अरु कहौंगा, ज्ञानवान्को सर्वदा ऐसेही भान होता है, अचल चिदात्माविषे चंचल चित्त फुरा है, तिसने जगत् आभासको रचे हैं, जैसे जैसे फुरता है, तैसे तैसे जगत् भासता है, अरु वस्तुते अपर कछु हुआ नहीं. आत्मरूपी सूर्य है, जगत् तिसकी किरणैंरूप हैं, जैसे सूर्य अरु किरणोंविषे भेद कछु नहीं, तैसे जगत् अरु आत्माविषे भेद कछु नहीं, अहंरूप आत्मा है तिसविषे आपको न जानना, सो आत्माकाशविषे मेघरूपी मलिनता है, जब परमार्थमें अहंभावको जानैगा, तब अनात्मविषे अहंभाव लीन हो जावैगा तब चिदाकाशके साथ जीवकी अत्यंत एकता होती है, जैसे घटके फूटेते घटाकाशकी महाकाशके साथ एकता होती है, अहं आदिक जो दृश्य है; सो निश्चयकरि

ज्ञान, जो वास्तवते कछु नहीं, विचार कियेते नहीं रहता, जैसे बालकको परछाईंविषे पिशाच भासता है, सो भ्रांतिमात्र होता है, तैसे यह जगत् भ्रांतिसिद्ध है, अपनी कल्पनाकरि भासता है, अरु दुःखदायक होता है, विचार कियेते नष्ट हो जाता है ॥ हे रामजी ! आत्मरूपी चंद्रमा सदाप्रकाश है, अरु अहंकाररूपी तिसके आगे मेघ बादल आया है, तिसकरि परमार्थबुद्धिरूपी कमलिनी विकासको नहीं प्राप्त होती, मूँदे मुख हो रही है, ताते विवेकरूपी वायुकरि तिसको नष्ट करौ. नरक, स्वर्ग, बंध, मोक्ष, तृष्णा, ग्रहण, त्याग आदिक सब अहंकार करि पडे फुरते हैं, हृदयरूपी आकाशविषे अहंकाररूपी मेघ जबलग गर्जता वर्षा करता है, तबलग तृष्णारूपी कटकमंजारि बढती जाती है; जबलग अहंकाररूपी बादलने आत्मरूपी सूर्यको आक्रमण किया है, तबलग जड़ता अरु अंधकार है, प्रकाश उदय नहीं होता, अहंकार वृक्ष है तिसकी अनंत शाखा पसरती हैं, अहं मम आदिक विस्तार अनेक अर्थको प्राप्त करता है; जो कछु संसारविषे सुखदुःख आदिक प्राप्त होता है, सो सब अहंकारकरिकै प्राप्त होता है; संसाररूपी चक्र है, अहंकार तिसकी नाभि है; तिसकरिकै पड़ा भ्रमता है, अरु अहं ममरूपी बीज है, तिसते अनेक जन्मरूपी वृक्षकी परंपरा उदय होती है; अक्षय हो जाती है; जो नष्ट कबहूं नहीं होती ताते यत्नकरिकै इसको नाश करौ, जबलग अहंकाररूपी अंधकार है, तबलगं चिंतारूपी पिशाचिनी विचरती है; अरु अहंकाररूपी पिशाचने जिसको ग्रहण किया है, तिस नीच पुरुषको मंत्र तंत्र भी दीनताते छुडाय नहीं सकते ॥ राम उवाच ॥ हे भगवन् ! निर्मल जो चिन्मात्र आत्मसत्ता है; सो अपने आपविषे स्थितहै तिसविषे अहंकाररूपी मलिनता कहांते प्रतिबिंबित हुई ? ॥ वसिष्ठ उवाच ॥ हे राघव ! अहंकारका जो चमत्कार भासता है. सो वास्तव धर्म नहीं, मिथ्या है, वासनाभ्रमकरि हुआ है पुरुष प्रयत्न करिकै नष्ट हो जाता है जो न मैं हौं न मेरा कोई है, अहंममर्मे सार कछु नहीं जब यह शांत होवैगा तब दुःख भी कोऊ न रहैगा. जब ऐसी भावनाका निश्चय दृढ होवैगा तब अहंकार नष्ट हो जावैगा, आत्माविषे अहं कोऊ नहीं, न दृश्यमें सार है; इसप्रकार जब इसका फुरना शांत हुआ, तब अहंकर भी नष्ट हो जावैगा, जब अहंकार

नष्ट हुआ तब हे योपादेयबुद्धि भी शांत हो जावैगी; समता आदिक प्रसन्नता आय उदय होवेगी; अहंकारकी प्रवृत्ति दुःखका कारण है ॥ राम उवाच ॥ हे प्रभो ! अहंकारका रूप क्या है ? अरु त्याग कैसे होता है ? अरु शरीरते रहित कब होता है, अरु इसके त्यागेते फल क्या होता है ? ॥ वसिष्ठ उवाच ॥ हे रामजी ! अहंकार तीनप्रकारका है, दो प्रकारका श्रेष्ठ अंगीकार करने योग्य है, अरु तीसरा त्यागने योग्य है सो सुन, इसका त्याग शरीरसहित होता है, यह दृश्य सब मैंही हौं सो मैं परमात्मा अद्वैतरूप हौं, मुझते इतर कछु नहीं, यह निश्चय परमअहंकारका है, मोक्षको देनेहारा है, बंधनका कारण नहीं, इसविषे जीवन्मुक्त विचरते हैं, अरु यह अहंकार भी मैं तुझको उपदेशके निमित्त कल्पिकै कहा है, वास्तवते यह भी नहीं केवल अचेत चिन्मात्र सत्ता है अरु दूसरा अहंकार यह है कि, मैं सर्वते व्यतिरेक हौं; अरु बालके अग्रते सौंवा भाग सूक्ष्म हौं; ऐसा जो निश्चय है, सो भी जीवन्मुक्तिका है मोक्षदायक बंधनका कारण नहीं, यह अहंकार भी तुझको कल्पिके कहा है, वास्तवते यह कहना भी नहीं, अरु तीसरा अहंकार यह है कि, हाथपादते आदि लेकरि इतना मात्र आपको जानना, इसविषे जिसका निश्चय है सो तुच्छ है, बंधनका कारण है, इसको त्याग करौ यह दुष्टरूप परमशत्रु है इसकरि जो जीव मरे हैं सो परमार्थकी ओर नहीं आते यह अहंकाररूपी जो शत्रु है सो चतुर अरु बडा बली है; नानाप्रकारके जन्म अरु मानसी दुःख काम, क्रोध, राग, द्वेष आदिकका देनेहारा है, सब जीवको नीच करता है, अरु संकटविषे जोडता है इस दुष्ट अहंकारके त्यागेते पाछे जो शेष रहता है, सो आत्मा भगवान् मुक्तिरूप सत्ता है ॥ हे रामजी ! लोकविषे जो अहंकारभावना है, सो वपुकी है, मैं यह हौं, एता मात्र हौं, सो दुःखका कारण है, इसको महापुरुषने त्याग किया है, वह जानते हैं हम देह नहीं, शुद्ध चिदानंदस्वरूप हैं, प्रथम जो दो अहंकार मैंने तुझको कहे हैं, सो अंगीकार करने योग्य हैं, अरु मोक्षदायक हैं, अरु तीसरा अहंकार त्यागने योग्य है. काहेते कि दुःखका कारण है, तिसी अहंकारको ग्रहण कारिकै दाम, व्याल, कट आपदाको प्राप्त हुए, जो महाभयदायक कहनेविषे नहीं आते, जिनने भोग हैं, तिनकी क्या कहनी है,

वही जानते हैं ॥ राम उवाच ॥ हे भगवन् ! तीसरा अहंकार जो तुमने कहा है, तिसका त्याग कियेते पुरुषका क्या भाव रहता है, अरु तिसको क्या विशेषता प्राप्त होती है ॥ वसिष्ठ उवाच ॥ हे रामजी ! जब यह जीव अनात्मा अहंकारको त्याग करता है, तब परमपदको प्राप्त होता है, जेता जेता त्याग करता है तेता तेता दुःखते मुक्त होता है, ताते इसको त्यागकरि आनंदमान होहु, इसको त्यागिकै महापुरुष शोभता है, जब तुम इसको त्यागोगे तब ऊँचे पदको प्राप्त होउगे, सर्वकाल सर्व यत्न करिकै दुष्ट अहंकार जो लोक कहै हैं, तिसको नष्ट करौ, परमानंद बोधके आगे यह आवरण है, इसके त्यागते बोधवान् होता है. जब यह अहंकार निवृत्त होता है तब शरीर पुण्यरूपी हो जाता है अरु परमसारके आश्रयको प्राप्त होता है यही परमपद है, जब स्थूल अहंकारका त्याग किया, तब सर्व व्यवहार चेष्टाविषे आनंदमान होता है, जिस पुरुषका अहंकार शांत हुआ है, तिसको भोग अरु योग दोनों स्वाद नहीं देते, जैसे अमृतकरि जो तृप्त भया है, तिसको खट्टा अरु मीठा दोनों स्वाद नहीं देते, अर्थ यह जो रागद्वेषकरि चलायमान नहीं होता, एकरस रहता है, जिसका अनात्माविषे अहंभाव नष्ट हुआ है, तिसको भोगविषे राग नहीं होता, तृष्णा राग दोष नष्ट हो जाता है जैसे सूर्यके उदय हुएते अंधकार नष्ट हो जाता है, तसे अपने दृढ पुरुषार्थ करिकै जिसके हृदयसों अहंकारका अनुसंधान नष्ट हो जाता है, सो संसारसमुद्रको तरिजाता है। ताते यही निश्चय धारौ कि, न मैं हौं, न कोई मेरा है, अथवा सर्व मैंही हौं, मुझते इतर कछु वस्तु नहीं यह निश्चय जब दृढ होवैगा, तब संसारकी द्वैतवासना मिटि जावैगी, केवल आत्मतत्त्वका सर्वदा भान होवैगा ॥ इति श्रीयोगवासिष्ठे स्थितिप्रकरणे दामव्यालकटोपाख्याने पुरुषार्थजयवर्णनं नाम त्रयस्त्रिंशत्तमः सर्गः ॥ ३३ ॥ ॥ वसिष्ठ उवाच ॥ हे रामजी ! जब दाम, व्याल, कट, युद्ध करते भाजगए तब शंबरके नगरकी अवस्था हुई सो सुन, कैसा नगर है, जो पहाडके समान है, तहां शंबरकी जेती कछु सेना थी सो सब नष्ट हो गई, जैसे शरत्कालविषे मेघ नष्ट हो जाता है, तैसे नष्ट हो गई, तब देवता जीतिकरि अपने स्थानविषे जाय बैठे, अरु शंबरभी क्षोभको पायके वैठि रहा, जब केतेक वर्ष व्यतीत भए, तब देवतोंके मारने

निमित्त शंवर युक्ति चितवता भया कि, जो दामादिक मायाकरिकै रचे थे सो मूर्ख थे वलवान् थे, परंतु मिथ्या अहंकारका बीज अज्ञान उनको था तिसकरि उनको मिथ्या अहंकार आनि फुरा तब नष्टहुए अरु भागे अब मैं ऐसे योद्धे रचौं, जो आत्मवेत्ता ज्ञानवान् निरहंकार होवैं जिनको अहंकार कदाचित् उत्पन्न न होवे, तिनको कोऊ जीति न सकैगा, सब देवतोंकी सेना मारैंगे ॥ हे रामजी ! इसप्रकार चिंतनकरि शंवर मायाकरि दैत्योंको रचता भया; जैसे समुद्र अपने बुद्बुदे रचि लेवै, तैसे शंवरने दैत्योंको रचि लिया. सो कैसे रचे, सर्वज्ञ, विद्याके वेत्ता, अरु वीतराग आत्मा अरु यथाप्राप्त कामको करते, आत्मभाव निश्चय, अरु आत्मरूप, ऐसे उत्तम पुरुष उपजे भीम अरु भास अरु दृट तिनके नाम, सो तीनों इस संपूर्ण जगत्को तृणवत् जानैं, परमपवित्र तिनके हृदय, ऐसे पुरुष उपजाये, अरु गर्जत भये, महावलकरि शब्द करैं तिनके शब्दकरि आकाश पूर्ण हो गया, इंद्रादिक देवता स्वर्गविषे शब्द श्रवण करते भये, सुनिकै बड़ी सेनाको संग लेकरि आये, अरु यह भी विजलीवत् चमत्कार करते बढचले महावडे योद्धे दोनों ओरते युद्ध करने लगे, शस्त्रकी नदियोंके प्रवाह चले अरु भीम, भास, दृट, धैर्यसों खडे रहे, कवहूं किसी शस्त्रका प्रहार लगै, तब युद्धके अभ्यासकरि देहका मोह आनि फुरे वहुरि विचार विषे सावधान होवैं कि, हम तौ अशरीर हैं, चैतन्यमय, निराकार, निर्विकार, अद्वैत, अच्युतरूप हैं हमारे संग शरीर कहां है, जब जब मोह आवै तब तब ऐसे विचार करैं जरा मरण उनको कछु न भासै, निर्भय होकरि वर्तमान युद्धकार्य करते भये, वासनाकी जालते मुक्त हो शत्रुको पकड मारैं हेयोपादेयते रहित समदृष्टि युद्धकार्यको करते हैं, दृढ युद्ध आनि हुआ, तब देवतोंकी सेना मारीगई जो शेष रहे सो भीम भास दृटके भयते भागे, जैसे जल पर्वतते उतरता है,तीक्ष्ण वेगकरि चलता है, तैसे देवता तीक्ष्ण वेगकरि भागे सो क्षीरसमुद्रविषे विष्णुभगवान्की शरणको प्राप्त भये, जैसे वायुकरि मेघवादल चला पर्वतके आश्रय जाय रहता है, तैसे भयकरि भाग गए, तब तिन को देखिकै विष्णु भगवान्ने कहा, तुम यहां स्थित होहु, मैं इनको युद्धकरि मार आता हौं ऐसे कहकरि सुदर्शन चक्रको लिये विष्णुभगवान् शंवरकी ओर आये तब

विष्णु भगवान् अरु शंवरका युद्ध होता भया; बडा युद्ध हुआ, मानो अकाल प्रलय आया है, बडे बडे पर्वत उछले अरु युद्ध होवे, तब शंबर चालि खडा हुआ, महाप्रकाशरूप सुदर्शन चक्रसे विष्णुजीने शंवरको मारि लिया शंवर शरीरको त्यागिकै विष्णुपुरीको प्राप्त भया, तब विष्णु भगवान्ने भीम भास दटके अंतःपुर्यष्टकविषे जाय प्रवेश किया, उनकी चित्तकला जो प्राणके साथ मिश्रित थी, तिसको असत् किया, जैसे पवन दीपकको निर्वाण करता है, तैसे उनकी पुर्यष्टक फुरणेते निर्वाण हुई, आगे जीवन्मुक्त थे, सो विदेहमुक्त भए ॥ हे रामजी ! वे भीम भास दट निर्वासनिक थे, इस कारणते दीपकवत् निर्वाण हो गये, ताते जो वासनासं युक्त है, सो बंधमान है, जो निर्वासनिक है, सो मुक्तरूप है, तुम भी विवेककरिकै निर्वासनिक होहु. जब यह निश्चय होवै कि, जो सर्व जगत् असत्रूप है तब वासनाकी ओर नहीं फुरती, यही यथार्थ देखना है कि, किसी जगत्के पदार्थविषे आसक्त बुद्धि न होवे वासना कहिये, चित्त कहिये ये एकही वस्तुके नाम हैं, सर्व पदार्थके शब्द अरु अर्थ चित्तविषे स्थित हैं, जब सत्का अवलोकन सम्यक् ज्ञान होवैगा; तब यह लय हो जावैगा; परमपद शेष रहैगा; जो चित्त वासना संयुक्त है, तिसविषे अनेक पदार्थकी तृष्णा होती है, तिसते जो मुक्त कहाते हैं, नानाप्रकारके घट पट आदिक आकार भासते हैं, सो चित्त फुरनेकारि अनेकताको प्राप्त होता है, जैसे परछाईंविषे वैतालभ्रम होता है, तैसे नानात्वभ्रम चित्तविषे भासता है। हे रामजी ! जैसी जैसी वासनाको लेकारि चित्त स्थित होता है, तैसाही आकार निश्चय होइकारि भासता है, दाम व्याल, कटका रूप चित्तके परिणामकारि विपर्यय हो गया; तुमको भीम भास दटका निश्चय होवै, दाम व्याल कटका निश्चय मत होवै ॥ हे रामजी ! यह वृत्तांत मुझको पूर्व ब्रह्माजीने कहाथा, सो मैंने अब तुमको कहा है, इस संसारविषे कोऊ विरला सुखी है, दुःखदशा अनेक हैं, जब तुम इस संसारकी भावना त्यागोगे, तब देहादिकविषे बंधमान न होहुगे, व्यवहारविषे भी आसक्तता न होवैगी ॥ इति श्रीयोगवासिष्ठे स्थितिप्रकरणे दाम व्यालकटोपाख्यानसमाप्तिवर्णनं नाम चतुस्त्रिंशत्तमः सर्गः ॥ ३४ ॥ वसिष्ठ उवाच ॥ हे रामजी ! अविद्याकारि संसारकी ओर

जो मन सन्मुख भया है, तिसको जिस पुरुषने जीता है, वही सुखी है, वही शूरमा है, तिसहींकी जय है, यह संसार सर्व उपद्रवका देनेहारा है, इसका उपाय यही है कि, अपने मनको वश करना यह जो मेरा शास्त्र है, सो सर्व ज्ञानसंयुक्त है; इसको सुनिकै आपको विचारै कि, यह जगत् क्या है ? ऐसे विचारिकै भोगते उपरांत होना, अरु सत्स्वरूप आत्माका अभ्यास करना, जेती कछु भोग इच्छा है, सो बंधनका कारण है, इसके त्यागनेका नाम मोक्ष कहते हैं और शास्त्रका सर्व विस्तार है. जो विषयभोग हैं, तिनको विषकी नाईं अरु अग्निकी नाईं जानै, जैसे विष अरु अग्नि नाशका कारण है, तैसे विषयभोग नाशका कारण है,ऐसे जानिकै इनका त्याग करै, वारंवार यही विचार करै कि, विषयभोग विषकी नाईं है, ऐसे विचारकरि चित्तसों त्यागैगा, तब सेवते हुए भी दुःख दायक न होवैंगे, जैसे मंत्रशक्तिसंपन्नको सर्प दुःखदायक नहीं होता, तैसे तिसको भोग दुःखदायक नहीं होते, तातें संसारको सत् जानिकें वासना फुरती है, सो दुःखका कारण है, जैसे पृथ्वीविषे जो बीज बोता है, सो ऊगता है, कटुकते कटुक उपजता है, मिष्टते मिष्ट उपजता है, तैसे जिसकी बुद्धिविषे संसारभोग वासनारूपी बीज है, तिसते दुःखकी परंपरा उत्पन्न होती है, अरु जिस बुद्धिविषे शांतिकी शुभवासना गर्भित होती है तिसते शुभ गुण वैराग्य, धैर्य, उदारता, शांतिरूप उत्पन्न होते हैं; अरु शुभ वासनाका अनुसंधान होवैगा, मन; बुद्धि,निर्मलभावको प्राप्त होवैंगे, जब मन निर्मल हुआ, तब शनैःशनैः करि अज्ञान नष्ट हो जावैगा, अरु सज्जनताकी वृद्धि होवैगी, जैसे शुक्लपक्षके चंद्रमाकी कला बढ़ती जाती है, जब इन शुभ गुणनकी परंपरा स्थित होती है, तब विवेक उत्पन्न होता है, तिसके प्रकाशकरि हृदयका मोहरूपी तम नष्ट हो जाता है, जैसे सूर्यके उदय हुएते तम नष्ट होजाता है, तब धैर्य, उदारता, वृद्ध होते हैं; जब सत्संग अरु सच्छास्त्रके अभ्यासद्वारा इसविषे शुभगुण आनि उदय होते हैं, तब महाआनंदका कारण शीतल शांतरूप प्रगट होता है, जैसे पूर्णमासीके चंद्रमाकी कांति होती है, आनंददायक शीतलता पसारि जाती है, तैसे सत्संगरूपी वृक्षका फल इसको प्राप्त होता है ॥ हे रामजी ! सत्संगरूपी वृक्ष है, तिसते विवेकरूपी फल प्रगट होता है, तिस विवेकते

समतारूपी अमृत स्रवता है, तिसकरि मन निर्द्वंद्व हो जाता है, सर्व कामनाते रहित निरुपद्रव होता है, मनकी चपलता शोक अनर्थका कारण है; सो मनके अचल हुएते शांत हो जाता है, शास्त्रके अर्थ धारणेकरि संदेह नष्ट हो जाते हैं, नानाप्रकारकी कल्पनाजाल शांत हो जाती है, इससे जीवन्मुक्त अलेप होता है, कोई संसारका क्षोभ तिसको स्पर्श नहीं करता, निरिच्छित, निरुपस्थित, निर्लेप, निर्दुःख होता है शोकरूप कुहिडते रहित हुआ चित्त जड़ ग्रंथिसों मुक्त परमानंदरूप होता है, तृष्णारूपी सूत्रकी जालते जो पुरुष निकसि गया है, सोई शूरमा है, अरु जिस पुरुषने तृष्णाको नष्ट नहीं किया, सो अनेक जन्म दुःखविषे पड़ा भ्रमता है; जब तृष्णा घटती है, तब मनभी सूक्ष्म हो जाता है, जो भोगकी तृष्णा नष्ट हुई, तब मन भी नष्ट हो जाता है ॥ हे रामजी ! जैसे भले टहलुए होते हैं, सो स्वामीके निमित्त रणविषे तृणवत् शरीरको त्यागते हैं, तिसकरि स्वामीकी जय होती है, जो दुष्ट हैं, सो नहीं त्यागते, तिसकरि दुःखका कारण होते हैं, तैसे मनका उदय होना, जीवको दुःखका कारण है, अरु मनका नष्ट होना सुखदायक है, ज्ञानवान्का मन नष्ट हो जाता है, अज्ञानीका मन वृद्ध होता है, संपूर्ण जगच्चक्र मनोमात्र है, यह पर्वतमंडल भी मनोमात्र है; स्थावरजंगमरूप जेता कछु जगत् है सो सब मनरूप है, मन किसको कहते हैं सो श्रवण कर. शुद्ध कला चिन्मात्रविषे जो चित्तकलाका फुरणा हुआ है, अरु वही संवेदन संकल्पविकल्पकेसाथ मिलिकरि मलीन हुआ है; अरु स्वरूप विस्मरण भया है, तिसका नाम मन है, सोई मन वासनाकरिकै संसारभागी होता है, जब चित्त संवेदन दृश्यकेसाथ मिलता है, तिससाथ तन्मय होनेकरि चित्तसंवित्का नाम जीव होता है, सो जीव दृश्य वर्गकेसाथ मिलिकै संसारदशामें चलाजाता है, अनेक विस्तारको प्राप्त होता है, अरु आत्मपुरुष जो है सो परब्रह्म है, संसारी नहीं, सो वह न रुधिर है; न मांस है, न शरीर है, शरीरादिक सर्व जडरूप है, आत्मा चैतन्य आकाशवत् अलेप है, सो जब शरीरको भिन्न भिन्नकरि देखिये, तब रुधिर मांस अस्थिते इतर कछु नहीं निकसता, जैसे केलेके वृक्षको उधेलि देखिये, तौ पत्रते इतर कछु नहीं निकसता, तैसे मनही जीव है, जीवही मन है;

मनते इतर आकार कोऊ नहीं, सर्व विकारभावको प्राप्त भया है ॥ हे रामजी ! इस पुरुषको बंधनका कारण अपनी कल्पना है, जैसे घुराण अपने यत्नकरि आपही बंधनको प्राप्त होती है तैसे पुरुष अपनी वासनाकरि आपही संसारबंधनको पाता है, ताते भोगकी वासना मनते दूर करौ, संसारका बीज वासनाही है; जिस वासनासंयुक्त दिनविषे विचरता है, तैसा स्वप्न आता है; जैसी जैसी वासना होती है, तैसा तैसा पुण्य पाप अनुसार परलोक भासता है, अपनी वासनाकरि जगत् भास आता है; जैसे अन्न जिस द्रव्य स्वादकेसाथ मिलता है, तैसा भासता है मिष्टसाथ मिष्ट, खट्टासाथ खट्टा; कटुकसाथ कटुक होता है, तैसे जैसी वासना जिसके हृदयविषे दृढ होती है, तैसे हो भासती है, जैसे बड़ा पुण्यवान् होता है, तिसको स्वप्नविषे अपनी इंद्रकी मूर्ति भासती है, नीचको नीच मूर्ति भासती है, भूतके संगीको भूतादिक भास आता है, तैसे वासनाके अनुसार परलोक भासि आता है, जब मनविषे निर्मल भाव स्थित होता है, तब मनकी कल्पना पापवासना मिटि जाती है, अरु जब मनविषे मलिन वासना बढती है, तब निर्मलता नहीं भासती, वहीरूप फल प्राप्त होता है, ताते दुर्वासना कलंकको त्यागिकै पूर्णमासीके चंद्रमावत् विराजमान होडु; यह संसार भ्रांतिमात्र है, सत्‌रूप नहीं अज्ञानकरिकै भेद विकार भासते हैं, वास्तवते न कोऊ बंध है, न मोक्ष है, न कोऊ बंध करनेहारा है, सर्व यह इंद्रजालकी नाईं मिथ्याभ्रम भासते हैं, जैसे गंधर्वनगर मिथ्या होता है जैसे मृगतृष्णाका जल भासता है, जैसे आकाशविषे दूसरा चंद्रमा भासता है सो असत्‌रूप है, तैसे यह जगत् असत्‌रूप है, जीवको अज्ञानकरिकै ऐसा निश्चय हो रहा है कि, मैं अनंत आत्मा नहीं, मैं लघु नीच हौं, जब इस निश्चयका अभाव होवै, अरु आपको अनंत आत्मा निश्चयकरि जानै, सो प्रथम इसका अभ्यास करै, तब हृदयविषे स्थित होवै, इस निश्चयकरि उस नीच निश्चयका अभाव होता है, सर्व जगत् स्वच्छ निर्मल आत्मा है तिसविषे जिसको देहादिक भावना हुई है, तिसको लोकविषे बंधन होता है, अपने संकल्पकरि आपही शुककी नाईं बंधनमें आता है, अरु जिसको स्वरूपविषे भावना होती है तिसको मोक्ष भासता है, आत्मसत्ता मोक्ष अरु बंध दोनोंते रहित है

एक अरु द्वैतते रहित अद्वैत ब्रह्मसत्ता अपने आपविषे स्थित है, जब मन निर्मल होता है, तब इसप्रकार भासता है, किसी पदार्थ विषे बंधमान नहीं होता, जब मनभावते रहित अमन होता है, तब ब्रह्मसत्ताको देखता है, अन्यथा नहीं देखता, जब वैराग्य अरु अभ्यासरूपी जलकरि मनको निर्मल भाव होता है, तब ब्रह्मज्ञानरूपी रंग चढ़ि जाता है, सर्व आत्माही भासता है, जब सर्वात्म भावना हुई तब ग्रहणत्यागकी वृत्ति नष्ट हो जाती है, बंध मोक्ष भी नहीं रहता, जब मनके कषाय परिपक्व होते हैं. अर्थ यह जो भोगकी सूक्ष्म वासनाते मुक्त होता है, सच्छास्त्रके विचारकरि वैराग्यके क्रमते बुद्धिविषे वैराग्य उपजता है, तब परमबोधको प्राप्त होता है, और कमलकी नाईं बुद्धि खिलि आती है. मनकरि सर्व पदार्थ रचे हैं, तिनसों मिलिकरि तद्रूप हो जाता है, तिसका नाम असम्यक्‌ज्ञान है, जब सम्यक् दृष्टि होती है; तब तिसका तत्काल नाश करता है, जब अंतरबाहिर दृश्यका त्याग करता है, अरु मन सद्भावविषे स्थित होता है, तब परमपदको प्राप्त हुआ कहाता है ॥ हे रामजी ! यह द्रष्टा अरु दृश्य जो स्पष्ट भासते हैं, सो असत् हैं, तिस असत्‌के साथ तन्मय हो जाना, यह मनका रूप है, जो पदार्थ आदि अंतविषे न होवै, अरु मध्यविषे भासै तिसको असत्‌रूप जानिये, सो यह दृश्य आदिविषे भी नहीं उपजा, अरु अंतविषे भी नहीं रहता, मध्यविषे जो भासता है, सो असत्‌रूप है, अज्ञानकरिकै जिनको सत् भासता है, तिनको दुःखकी प्राप्ति है, आत्मभावना विना दुःखनिवृत्ति नहीं होती; जब दृश्यविषे आत्मभावना होती है, तब दृश्य भी मोक्षदायक हो जाता है, जल और है, तरंग और हैं, यह अज्ञानीका निश्चय है, जल अरु तरंग एकहीरूप हैं, यह ज्ञानीका निश्चय है, तैसे नानारूप जगत् अज्ञानीको भासता है, तिसकरि दुःख पाता है, ग्रहण अरु त्यागकी बुद्धिविषे पड़ा भटकता है, अरु ज्ञानीको सर्व आत्मा भासता है, भेदभावनाते रहित अंतर्मुख सुखी होता है ॥ हे रामजी ! नानात्व है, सो मनके फुरणेकरि रचा है, अरु मनका रूप है, अपने संकल्पबलका नाम मन है, सो असत्‌रूप है, जो असत् विनाशी रूप है, तिसको सत् माननेकरि क्लेश होता है, जैसे किसीका बांधव परदेशते आता है, अरु उसको पहँचानता नहीं,

दृष्टि आता है, अरु तिसविषे राग नहीं होता जब उसविषे अपनेकी भावना करता है, तब राग भी होता है, तैसे जब आत्माविषे अहंप्रतीति होती है, अरु देहादिकविषे नहीं होती, तब देहादिक सुख दुःख स्पर्श नहीं करते, जब देहादिकविषे भावना होती है, तब स्पर्श करते हैं ॥ हे रामजी ! शिवतत्त्वका ज्ञान होवै, तब दुःख कोऊ नहीं रहता, सो कैसा शिव है कि, द्रष्टा अरु दृश्यके मध्यविषे व्यापक है, तिसविषे स्थित हुएते मन शांत हो जाता है, जैसे वायुते रहित धूर उडनेसों रहिजाती है, तैसे मनके शांत हुएते देह रूपी धूर शांत हो जाती है, बहुरि संसाररूपी कुहिड नहीं रहती, वर्षाऋतुरूपी वासना क्षीण हो जाती है तब जाना नहीं जाता कि, जड़तारूपी वल्ली कहां गई, जब अज्ञानरूपी मेघ शांत हुआ, तब तृष्णारूपी वल्ली सूख जाती है, हृदयरूपी पवनसों मोहरूपी कुहिड़ नष्ट हो जाती है, जैसे प्रातःकाल हुएते रात्रि नष्ट हो जाती है, अज्ञानरूपी मेघके क्षीण हुएते देहअभिमानरूपी जड़ता जानी नहीं जाती कि, कहां गई, जबलग अज्ञानरूपी मेघ गर्जता है तबलग संकल्परूपी मोर नृत्य करते हैं, जब अहंकाररूपी मेघ नष्ट हो जाता है; तब परमनिर्मल चिदाकाश आत्मरूपी सूर्य स्वच्छ प्रकाशता है, जब मोहरूपी वर्षाकालका अभाव भया, तब ज्ञानरूपी शरत्कालविषे दिशा निर्मल हो जाती हैं, आत्मारूपी चंद्रमा शीतल चाँदनीसों प्रकाशता है, सो सर्व संपदाका देनेहारा है, परमानंदकी प्राप्ति करनेहारा है जब प्रथम शुभ गुणकरि विवेकरूपी बीज संचित होता है, सो शुभ मन सर्व संपदाके देनेहारा परमानंद अति सफल भूमिको प्राप्त होता है, तिस विवेकी पुरुषको वन पर्वत चतुर्दश भुवन सर्व आत्माही प्रकाशता है, सो निर्मलते निर्मल शीतलते शीतल भावनाविषे भासता है, हृदयरूपी तालाब अति विस्तारवान् होता है, स्फटिक मणिवत् उज्ज्वल स्वच्छ जलकरि पूर्ण होता है, तिसविषे धैर्य उदारता रूपी कमल विराजते हैं, तिस हृदयरूपी कमलपर अहंकाररूपी भँवरा विचरता है, सो नष्ट हो जाता है, बहुरि नहीं उपजता; जो पुरुष निरपेक्ष सर्वते श्रेष्ठ निर्वासनिक शांतमन अपने देहरूपी नगरविषे विराजमान

ईश्वर होता है, जिसको आत्मप्रकाश उदय हुआ है तिस बोधवान्का मन अत्यंत गलि जाता है, भय आदिक विकार नष्ट हो जाते हैं, देहरूपी नगरविषे विगतज्वर होके विराजमान होता है॥ ॥इति श्रीयोगवासिष्ठे स्थितिप्रकरणे उपशमरूपवर्णनं नाम पंचत्रिंशत्तमः सर्गः॥ ३५॥ ॥राम उवाच॥ हे ब्रह्मन्! आत्मा चैतन्यरूप है, अरु विश्वते अतीत है, तिस चिदात्माविषे विश्व कैसे उत्पन्न भया, बोधकी वृद्धिके निमित्त बहुरि मुझको कहौ॥ वसिष्ठ उवाच॥ हे रामजी! जैसे सौम्यजलविषे तरंग अव्यक्तरूप होते हैं, परंतु त्रिकालदर्शीको तिनका सद्भाव नहीं भासता, तिनका रूप दृष्टमात्र होता है, तैसे आत्माविषे जगत् संकल्प मात्र होता है. जैसे आकाश सर्वगत है, परंतु सूक्ष्म भावकरि लखनेविषे नहीं आता है, तैसे आत्मा निरंश, निराकार सर्वगत, सर्वव्यापक है, परंतु लखा नहीं जाता, अव्यक्त अच्युतरूप है, तिस आत्माविषे जगत् ऐसे है, जैसे कोऊ स्तंभ मणिरूप होवै, तिसविषे शिल्पी कल्पता है कि, एती पुतलियां इसविषे हैं, सो क्यों हैं, शिल्पीके मनविषे अन होती फुरती है, तैसे यह जगत् आत्माविषे मनरूपी शिल्पीने कल्पा है, सो आत्माके आधार है, आत्माके आश्रय आत्माविषे स्थित है, अरु आत्मा कदाचित् इसके साथ स्पर्श नहीं करता, जैसे मेघ आकाशके आश्रय आकाशविषे स्थित होता है, परंतु आकाश तिसके साथ स्पर्श नहीं करता तैसे आत्मा अस्पर्श है, अरु सर्वत्र पूर्ण है, परंतु पुर्यष्टकरूप हृदयविषे भासता है, जैसे सूर्यका प्रकाश सब ठौर व्यापक है, परंतु जलविषे प्रतिबिंब भासता है, पृथ्वी काष्ठविषे प्रतिबिंब नहीं भासता तैसे आत्माका देह इंद्रियों प्राणविषे प्रतिबिंब नहीं होता, हृदय पुर्यष्टकाविषे भासता है, सो आत्मा सर्व संकल्पते रहित है, सर्व संगते रहित स्वरूप तिसको ज्ञानवान् पुरुष उपदेशके निमित्त चैतन्य अविनाशी आत्मा ब्रह्मादिक संगीकरि कहते हैं; सो आकाशते भी सूक्ष्म निर्मल है, आकाश कलंकित है, आत्मा आभासकरिकै जगत्रूप हो भासता है, और जगत् कछु वस्तु नहीं जैसे जल द्रवताकरिकै तरंगरूप हो भासता है, परंतु तरंग कछु भिन्न वस्तु नहीं तैसे आत्माते व्यतिरेक जगत् नहीं, चैतन्यसत्ता चैत्यता फुरनेकरि जगत्रूप हो भासते हैं, परंतु जगत् कछु वस्तु नहीं, जो ज्ञानवान् पुरुष हैं, तिनको तौ

एक आत्माही भासता है, अरु अज्ञानीको नानाप्रकार जगत् भासता है, और जगत् कछु वस्तु नहीं, केवल आत्मसत्ता अपने आपविषे स्थितहै, अनुभव स्वभावकरिकै प्रकाशता है, सूर्य आदिक सर्वको प्रकाशनेहारा है, सर्व स्वादका स्वाद वही है, सर्व भाव तिसहीकरि सिद्ध होते, सो सत्ता उदय अस्तते रहित है, अरु चलने अचलनेते राहित है, सो न लेत है, न देत है, अपने आपविषे स्थित है, जैसे अग्निका समूह लाटारूप हो भासता है, जलका समूह तरंगरूप हो भासता है, तैसे आत्मसत्ता जगत्रूप हो भासती है,अपने संवेदन फुरनेकरि नाना प्रकारके संकल्पसों विपर्ययरूप देखता है. यह पदार्थ है यह मैं हौं, यह अपर है, इत्यादिकभावनाको प्राप्त होता है, जब अपने आपको जानता है, तव अज्ञानभ्रम नष्ट हो जाता है, जैसे वृक्षविषे बीजसत्ता है, सो परिणामकरि आकारके आश्रयसों बढती जाती है,तैसे आत्मसत्ताविषे चित्तसंवेदन फुरता है फुरनारूपी रसविपरिणामके आत्मसत्ताके आश्रय विस्तारको प्राप्त होता है, सो संकल्परूप है, तिसविषे जगत्की दृढता है, जैसे संवेदन फुरता है, तैसे स्थित होता है, तिसविषे नीति हुई है कि यह पदार्थ इसप्रकार होवै, सो तैसे स्थित है, अन्यथा नहीं होता. वसंतऋतुविषे रस अति विस्तारको पाता है,कार्तिकविषे धान्य उपजते हैं, हिमऋतुविषे जल पाषाणरूप हो जाता है, अग्नि उष्ण है; वर्फ शीतल है, इत्यादिक जेते पदार्थ रचे हैं, तैसेही महाप्रलयपर्यंत स्थित हैं, अन्यथाभावको नहीं प्राप्त होते. जगत्विषे चतुर्दश प्रकारके भूतजात हैं, तिनविषे जिनको आत्मज्ञान प्राप्त होता है, सो शांतिरूपआत्माको पायके आनंदमान होते हैं, अरु जिनको प्रमाद है, सो पडे भटकते हैं जन्ममरणको प्राप्त होते हैं, जैसे जैसे कर्म करते हैं, तैसी तैसी गतिको पाते हैं, आवागमनमें भटकते भटकते यमके मुखविषे जाय पडते हैं जैसे समुद्रविषे तरंग उपजिकरि लय हो जाते हैं, तैसे जन्मि जन्मि मर जाते हैं, उन्मत्तकीनाईं प्रमादी पड़े भ्रमते हैं ॥ इति श्रीयोग० स्थितिप्रकरणे चिदात्मरूपवर्णनं नाम षट्त्रिंशत्तमः सर्गः ॥ ३६ ॥ वसिष्ठ उवाच ॥ हे रामजी ! इसप्रकार जगत्की स्थिति है; सो सर्व चंचल आकार विपरिणामरूप है, जैसे समुद्रविषे तरंग चंचलरूप होते हैं, तैसे जगत्की गति चंचल है, आत्माते जगत् उपजता है, सो स्वतः होता है,

किसी कारणकरि नहीं होता पाछे कारणकार्यभाव हो जाता है, सोई चित्तविषे दृढ हो भासता है, आत्माविषे यह कोऊ नहीं, जैसे स्वाभाविक जलते तरंग उठिकारि लय हो जाते हैं, तैसे आत्माते स्वाभाविक जगत् उपजिके लय होते हैं, जैसे ग्रीष्मऋतुविषे तप्तकारि मरुस्थल जलकी नाईं स्पष्ट भासता है, अरु है कछु नहीं जैसे मदकारि मत्त पुरुष आपको और का और जानता कहता है, तैसे यह पुरुष आत्मरूप है, चित्तकारि आपको देवता मनुष्य आदिक शरीर जानते अरु कहते हैं ॥ हे रामजी! यह जगत् आत्माविषे न सत् है, न असत् है, जैसे स्वर्णविषे भूषण हैं, तैसे मूढ जीव आपको आकार मानते हैं, ताते तुम दृश्यको त्यागिकै द्रष्टाविषे स्थित होहु, जिसकरि शब्द, स्पर्श, रूप, रस, गंध, आदिक सर्वको जानता है, तिसको आत्मब्रह्म जान, जो सर्वविषे पूर्ण स्थित है, स्वच्छ निर्मल आत्मसत्ताविषे एक द्वैतकल्पना कछु नहीं जबलग आत्माते इतर कछु वस्तु भासती है, तबलग वासना तिसकी ओर धावती है, हे रामजी! आत्माते व्यतिरेक कछु सिद्ध नहीं होता जब ऐसे भासै तब किसकी वांछा करै, किसका अनुसंधान करै, अरु ग्रहण त्याग किसका करै ? आत्माको ईप्सित अनीप्सित इष्ट अनिष्ट आदिक विकार विकल्प कोई स्पर्श नहीं करते, कर्त्ता कारण कर्म तीनोंकी एकता है, न कोऊ आधार है न आधेय है, द्वैतकल्पनाका असंभव है, अहं त्वं आदिक कछु नहीं, केवल ब्रह्मसत्ता स्थित है, ऐसे जानि सर्वदा निर्द्वंद्व होइकारि सर्व संतापते रहित कार्यविषे प्रवर्तहोहु, पूर्व जो तुमने कछु किया अरु नहींकिया, तिस करने न करनेकारि तुमको क्या सिद्ध हुआ है, अरु क्या पद पाने योग्य पाया है, और भूतकी गिनतीविषे क्या बात है, तुम आपको हृदयविषे अकर्त्ता भावना करहु, अरु बाहिरते इंद्रियोंकारि जगत्के कार्य करहु, जब स्थिरतारूप समुद्रविषे तुम्हारी वृत्ति धैर्यवाली होवैगी, तब शांत आत्मा होवोगे, दृश्य जगत्विषे तो दूरते दूर भी गये, परन्तु अंतरते शांति नहीं होती, जहां जावै तहां भावै तैसा पदार्थ पानेका यत्न करै, तिसके पायेते भी शांति प्राप्त न होवैगी, सर्व दृश्य जगत्के पदार्थकरि त्यागकारि जो शेष अपना स्वरूप रहता है, चिदात्मा है, तिसविषे स्थित हुएते शांति प्राप्त होवैगी ॥ इति श्रीयो० स्थितिप्रकरणे शांत्युपदेशकरणं नाम सप्तत्रिंशत्तमः सर्गः ॥३७॥

वसिष्ठ उवाच ॥ हे रामजी ! इसप्रकार ज्ञानी पुरुष है, तिसविषे कर्तव्यभाव भी दृष्टि आता है, यज्ञादिक सर्व करता है, हिंसादिक तामसी कर्म भी दृष्ट आते हैं, तौ भी स्वरूपके ज्ञानकरि वह अकर्ताही है; कदाचित् कछु नहीं किया, अरु जो मूढ अज्ञानी हैं, सो जैसा कर्म करते हैं, तैसा फल भोगते हैं, कर्तव्य किसका नाम है,सो श्रवण करहु, मनविषे सत्य जानिके जिस पदार्थके ग्रहणकी इच्छा करता है, सो फुरना वासनारूप होता है, तिस सद्भाव फुरनेका नाम कर्तव्य है, तिस चेष्टाते फलकी प्राप्ति होती है, जिस पदार्थको सत् जानिकै वासना फुरती है, तिसका अनुभव होता है, शरीर करै अथवा न करै, जैसी वासना मनविषे दृढ़ होती है, शुभ अथवा अशुभ, तिसके अनुसार दृश्यको भासि आता है, शुभकरिकै स्वर्ग भासता है, अशुभकरिकै नरक भासता है, जिस पुरुषको आत्माका ज्ञान है, यद्यपि प्रत्यक्ष अकर्ता है, तौ भी अनेक कर्मके फलको अनुभव करते हैं, अरु जो ज्ञानवान् हैं, तिनके हृदयविषे पदार्थका सद्भाव अरु वासना दोनों नहीं, इसकारणते तिनविषे कर्तव्यका अभावहै यद्यपि करते हैं, तौ भी कर्तव्यके फलको नहीं प्राप्त होते; संसारको असत्य जानते हैं केवल शरीरके स्पंदमात्र उनका कर्म है,हृदयविषे बंधमान नहीं होते, पूर्वके प्रारब्धकरिकै सुख दुःख फल तिनको भी प्राप्त होता है, परंतु आत्माते भिन्न तिसको नहीं जानते, सर्व ब्रह्मही देखते हैं, अरु जो अज्ञानी है सो अवयवके स्पंदविषे आपको कर्त्ता मानता है, तिसके अनुसार सुखदुःख भोगता है, मोहको प्राप्त होता है, जिनका मन अनात्मभाव विषे मग्न है, वे अकर्त्ता हुए भी कर्त्ता होते हैं, मनतें रहित, केवल शरीरकरि किया है सो किया भी न किया है, ताते मन करता है, शरीर कछु नहीं करता, यह जगत् सब मनते उपजा है, अरु मनरूप है, मनहीकरि स्थित है, जिसका मन अमनभावको प्राप्त भया है, तिसको सर्व शांतिरूप है, जैसे तीक्ष्ण धूपकरि मृगतृष्णाकी नदी भासती है, जब वर्षा होती है, तब शांत हो जाती है, तैसे जब आत्मज्ञान होता है, तब यह जगत् सब शांत हो जाता है, संसारके सुख दुःख तिसको स्पर्श नहीं करते, न वह चंचल है, न सत्य है, न असत्य है; सर्व विकारते रहित शांतिरूप है संसारकी वासनाविषे नहीं डूबता, अज्ञानी है सो डूबता है, तिसका मन संसारभ्रमविषे

मग्न रहता है, सदा पड़ा पदार्थकी तृष्णा करता है, ज्ञानी नहीं करता ॥ हे रामजी ! और दृष्टांतकरिकै श्रवण कर कि, अज्ञानीको अकर्तव्यविषे कर्तव्य है, अरु ज्ञानीको कर्तव्यविषे अकर्तव्य है, जैसे एक पुरुष शय्याके ऊपर शयनकरि रहा है, अरु स्वप्नविषे गिरा दुःख पाता है, सो अकर्तव्यविषे कर्तव्य भया, अरु एक गर्तविषे गिरा है, अरु उसका मन समाधिविषे स्थित है, सो उसको सब शांतरूप है, सो कर्तव्यविषे अकर्तव्य भया; क्योंकि शय्यापर सोया था, तिसका मन चलता था तातें अकर्तव्यविषे उसको कर्तव्य भया, दुःखका अनुभव करने लगा; दूसरेको सुखका अनुभव भया; तातें यह निश्चय हुआ कि, जैसा मन होता है, तैसी सिद्धताको प्राप्त होता है, तुम भी असंसक्त होइकरि कर्म करौ, तब अकर्ताही रहोगे, जेता कछु जगत् भासता है, सो आत्मातें व्यतिरेक कछु नहीं, जिसको यह निश्चय होता है; तिस ज्ञानवान्‌को सुख दुःख स्पर्श नहीं करते, आधार, आधेय, द्रष्टा, दर्शन, दृश्य, इच्छा आत्मातें भिन्न कछु नहीं भासता, जब इसको ऐसे निश्चय होता है, कि मैं देह नहीं, सर्व पदार्थनतें व्यतिरेक बालके अग्रतें सौवाँ भाग सूक्ष्म हौं; अथवा जो कछु दृश्य जगत् है, सो सर्व मैंही हौं, सर्वतत्त्वका प्रकाशक हौं; सर्वव्यापी हौं; यह निश्चयकरि तिसको सुखदुःखका क्षोभ नहीं होता, विगतज्वर होइकरि स्थित होता है, यद्यपि दुःख संकट ज्ञानवान्‌को आय प्राप्त होता है, तौ भी उसको नहीं भासता, परमानंदकरि आनंदवान् लीलामात्र विचरता है, जैसे चंद्रमाकी चांदनी शीतल प्रकाशती है तैसे वह पुरुष शीतल प्रकाशवान् होता है, तिसको न चिंता होती है, न कोऊ दुःख होता है, शांतरूप कर्मको कर्त्ता भी अकर्ता है, मनकरि सदा अलेप रहता है ॥ हे रामजी ! हस्तपादादिक इंद्रियोंकरि कर्त्ताका नाम कर्म नहीं, मनके करनेका नाम कर्म है, मनही सर्व कर्मका कर्त्ता है, अहं त्वं सब भाव, सब लोकका बीज सर्वगत मन है, जब मन नाश होवै तब सब कर्म नष्ट हो जाता है, सब दुःख मिटि जाते हैं, जैसे बालक मनकरि नगर रचै, बहुरि लीनकरि लेवै तिसको उपजाने लीन करनेविषे हर्ष शोक कछु नहीं होता; तैसे परमार्थ दर्शीको किसी कर्मका लेप नहीं होता, कर्त्ता हुआ कछु नहीं करता, तिसविषे कर्तव्य भोक्तव्य सुखदुःख अज्ञान मोहकरिकै अध्यारोप

करते हैं, अरु कछु नहीं, ज्ञानवान्को बंध मोक्ष सुखदुःख कछु नहीं भासता, क्योंकि वह असंसक्त मन है, अरु जिसका मन आसक्त है, तिसको नाना दृश्य भासता है, ज्ञानवान्को केवल आत्मसत्ता भासती है, एक द्वैतकलनाते रहित हैं, जैसे जलते तरंग भिन्न नहीं होता, तैसे आत्माते जगत् भिन्न नहीं, न कोऊ बंध है, न कोऊ मोक्ष है, न कोऊ बँधने योग्य है, अज्ञान दृष्टिकरि दुःख है, बोध करिकै लीन हो जाते हैं, बंध अरु मोक्ष संकल्पकारि कल्पित मिथ्यारूप हैं, तुम इस मिथ्या कल्पना अनात्म अहंकारको त्याग आत्मविषे निश्चय करहु, धैर्य बुद्धिवान् होकरि प्रकृत आचारको करहु, तब स्पर्श कछु न करैगा ॥ इति श्रीयोगवासिष्ठे स्थिति प्रकरणे मोक्षोपदेशवर्णनं नाम अष्टत्रिंशत्तमः सर्गः ॥ ३८ ॥ ॥ राम उवाच ॥ हे भगवन् ! सत् चित् आनंद अद्वैत निर्विकार आदिक गुणकरि संपन्न जो ब्रह्मतत्त्व है, तिसविषे जो अविद्यामान जगत् अविद्या विचित्र कहांते आई है ? ॥ वसिष्ठ उवाच ॥ हे राजपुत्र ! यह संपूर्ण जगत् ब्रह्मस्वरूप है, ब्रह्मसत्ता सब शक्ति है, इसकारणते दृश्यरूप होइकरि स्थित भई है, सत्य असत्य एक अद्वैत आदिक विश्वरूप भासता है, सो स्वरूपते ऐसे है, जैसे जलविषे जल उल्लासरूप नानाप्रकारके तरंग बुद्बुदे आवर्त आकार हो भासता है, तौ भी जल एकरूप है तैसे चिद्घनविषे चिद्घन सब शक्ति सब रूप होकारि फुरता है, कहूं कर्मरूप, कहूं वाणीरूप, कहूं गूंगेरूप, कहूं मनरूप, कहूं भरण पोषण नाश कारण होता है, सब पदार्थका बीज उत्पत्तिकर्ता ब्रह्मसत्ता है, जैसे समुद्रते तरंग उपजिकरि तिसीविषे लय होते हैं, तैसे सब पदार्थ उपजिकरि ब्रह्मविषे लय होते हैं ॥ ॥ राम उवाच ॥ हे भगवन् ! यह तुम्हारे वचनका उच्चार प्रगट है, तौ भी कठिन अतिगंभीर है, इनका तोल नहीं पाया जाता, ताते अतोल हैं, इनका यथार्थभाव मैं पाय नहीं सकता, मनसंयुक्त षट् इंद्रियोंकी वृत्तिते रहित स्वरूप अरु सर्व पदार्थकी रचनाते रहित है, सो कहां अरु जगत् कहां जो पदार्थ जिसते उपजता है, सो वही रूप होता है, जैसे दीपकते उपजा दीपक होता है, मनुष्यते मनुष्य अरु अग्निते अग्नि होता है, इसप्रकार कारणते जो कार्य उपजता है, सो तिसीके सदृश होता है, तैसे जो निर्विकार आत्माते जगत् उपजा है, सो जगत् भी

निर्विकार चाहिए, सो तौ ऐसे नहीं, आत्मा निर्विकार शांतरूप है, अरु जगत् विकारी दुःखरूप है, तिसते कलंकरूप जगत् कैसे उपजा है ?॥ वाल्मीकि उवाच ॥ जब इसप्रकार रामजीने कहा तब ब्रह्मऋषि वसिष्ठजी बोलत भया ॥ वसिष्ठ उवाच ॥ हे रामजी ! यह सब जगत् ब्रह्मरूप है, नानाप्रकार मलिनरूप संसार भासता है; सो मलिनता नहीं, जैसे तरंगके समूह समुद्रविषे फुरते हैं, सो मलिनता धूलि नहीं, वही रूप है, तैसे आत्माविषे जगत् कछु कलंक नहीं, वहीरूप है, जैसे अग्निविषे उष्णता अग्निरूप है, तैसे आत्माविषे जगत् आत्मरूप है, इतर नहीं ॥ राम उवाच ॥ हे ब्रह्मन्! निर्दुःख निर्धर्मते जो जगत् दुःखरूप उपजा, सो यह कलंक है, यह जो तुम्हारे वचन हैं, सो आकाशरूप हैं, सो मेरे ताईं अस्पष्ट भासते हैं, मैं इनको जानि नहीं सकता ॥ वाल्मीकि उवाच ॥ हे पुत्र ! जब इसप्रकार रामजीने कहा, तब मुनिशार्दूल वसिष्ठजी विचारते भये कि, अभी इसकी बुद्धि परमप्रकाशको प्राप्त नहीं भई, कछुक निर्मलभावको प्राप्त भई है पदार्थ भूमिकाको जानता भया है अरु परमार्थ वेत्ता नहीं भया, जिसको परमार्थ बोध प्राप्त भया है, अरु मन शांत हुआ है, ऐसा जो ज्ञातज्ञेय पुरुष है सो मोक्ष उपायकी वाणीके पारको प्राप्त होता है, संसाररूपी अविद्यामल उसको नहीं भासता, केवल अद्वैतसत्ता भासती है, जबलग और उपदेश रामजीको न करौं, तबलग इसको विश्रामही नहीं होवैगा, जो अर्धप्रबुद्ध है, तिसको सब ब्रह्म कहना नहीं शोभता. काहेते कि, चित्त उसका भोगते सर्वथा व्यतिरेक नहीं भया, सर्व ब्रह्मके वचन सुनिकै भोगविषे आसक्त होवैगा, सो नाशका कारण है, तिसकरि नाश होवैगा, अरु जिसको परमदृष्टि प्राप्त हुई है, तिसको भोगकी इच्छा नहीं उपजती, ताते सर्व ब्रह्मका कहना रामजीको सिद्धांत कालविषे शोभैगा, प्रथम गुरुको शिष्यप्राति सर्व ब्रह्म कहना नहीं बनता, प्रथम शम दम आदिक गुणकरि शिष्यको शुद्ध करै, पाछे सर्व ब्रह्म शुद्ध तू है, ऐसे उपदेश करै, तिसकरि जाग उठता है, अरु जो अज्ञानी अर्धप्रबुद्ध है, तिसको ऐसे कहना कि, जो सर्व ब्रह्म तू है, सो ऐसा उपदेश करनेवाला गुरु उसको महानरकविषे जोडता है, जो प्रबुद्ध है तिसकी भोगकी इच्छा क्षीण होजाती है वह निष्काम पुरुष है, तिसको अवि

द्यारूपी मल नहीं रहता, तिसको कहना नहीं वनता है, इसप्रकार विचारिकरि अज्ञानरूपी तमके नाशकर्त्ता ज्ञानके सूर्य मुनि वसिष्ठजी भगवान् रामजीके प्रति कहत भये ॥ वसिष्ठ उवाच ॥ हे राघव ! कलनारूप कलंक ब्रह्मविषे है अरु नहीं, यह मैं तुझको सिद्धांतकालविषे कहौंगा, अथवा तू आपही जानैगा, ब्रह्मसत्ता सब शक्तिरूप सर्वव्यापक सर्वगत है, सब तिसीकरि रचे हैं, जैसे इंद्रजाली विचित्र शक्तिकरि अनेक रूप रचता है, सत्यको असत्य अरु असत्यको सत्य करि दिखावता है, तैसे आत्मा मायावी परमइंद्रजाली अघटनघटना है. अर्थ यह कि, जो न वनैं तिसको बनावै, यह तिसकी शक्ति है, जो पहाड़को गढेला करती है, अरु वल्लीविषे पाषाण लगते हैं, पाषाणविषे वल्ली लगती है, वनकी पृथ्वीको आकाश करती है, आकाशको पृथ्वी करती है अरु वृक्षवल्लीमें पाषाण लगते हैं, अरु आकाशविषे वन लगते हैं, जैसे गंधर्वनगर आकाशमें भासता है, अरु वनको आकाश करती है, जैसे पुरुषकी छाया आकाश हो जाती है, आकाशको पृथ्वीभाव प्राप्त करती है, जैसे रत्नकी कंदरा पृथ्वीपर होवै, तिसविषे आकाशका प्रतिबिंब पड़ता है ॥ हे रामजी ! यह विचित्ररूप दृश्य तुझको कहा है, सो शुद्ध व्यक्त तत्त्व अचैत्य चिन्मात्रविषे जो चेतन ताका लक्षण जानना है, तिसकरि रची है सो कैसी रची है, वही चित्तसंवेदन फुरनेकरि जगतरूप हो भासता है, तातें सबप्रकार सवरूप वही है, जो एकरूप अविद्यमान है, हर्ष, शोक, आश्चर्य किसकी नाईं किसका मानिये, यह अन्यथा कोऊ नहीं, सब एक रूप है, इसी कारणते हमको समताभाव रहता है, हर्ष, शोक, आश्चर्य, मोह हमको नहीं प्राप्त होता, ममता अरु चपलता आदिक विकार कोई नहीं होता, कदाचित् हम जानतेही नहीं, देश काल वस्तु यह जगत् अवसानको प्राप्त हो भासते हैं, तिनका विपर्यय होना भी भासता है, अरु वह अपने स्वभावविषे स्थित हैं, काहेते कि यह दृश्य उनको अपने स्वरूपका आभास फुरता भासता है, जेता कछु दृश्य प्रपंच है, सो सत्य चित्तसंवित्की स्पंदकलाकरिकै फुरता है, नानाप्रकार देश, काल, क्रिया द्रव्य होकरि भासते हैं, तिसको आत्मसत्ता किसी यत्नकरि नहीं रचती, स्वाभाविक फुरनेकरि पड़े फुरते हैं, जैसे समुद्र तरंगको यत्नकरि नहीं

उपजाता, अरु लीन करता, स्वाभाविक चमत्कार फुरता अरु लीन होता है, तैसे आत्माविषे स्वाभाविक सृष्टि फुरती हैं, अरु लय होती हैं, जैसे समुद्र अरु तरंगाविषे कछु भेद नहीं, तैसे आत्मा अरु जगत्‌विषे कछु भेद नहीं वहीरूप है, जैसे दूध घृतरूप है, जैसे घट पृथ्वीरूप है, जैसे पट तंतुरूप होता है, तैसे जगत् आत्मरूप है, जैसे वट धान्य वृक्षरूप हो भासता है, जैसे समुद्र तरंगरूप हो भासता है, तैसे आत्मा जगत्‌रूप हो भासता है ॥ हे रामजी ! इस दृष्टांतका एक अंग लेना है, कारणकार्यभावको लेना नहीं, आत्माविषे न कोऊ कर्ता है, न कोऊ भोक्ता है, न कोऊ विनाशको प्राप्त होता है, केवल आत्मतत्त्व साक्षी निरामय अद्भुत अपने आप स्वभावसत्ताविषे स्थित है, यह जगत् आत्माका प्रकाश है, जैसे दीपकका प्रकाश स्वभाव है, सूर्यका प्रकाश स्वभाव है, पुष्पका सुगंध स्वभाव है, तैसे आत्माका स्वभाव जगत् है, किसी कारणकार्यकरि नहीं भया, जगत् आत्माका स्वभाव आभासरूप है, आत्माते इतर कछु नहीं हुआ, जैसे पवनका स्वभाव स्पंदरूप है, सो जब निस्पंद होता है, तब नहीं भासता, अरु स्पंदकरि भासता है; तैसे आत्माविषे संवेदन फुरता है तब जगत् हो भासता है, जब लय होता है, तब जगत् नहीं भासता, अरु जगत् कछु है नहीं, न सत् है न असत् है, कहूं जगत् प्रगट भासता है, कहूं अप्रगट भासता है, अरु नानाप्रकारका विचित्ररूप भासता है, जैसे वनविषे पुष्पका रस होता है, तिनके उपजने अरु नष्ट होनेकरि न वन उपजता है, न नष्ट हो जाता है तैसे आत्मसत्ता जगत्‌के उपजने अरु नष्ट होनेते रहित है, अरु वास्तवते उपजा कछु नहीं, ताते आत्माही अपने आपविषे स्थित है, असम्यक् ज्ञानकरि जगत् भासता है, अनंत शाखाकरि पसर रहा है, इसको ज्ञानरूपी कुठारसे काटौ, तब सुखी होवो, जगत्‌रूपी वृक्ष है, असम्यक् ज्ञान इसका बीज है, शुभ अशुभरूपी फूल हैं, आशारूपी वल्लीकरि वेष्टित है, दुःखरूपी शाखा हैं, अरु भोगजरारूपी फल हैं, तृष्णारूपी लताकरि धूसर भासते हैं, ऐसा जो संसाररूपी वृक्ष है तिसको आत्मविवेकरूपी कुठारसे यत्नकरिकै

काटके मुक्त होहु। जैसे गजपति अपने बलसों बंधन तोड़िकारि सुखचैन विचरता है, तैसे तुम निर्बंध होइकारि विचरो ॥ इति श्रीयोगवासिष्ठे स्थितिप्रकरणे सर्वैकताप्रतिपादनं नाम एकोनचत्वारिंशत्तमः सर्गः ॥ ३९ ॥ ॥ राम उवाच ॥ हे भगवन्! यह ये जो जीव हैं, सो ब्रह्मते कैसे उत्पन्न हुए हैं, अरु केतेक हुए हैं, सो मुझको विस्तारकरिकै कहौ ॥ वसिष्ठ उवाच ॥ हे महाबाहो! जैसे ये विचित्रताते उपजते हैं, अरु नाश होते हैं, बढते हैं, अरु स्थित होते हैं, सो क्रम सुनो ॥ हे निष्पाप राम! शुद्ध जो ब्रह्मतत्त्व है, तिसकी जो वृत्ति चेतनशक्ति है, सो निर्मल है, जब वह स्फुरणरूप होती है, तब कलनारूप घनभावको प्राप्त होती है, तब संकल्परूपको धारती है, बहुरि तन्मय होइकारि मनरूप होती है, सो मन संकल्पमात्र करिकै जगत्को रचता है, विस्तारभावको प्राप्त करता है, जैसे गंधर्वनगर विस्तारको प्राप्त होता है, तैसे मनकारि जगत् विस्तार होता है, अरु ब्रह्मदृष्टिको त्यागिके रचता है, सो सब आत्मसत्ताका चमत्कार है, बना कछु नहीं, हमको तौ सब आकाशरूप भासता है, दूरदर्शीको जगत् भासता है, जैसे चित्तसंवित्विषे संकल्प फुरता है, तैसा रूप होता है, प्रथम ब्रह्माका संकल्प फुरा है, सो चित्तसंवित् आपको ब्रह्मारूप देखता भया, ब्रह्मारूप होइकारि जगत्को कल्पता भया, तब प्रजापति होइकारि चतुर्दश प्रकारके भूतजात उत्पन्न किये, वस्तुते सब ज्ञप्तिरूप हैं, तिसके फुरनेकारि जगत् भासता है सो चित्तमात्र शून्य आकाशरूप है, और वस्तुते शरीर कछु नहीं, संकल्पमात्र नगरवत् भ्रांतिकरिकै भासते हैं, तिस भ्रांतिरूप जगत्विषे जो जीव भये हैं, कोऊ मोहकारि संयुक्त हैं, कोऊ अज्ञानी हैं, कोऊ मध्यस्थित हैं, कोऊ ज्ञानी उपदेष्टा हैं, जेते कछु भूतजात हैं, सो सब आधि व्याधि दुःखकारि दीन हुए हैं, तिनविषे ज्ञानवान् सात्त्विक सात्त्विकी हैं, अरु राजसी सात्त्विकी हैं जो शांतात्मा पुरुष है तिसको संसारके दुःख कदाचित् स्पर्श नहीं करते, वह सदा ब्रह्मविषे स्थित है ॥ हे रामजी! यह मैं तुझको, भूतजात कहे हैं, सो ब्रह्म शांत अमृतरूप सर्वव्यापी, निरामय चैतन्यस्वरूप अनंत आत्मा आधि व्याधि दुःखते रहित निर्भ्रम है, तिसके किसी एकदेशविषे जगत् स्थित है, जैसे अनंत सोम्यजलके किसी स्थानविषे तरंग फुरते हैं,

तैसे परब्रह्मसत्ताके किसी स्थानविषे जगत् प्रपंच फुरता है ॥ राम उवाच ॥ हे भगवन् ! ब्रह्मतत्त्व तौ अनंत निराकार निरवयवरूप है, तिसका एक अंश एक स्थान कैसे हुआ, निरवयवविषे अवयवक्रम कैसे होता है ॥ वसिष्ठ उवाच ॥ हे रामजी ! तिसकारिकै उपजे हैं, अथवा तिसते उपजे हैं, यह जो कारण अरु उपादान है, सो भ्रांतिमात्र है, यह शास्त्ररचना व्यवहारके निमित्त कही है परमार्थते कछु नहीं, अवयवकारि जो देशादिक कल्पना है, सो क्रमते नहीं उपजी, उदय अरु अस्तपर्यंत दृष्टिमात्र भी होती है अरु कल्पनामात्र है, सो कल्पना भी आत्मरूप है, आत्माते रहित कल्पना भी कछु वस्तु नहीं, न हुई है, न कछु होवैगी, तिस विषे जो शब्द अर्थ आदिक युक्ति हैं, सो व्यवहारके निमित्त हैं, परमार्थते कछु नहीं. शब्द अर्थमात्र जगत्कलना है, सो तिस कारि उपजा है, अरु तिसते उपजा है, यह द्वितीयकल्पना भी नहीं, तन्मयरूप है, शांतरूप आत्माही है, और कछु नहीं, जैसे अग्नेिते अग्निकी लाटा फुरती हैं, सो अग्निरूप हैं, अरु तिसते उपजी सो तिसकारि उपजी यह कल्पना अग्निविषे कोऊ नहीं, अग्निही अग्नि है, तैसे जन्य अरु जनक जो हैं, कार्य अरु कारण भेद सो आत्माविषे कोऊ नहीं, कार्यकारणभाव कल्पनामात्र है, जहां अधिकता अरु ऊनता होती है, तहां कारणकार्यभाव होता है कि, यह अधिक कारण है, ऊन कार्य है, भिन्न भिन्न कारण कार्य शब्द बनता भी है, जहां भेद होता है, तहां भेदकल्पना भी होवै, तहां एक अद्वैतविषे शब्द कैसे होवै, अरु शब्दका अर्थ कैसे होवै, जैसे अग्नि अरु अग्निकी शिखाविषे भेद नहीं, तैसे कारणकार्यभाव आत्माविषे कोऊ नहीं, शब्द अर्थ कल्पनामात्र हैं, जहां प्रतियोगी व्यवच्छेद संख्या भ्रम होता है, तहां द्वैत नानात्व होता है, अर्थ यह जैसे चेतनका प्रतियोगी जड़ अरु जड़का प्रतियोगी चेतन है, अरु व्यवच्छेद कहिये परिच्छिन्न, जैसे घटविषे आकाश होता है, संख्या कहिये जीव ईश्वर ये शब्द अर्थ द्वैतकल्पनाविषे होते हैं, जहा एक अद्वैत आत्माही है, तहां शब्द अर्थ कोऊ नहीं, जैसे समुद्रविषे तरंग बुद्बुदे सबही जलते हैं, जलते इतर कछु नहीं तैसे शब्द अरु अर्थकल्पना ब्रह्म है, जो बोधवान् पुरुष हैं, तिनको सब ब्रह्मही भासता है, चित्त भी ब्रह्म है, मन भी ब्रह्म है, ज्ञान शब्द

अर्थ ब्रह्मही है, ब्रह्मते इतर कछु नहीं, तिसविषे जो इतर भासता है, सो मिथ्या ज्ञानका विकल्प है, जैसे अग्नि अरु अग्निकी लाटाकी कल्पना भ्रांतिमात्र हैं, तैसे आत्माविषे जगतकी भिन्न कल्पना असत्‌रूप हैं, जो ज्ञानते रहित हैं, तिनको दृष्टिदोषकरि सत्य हो भासता है, ताते सर्व ब्रह्म है, ब्रह्मते इतर कछु नहीं, निश्चयकरि परमार्थ ब्रह्मते सब ब्रह्मही है, सिद्धांत कालविषे तुझको यही दृष्टि उपजैगी, यह जो सिद्धांतपिंजर मैंने तुझको कहा है, तिसके ऊपर उदाहरण कहौंगा; कि यह क्रम अविद्याका कछु भी नहीं, अज्ञानके नाश भएते अत्यंत असत् जानैगा, जैसे तमकरिकै जेवरीविषे सर्प भासता है, जब प्रकाश उदय होता है तब ज्योंका त्यों भासता है, सर्पभ्रम नष्ट हो जाता है, तैसे अज्ञानदृष्टिकरि जगत् भासता है, जब शुद्ध विचारकरि भ्रांति नष्ट होवैगी, तब निर्मल प्रकाशसत्ता तुझको भासैगी, इसविषे संशय नहीं, यह निश्चितार्थ है ॥ ॥ इति श्रीयोगवासिष्ठे स्थितिप्रकरणे ब्रह्मप्रतिपादनं नाम चत्वारिंशत्तमः सर्गः ॥ ४० ॥ ॥ राम उवाच ॥ हे भगवन् ! यह जो तुम्हारे वचन हैं, सो क्षीरसमुद्रके तरंगवत् उज्ज्वल हैं, तीन तापके नाशकर्ता हृदयके मल दूर करनेको निर्मलरूप हैं, अरु अज्ञानरूपी तमके नाशकर्ता प्रकाशरूप हैं, अरु गंभीर हैं तिनका तोल मैं पाय नहीं सकता. एक क्षणविषे संशयकरि अंधकारको प्राप्त होता हौं; अरु एक क्षणविषे निःसंशयरूप प्रकाशको प्राप्त होता हौं जैसे चपलरूप मेघकरि सूर्यका प्रकाश कबहूं भासता है कबहूं आच्छादित होजाता है ताते मेरा संशय दूर करहु किजो आत्मानंदसत्ता अप्रमेयरूप है और सब वही प्रकाशरूप है असत्यभावते रहित साररूप है, तौ तिस अद्वैत तत्त्वविषे कल्पना कहांते आई ?॥ वसिष्ठ उवाच ॥ हे रामजी ! जो कछु मैंने तुमको कहा है, सो मेरे वचन यथार्थ हैं, जैसे कहा है तैसेही हैं, अरु असमर्थरूप वचन भी नहीं जिसके हृदयविषे ठहरैं तिसको आत्मपदविषे प्राप्त करैं अरु विरूप भी नहीं इसका रूप फल प्रगट है, जिनके धारेते सब दुःख संसारके मिटि जाते हैं, अरु पूर्वापर विरोध भी नहीं जो प्रथम कछु और कहा, पाछे और कहा जो कछु कहा है सो यथार्थ कहा है, परंतु ज्ञानदृष्टिकरिकै जब तेरा हृदय निर्मल होवैगा, विस्तृत बोधसत्ता हृदयविषे प्रकाशैगी, तब तू मेरे वचनके तात्पर्यको

हृदयविषे जानैगा अरु जो तुझको उपदेश करता हौं सो वाच्यवाचक शास्त्रके संबंध तेरे जतावनेनिमित्त करता हौं जब इन युक्त वचनकरि तू जागैगा, तब तुझे अद्वैतसत्ता निर्मल भासैगी, और जो कछु वाच्यवाचक शब्द अर्थरचना है, तिसको त्याग करैगा ज्ञानवान्‌को सदा परमार्थ अद्वैतसत्ता भासती है, इच्छादिक कल्पना कछु आत्माविषे नहीं पाईजाती, आत्मा निर्दुःख निर्द्वंद्व है, सोई जगत्‌रूप होइकारि स्थित भया है, इसप्रकार मैं तुझको विचित्रयुक्तिकारि कहौंगा, जबलग सिद्धांत उपदेशका आकाश है तबलग आत्मसत्ता नहीं प्रकाशती जब आत्मबोध होवैगा तब आपही जानैगा अज्ञानरूपी तम है सो वाक्‌विस्तारविना शांत नहीं होता इसप्रकार मैं तुझको अनेक युक्तिकारि कहौंगा, तबलग सिद्धांत उपदेशका अवकाश है. हे रामजी ! शुद्ध जो आत्मसत्ता है, तिसके आश्रय संवेदनाभास फुरता है, तिसीका नाम अविद्या है, सो दो रूप रखती है, एक उत्तम और एक मलिन है जो स्पंदकला अपने अविद्या नाशनिमित्त प्रवर्तती है, सो उत्तम है, विद्याभी तिसीका नाम है, सब दुःखको नाश करती है, अरु जो संसारकी ओर फुरती है, सो अविद्या है, अर्थ यह जो आत्माकी ओर फुरती है, सो विद्या है, अरु जो दृश्यकी ओर फुरती है सो अविद्या है, सो दोनों स्पंदरूप हैं, ताते अविद्याकारि अविद्याका नाश करौ, जैसे ब्रह्मास्त्रकारि ब्रह्मास्त्र शांत करता है, जैसे मैलको कलर मैल दूर करता है, जैसे विषको विष नाश करता है, जैसे शत्रुको शत्रु मारता है, तैसे अविद्याकारि अविद्या नाश होती है, जो ऐसे हुआ तौ तुम इसको नाश करौ तब सुखदायक होवैगा, विचारकारि इसका नाश होता है, तब जानी नहीं जाती कि, कहां गई, जैसे दीपकसे अंधकार देखिये तौ नहीं जानाजाता, कि कहां गया; बड़ा आश्चर्य है, जो जीवका ज्ञान इसने आच्छादि लिया है, सदा अनुभव आत्मसत्ता उदयरूप है, सो जीवको नहीं भासती; जबलग अविद्याको नहीं जानता, तबलग फुरती है, जब जानगया तब नहीं जानता, कि कहां गई; भ्रममात्र सिद्ध है, बड़ा आश्चर्य है, जो मायाने संसारको बांधा है, सत्यकी नाईं प्राप्त भई है, अरु असत्य है, बुद्धिवान्‌को भी इसने नाशकारि छोडा है, तौ इतर जीवको क्या कहना है, निरंतर अभेदरूप आत्मा है; तिसविषे अविद्याकी भेदक

ल्पना कोऊ नहीं, जिस पुरुषने संसारमायाको ज्योंका त्यों जाना है, सो पुरुषोत्तम है, जिसको यह भावना हुई है, कि अविद्या परमार्थते कछु नहीं, असत्यरूप है, सो ज्ञानवान् है, जो कछु जानने योग्य है, सो तिसने जाना है, इसविषे संशय नहीं. जबलग तू स्वरूपविषे जागा नहीं, तबलग मेरे वचनविषे आसक्तबुद्धि कर, अरु बड़े निश्चयको धार, कि अविद्या नाशरूप है, अरु है नहीं, जेता कछु जगत् दृश्य भासता है, सो मनका मन असतरूप है, जिसको यह निश्चय हुआ, सो पुरुष मोक्षभागी है, यह जो मनका फुरनारूप जगत् दृश्यभावको प्राप्त हुआ है, सो सब ब्रह्मरूप है, जिसके अंतर यह निश्चय स्थित है, सो पुरुष मोक्षभागी है, अरु जिसको चराचर जगत्विषे दृढ भावना है, सो बंधभागी है, जैसे पक्षी जालविषे बंधायमान होता है ॥ हे रामजी ! संपूर्ण जीव इस संसारकी सत्यदृष्टिकारि बांधे हुए हैं, सब जगत् स्वप्नभ्रांतिरूप है, तिसविषे जिसको असत बुद्धि है, अथवा सत् ब्रह्मबुद्धि है, सो आसक्त होकरि संसारदुःखविषे नहीं डूबता, अरु जिसको अनात्मधर्म देहादिकविषे भावना है, स्वरूपविषे आत्मबोध नहीं, सो हर्ष शोक आपदाको प्राप्त होता है, अरु जिसको स्वरूपविषे स्वरूपबोध है, अरु अनात्मधर्मका त्याग है, तिसको संसार अविद्या नहीं रहती, दुःखविकार स्पर्श नहीं कर सकता, जैसे जलविषे धूप नहीं उड़ती, तैसे तिस महात्मा पुरुषके चित्तविषे दुःख उदय नहीं होते; ज्ञानवान् पुरुषके हृदयविषे जगत्के शब्द अर्थका रंग नहीं चढ़ता; जैसे तंतुविना पट नहीं होता, पट तंतुही रूप है, तैसे आत्माविना जगत् नहीं होता, जगत् आत्मारूप है, ऐसे जानिकै जो व्यवहारविषे वर्त्तता है, सो पुरुष मानसिक दुःखको नहीं प्राप्त होता, अरु जो अविद्याकरि संसारविषे पड़ा भटकता है, सो आत्मतत्त्वको पाय नहीं सकता, विद्यमान भी तिसको नहीं भासता, सो आत्मज्ञानकरि अविद्याका नाश होता है, जिसको आत्मज्ञान हुआ, सो अविद्यारूपी नदीको तरजाता है, आत्मसत्ताके प्राप्त हुएते अविद्या क्षीण हो जाती है, जिनको अविद्यारूप संसारके पदार्थकी इच्छा उदय होती है, सो अविद्यारूपी नदीविषे वह जाते हैं ॥ हे रामजी ! यह अविद्या बड़े मोहभ्रमको देती है, दृढ होयकरि स्थित हुई है, अरु तत्पदको आच्छादि लिया है, ताते तुम

यह न विचारौ कि अविद्या कहांते उपजी है, अरु कौन इसका कारण है, इत्यादिक विचारभ्रम मत करहु. यही विचारौ कि यह नाश कैसे होती है, इसके क्षयका उद्यम करौ, जब नष्ट होवैगी, तब इसकी उत्पत्ति भी जानि लेवैगा, कि इसप्रकार उपजी है, अरु यह स्वरूप इसका है, अरु यह कारण, यह कार्य है ॥ हे रामजी ! अविद्या वस्तुते कछु है नहीं, अविचारसिद्ध है, विचारदृष्टिते नष्ट हो जाती है, तब जानी नहीं जाती कि कहां गई, जब स्वरूप विस्मरण होता है, तब उपजकारि दृढ होती है, बहुरि दुःखको देती है, ताते बलकरि इसका नाश करहु, बड़े बड़े शूरमें भी हुए हैं, तिनको अविद्याने व्याकुल किया है,ऐसा बुद्धिमान् कोऊ नहीं जिसको अविद्याने व्याकुल नहीं किया, अविद्या सर्व रोगका मूल है, यत्नकरिकै इसका औषध करहु, जिसकारि जन्म दुःख कुहिड न प्राप्त होवै, जेती कछु आपदा हैं, तिनकी यह अधिष्ठाता सखी है, अज्ञानरूपी वृक्षकी बल्ली है, अनर्थरूपी अर्थकी जननी है, ऐसी अविद्यारूपी मलिनताको दूर करहु, मोह भय आपदा दुःखको देनेहारी है, हृदयविषे मोह उपजायकरि जीवको व्याकुल करती है, अज्ञान चेष्टाकरि वृद्ध होती है, जब अविद्यारूपी संसारसमुद्रते पार होवैगा, तब शांति प्राप्त होवैगी ॥ इति श्रीयोगवासिष्ठे स्थितिप्रकरणे अविद्याकथनं नाम एकचत्वारिंशत्तमः सर्गः ॥ ४१ ॥ ॥ वसिष्ठ उवाच ॥ हे रामजी ! अविद्यारूपी रोगको काटिकारि शांतरूप स्थित होते हैं, अरु विचाररूपी नेत्रते देखते हैं, तब यह नष्ट हो जाती है, सो इस विस्तृत व्याधिकी औषध सुन, जीवजातका विस्तार मैं तुझको कहता हौं, सात्विक राजस आदिक मनकी वृत्ति विचारने अर्थ मैं प्रवर्ताया था, सो अब सुन, जो तत्त्व अमृत ब्रह्मस्वरूप है, सो सर्वव्यापी निरामय चैतन्यप्रकाश अनंत है, आदिअंतते रहित निर्भ्रम चेतन प्रकाश तिसका वपु है, जब वह चेतन प्रकाश स्पंदरूप हो फुरता है, तब दीपकवत् तेज प्रकाश चेतनरूप चित्तकला जगत्को चेतने लगती है, तब जगत् फुरता है, जैसे सोमजल समुद्रविषे द्रवताकरि तरंग फुरता है, सो जलते इतर कछु नहीं, तैसे सर्वात्माते इतर कलाका रूप कछु नहीं, यह स्पंदरूप भी अभेद है, जैसे आकाशविषे आकाश स्थित है, तैसे आत्माविषे चित्तशक्ति है, जैसे नदीविषे वायुके संयोगते

तरंग उठते हैं, तैसे आत्माविषे चित्तकला सों दृश्य जगत् होता है, ऐसे भी नहीं आत्मा अद्वैत है, स्वतः तिसाविषे चित्तकला हो आती है, जैसे वायुविषे स्वाभाविक स्पंद होता है, स्पंदनिस्पंद दोनों वायुके रूप हैं, जब स्पंद होता है, तब भासता है, निस्पंद होता है, तब अलक्ष हो जाता है, तैसे जब चित्तकला फुरती है, तब लक्षमें आती है; निस्पंद होतेही अलक्ष होती है, शब्दकी गम नहीं होती, निस्पंदकरिकै जगत्भावको प्राप्त होती है, जैसे समुद्रविषे तरंगचक्र फुरते हैं, तैसे चेतनाविषे चित्तकला फुरती है, जैसे आकाशविषे मुक्तामाला भासती है, सो है नहीं, तैसे आत्माविषे वस्तुते नहीं है स्पंदभावकरि कछु भूषितदूषित हो भासती है, आत्माते भिन्न कछु नहीं, परंतु भिन्नकी नाईं भासती है, जैसे प्रकाशकी लक्ष्मी कोटि रवि जैसी स्थित होती है, तैसे आत्माविषे चित्तशक्ति है, देश, काल, क्रिया द्रव्यको जैसे जैसे चेतती है, तैसे तैसे हो भासती है, आगे नामसंज्ञा होती है, अपने स्वरूपको विस्मरणकरि दृश्यकेसाथ तन्मय होती है, तौ भी स्वरूपते व्यतिरेक नहीं होती, परंतु व्यतिरेककी नाईं भावना होती है, जैसे समुद्रते तरंग भिन्न नहीं, और सुवर्णते भूषण भिन्न नहीं, तैसे आत्माते चित्तशक्ति भिन्न नहीं; परंतु अपने अनंत स्वभावको विस्मरणकरि देश, काल, क्रिया द्रव्यके भेद मानती है, संकल्पके धारणेकरि कलनाभावको प्राप्त होती है, विकल्पकलनाकरि चित्तशक्ति क्षेत्रज्ञरूप होती है, शरीरका नाम क्षेत्र होता है, शरीरको अंतर्बाहिर जाननेकरि क्षेत्रज्ञ नाम होता है, सो क्षेत्रज्ञ चित्तकला अहंभावकी वासना करती है, तिस अहंकारकरि आत्माते इतर रूप धरती है, बहुरि अहंकारविषे निश्चय कलना होती है, तिसका नाम बुद्धि होता है, अहंभावसों जब निश्चय संकलपकलना होती है, तिसका नाम मन होता है, वही चित्तकला मनभावको प्राप्त होती है; जब मनविषे घन विकल्प उठते हैं, तब शब्द, स्पर्श, रूप, रस, गंधकी भावनाकरि इंद्रियां फुरि आती हैं, बहुरि हस्त पाद प्राणसंयुक्त देह भासि आता है, इसप्रकार जगत्विषे देहको पायकरि जीव जन्ममृत्युको प्राप्त होता है, वासनाविषे बांधा हुआ दुःखके समूहको पाता है, कर्मकरि चित्तविषे दीन रहता है, जैसे कर्म करताहै, तैसे आकारको धरताहै, जैसे समय पायके फल परिपक्वताको

प्राप्त होता है, तैसे स्वरूपके प्रमादकरि जीव दृश्यभावको प्राप्त होता है, आपको कारण कार्य मानिके अहंभावको प्राप्त होता है, निश्चय वृत्तिकरि बुद्धिभावको प्राप्त होता है, संकल्पसंयुक्त मनभावको प्राप्त होता है, सो मन देह इंद्रियरूप होइकरि स्थित होता है, अपना अनंतरूप भूलि जाताहै, परिच्छिन्नभावको ग्रहण करिकै प्रतियोग व्यवच्छेदभाव भासता है, तव इच्छामोहादिक शक्तिको प्राप्त होता है, जैसे मदकरि माते बैलको गौ आनि मिलती हैं, तैसे सब आपदा दुःख इसको आय प्राप्त होते हैं, जैसे समुद्रविषे नदियां आय प्रवेश करती हैं, इसीप्रकार अहंकार अपनी रचनाकरि आपही बंधामान होता है, जैसे घुराण अपने स्थानको रचि करि आपही बंधमान होती है. बड़ा खेद है कि, आपही संकल्पकरि दृश्यको रचता है, बहुरि तिसी देहविषे आस्था करता है, ताते आपही दुःखी होता है, अंतरते तपता रहता है, आपको बंधायमानकरि संसारजंगलविषे अविद्यारूप आकाशको ले फिरता है, अपने संकल्पकलनाकरि तन्मात्रा देह हुई है, तिसविषे अहंप्रतीति होती है, जैसे जलविषे तरंग होते हैं, तैसे देहादिक उदय हुए हैं, तिनकेसाथ बांधा हुआ दुःख पाता है, जैसे सिंह संकलकरि बांधा जावै, तैसे बांधा है, एक स्वरूप है, सोई फुरनेके वशते नाना भावको प्राप्त हुआ है, कहूं मन, कहूं बुद्धि, कहू अहंकार, कहूं ज्ञान, कहूं क्रिया, कहूं पुर्यष्टक, कहूं प्रकृति, कहूं माया, कहूं कर्म, कहूं विद्या, कहूं अविद्या, कहूं इच्छा कहाती है ॥ हे रामजी ! इसप्रकार जीव अपने चित्तकरि भ्रमको प्राप्त हुआ है, तृष्णारूपी शोक रोगकरि दुःख पाता है, तुम यत्नकरिकै इसको तरौ, जरामरण आदिक जो विकार हैं, अरु संसारकी भावना इसको नष्ट करती हैं; यह भला है, ग्रहण करिये, यह बुरा त्याग करने योग्य है, तिसकरि ग्रसा अविद्याके रंगसाथ रंजित भया है, इच्छा करनेसों इसका रूप सकुच गया है, [illegible] अंकुरसों संसाररूपी वृक्ष बढ़िगया है, अपना वास्तव स्वरूप विस्मरण हुआ है, कलनाकरि आपको मलिन जानता भया है, अ[illegible]ाके संयोगकरि नरकको भोगता है, संसारभावनारूपी पर्वतके नीचे दबिगया है, आत्मपदकी ओर उठनेको समर्थ नहीं होता, संस[illegible]रूपी विषका वृक्ष जरामरणरूपी शाखाकरि बढ़िगया है, आशारूपी फांसीकेसाथ बांधे

हुए जीव पड़े भटकते हैं, ति[illegible]करि [illegible]कारूपी अग्निविषे जलते हैं, क्रोधरूपी सर्पने जीवका चर्वण किया है, अपनी वास्तवता इसको
विस्मरण हो गई है, जैसे [illegible] यूथसमूहते भूला शोककरि दुःखी होता है, जैसे पतंग दीपककी शिखामें जल मरता है, जैसे
मूलते काटा कमल विरूप [illegible] है, तैसे आशाकरि क्षुद्र हुआ मूर्ख बड़ा दुःख पाता है, जैसे कोऊ मूढ विषको सुखरूप जानिकै
भक्षण करै, तब दुःख पाता[illegible]भाव इसको भोगविषे मित्रबुद्धि हुई है, परंतु इसके परमशत्रु हैं, इसको उन्मत्त करिकै मूर्छित करते
हैं, बडे दुःखको देते हैं, जैसे बा[illegible] हुआ पक्षी पिंजरेविषे दुःख पाता है, तैसे यह दुःख पाता है, ताते इसको काटहु, यह जगज्जाल
असत् है, गंधर्वनगरवत् शून्य है, इसकी इच्छा अनर्थका कारण है, इस संसारसमुद्रविषे मत डूबहु, जैसे हस्ती कीचडसों अपने
बलकरि निकसता है, तैसे अपना उद्धार करहु, संसाररूपी गढेलेविषे मनरूपी बैल गिरा है, तिसकरि अंग जीर्ण हो गये हैं; अभ्यास
अरु वैराग्यके बलकरि इसको निकासहु, अपना उद्धार करहु, जिस पुरुषको अपने मनपर भी दया नहीं उपजती; जो संसारदुःखते
निकसै, सो मनुष्यका आकारहै, परंतु राजसहै, ताते तुम उद्धार करिलेहु ॥ इति श्रीयोगवासिष्ठे स्थितिप्रकरणे जीवतत्त्ववर्णनं
नाम द्विचत्वारिंशत्तमः सर्गः ॥ ४२ ॥ ॥ वसिष्ठ उवाच ॥ हे रामजी ! इसप्रकार जीव परमात्माते फुरिकरि संसारभावना करते हैं,
तिनकी संख्या कछु करी नहीं जाती, कई पूर्व उपजे हैं, कई अपूर्व उपजे हैं, अबलग उपजते हैं, जैसे फुरणेसों जलके कणके प्रगट
होते हैं, तैसे ब्रह्मसत्तासों जीव फुरते हैं, अपनी वासनाकरि बांधे हुए भटकते हैं, विवश होयकरि नानाप्रकारकी दशाको प्राप्त होते हैं,
चिंताकरि दीन हो जाते हैं, दशों दिशा जलस्थलविषे पड़े भ्रमते हैं, जैसे समुद्रविषे तरंग उपजते अरु नष्ट होते हैं, तैसे जन्म अरु
मरण पाते हैं, कईका प्रथम जन्म हुआ है, कईको सौ जन्म हुए हैं, कईके असंख्य जन्म हुए हैं, कई आगे होवैंगे, कई होयकरि
मिटि गए हैं, कई अनेक कल्पपर्यंत अज्ञानकरि पड़े भटकेंगे, अब कई जराविषे स्थित हैं, कई यौवनविषे स्थितहैं, कई मोहकरि
नष्ट भएहैं, कई अल्पवय होयकरि स्थित हैं, कई अनंत आनंदी हुए हैं, कई सूर्यवत् उदितरूप हैं, कई किन्नर, कई विद्याधर होयकरि

स्थित हैं, कई सूर्य, चंद्रमा, इंद्र, वरुण, कुवेर, रुद्र, ब्रह्मा, विष्णु होकारि स्थित भए हैं, कई यक्ष, वैताल, सर्प, आदिक होकारि स्थित भए हैं, कई ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, शूद्र, गण कहाते हैं, कई क्रांत चांडाल आदिक स्थित हैं, कई तृण, औषधी, पत्र, फूल, मूलको प्राप्त भए हैं, कई लता गुच्छे पाषाण शिखर हुए हैं, कई कदंब वृक्ष ताल तमाल हुए हैं, कई मंडलेश्वर चक्रवर्ती हुए भ्रमते हैं; कई मुनीश्वर मौन पदविषे स्थित हैं, कई कृमि, कीट पिपीलिका आदिकरूप हैं, कई, सिंह, मृग, घोड़े, खच्चर, गर्दभ, वैल आदिक पशु स्थित हैं, कई सारस, चक्रवाक, कोकिला, वगलादिक पक्षी होयकारि स्थित हैं, कई कमल कली कुमुद सुगंधादिक स्थित हैं, कई आपदाकारि दुःखी हैं, कई संपदावान् हैं, कई स्वर्ग, कई नरकविषे स्थित हैं, कई नक्षत्रचक्र आकाश वायु सूर्यकी किरणोंविषे, कई चंद्रमाकी किरणोंविषे स्थित हैं, रस लेते हैं, कई जीवन्मुक्त हैं, कई अज्ञानकारि पड़े भ्रमते हैं, कई कल्याणभागी चिरपर्यंत भोगको पड़े भोगते हैं, कई परमात्माविषे परिणमी गये हैं, कई अल्पकाल, कई शीघ्रही आत्मतत्त्वविषे लय भए हैं, कई चिरकालकारि जीवन्मुक्त होवैंगे, कई मूढ दुर्भावना करते हैं अनात्माविषे भ्रमते हैं, कई मृतक होयकारि इस जगत्‌विषे जन्मते हैं, कई और जगत्‌विषे जाय स्थित होते हैं, कई न यहां न वहां उपजते हैं, आत्मतत्त्वविषे लय होते हैं, कई मंदराचल सुमेरु आदि पर्वत होइकारि स्थित होते हैं, कई क्षीरसमुद्र, घृतसमुद्र, इक्षुरस जल आदिक समुद्र हुए हैं, कई नदियां तडाग वापिका आदि भए हैं, कई स्त्रियां, कई पु[illegible], कई नपुंसकरूप हुए हैं, कई मूढ, कई प्रबुद्ध, कई अत्यंत मूढ हुए हैं, कई ज्ञानी, कई अज्ञानी, कई विषयतप्त; कई समाधिविषे [illegible] हैं, इसीप्रकार जीव अपनी वासनाकारि बांधे हुए भ्रमते हैं, संसारभावनाकारि जगत्‌विषे कवहूं अधःको कवहूं ऊर्ध्वको [illegible]रूप हैं, कामक्रोधादिक दुःखकी पीड़ाको पाते हैं कर्मकारि भ्रमते हैं, आशारूपी फांसीके साथ बांधे हुए हैं, अनेक दे[illegible]को [illegible] धारते हैं, जैसे भारवाही भारको उठावते हैं, तैसे कई मनुष्यशरीरते वहुरि मनुष्यशरीरको धारते हैं, वहुरि वृक्षते वृक्ष [illegible] हैं, कई [illegible]रते और शरीरको धारते हैं, इसीप्रकार आत्मरूपको भुलायकारि देहकेसाथ मिले हुए वासनारूप

कर्म करते हैं, तिनके अनुसार अध ऊर्ध्व पंथविषे भ्रमते हैं, जिनको आत्मबोध हुआ है, सो पुरुष कल्याणरूप है, और सब दुःखी मायारूप संसारविषे मोहित भए हैं; यह संसाररचना इंद्रजालकी नाईं है, जबलग अपने आनंद स्वरूपको नहीं पाया, साक्षात्कार नहीं भया, तबलग संसारभ्रमविषे भ्रमता है, अरु जिस पुरुषने अपने स्वरूपको जाना है, और जीवकी नाईं त्याग नहीं किया, वारंवार संसारके पदार्थनते रहित आत्माकी ओर धावता है, सो समय पायकरि आत्मपदको प्राप्त होवैगा, बहुरि जन्म न पावैगा, कई जीव अनेक जन्म भोगिकै ज्ञानकरि अथवा तपकरि ब्रह्माके लोकको प्राप्त होते हैं, बहुरि परमपद पाते हैं, कईं सहस्र जन्म भोग भोगिकरि बहुरि संसारविषे प्राप्त होते हैं, कई बुद्धिमान् विवेकको भी प्राप्त होते हैं, बहुरि संसारविषे गिरते हैं. अर्थ यह कि, मोक्षज्ञानको पायके बहुरि संसारी होते हैं, कई इंद्रपद पायकारि तुच्छ बुद्धिसों बहुरि तिर्यक् पशुयोनिको पाते हैं, बहुरि मनुष्याकार धारते हैं, कई महाबुद्धिमान् ब्रह्मपदते उपजिकरि तिसी जन्मविषे ब्रह्मपदको प्राप्त होते हैं, कई अनेक जन्मकरि, कई थोडे जन्मकरि प्राप्त होते हैं, कई एक जन्मकरि और ब्रह्मांडको प्राप्त होते हैं, कई इसीविषे देवताते पशुजन्म पाते हैं, कई पशुते देवता हो जाते हैं, कई नाग हो जाते हैं; जैसी जैसी वासना होती है, तैसाही रूप हो जाता है, जैसे यह जगत् विस्ताररूप है, तैसे अनेक जगत् हैं, कई समानरूप हैं, कई विलक्षण आकार हैं, कई हुए हैं, कई होवैं गे, विचित्ररूप सृष्टि उपजती हैं, अरु मिटती हैं, कईं गंधर्व भावको, कई यक्ष देवता आदिक भावको प्राप्त भए हैं, जैसे जीव इस जगतविषे व्यवहार करते हैं, तैसे और जगत्‌विषे व्यवहार करते हैं, आकार विलक्षण है, अपने स्वभावके वश हुएते जन्ममरणको पाते हैं, जैसे समुद्रते तरंग उपजते और मिटते हैं; तैसे सृष्टिकी प्रवृत्ति उत्पत्ति लय होता है, जब संवित् स्पंद होते हैं, तब उपजते हैं जब निस्पंद होता है, तब लय होता है, जैसे दीपकका प्रकाश लय होता है, अरु जैसे सूर्यते किरणैं निकसती हैं, जैसे तप्त लोहेते चिनगारे निकसते हैं, जैसे अग्निते चिनगारे निकसते हैं, जैसे कालते ऋतु निकसती हैं, पुष्पते सुगंधि प्रगट होती है, समुद्रते तरंग उपजते हैं, बहुरि लय होते हैं, तैसे आत्म

सत्ताते जीव उपजते हैं, बहुरि लय होते हैं, जेते कछु जीव हैं सो सबही समयकारिकै अपने पदविषे लय होवैंगे, स्वरूपते इनका उपजना भी मिथ्या है, स्थिति बंधन भी मिथ्या है, नष्ट होना मिथ्या है, त्रिलोकीरूप महामायाके मोहकारि उपजते समुद्रके तरंगकी नाईं नाश होते हैं॥ इति श्रीयोगवासिष्ठे स्थितिप्रकरणे जीवबीजसंस्थावर्णनं नाम त्रिचत्वारिंशत्तमः सर्गः॥ ४३॥ ॥ राम उवाच॥ हे भगवन्! जीव इस क्रमकारि आत्मस्वरूपविषे स्थित है, बहुरि अस्थिमांसकारि पूर्ण देह पिंजर इसको कैसे प्राप्त भया है?॥ वसिष्ठ उवाच॥ हे रामजी! मैंने प्रथम तुझको अनेक प्रकार कहा है, तू अबलग जागृत नहीं भया, पूर्वापरके विचार करनेहारी तेरी बुद्धि कहां गई है? जेता कछु शरीरादिक स्थावर जंगम जगत् दृष्टि आता है; सो सब आभासमात्र है, स्वप्नकी नाईं उठा है, दीर्घ स्वप्न है, मिथ्या भ्रमकारि भासता है; जैसे आकाशविषे दूसरा चंद्रमा भ्रममात्र भासता है, जैसे भ्रमणेकारि पर्वत भ्रमते भासते हैं, तैसे जगत् अज्ञानकारि भासता है, अरु जिन पुरुषकी अज्ञाननिद्रा नष्ट भई अरु निश्चयकारि संसारवासना गलित भई है, सो प्रबुद्धचित्त हैं, संसारको स्वप्नरूप देखते हैं, अरु स्वरूप भावकारि कछु देखते नहीं, अपनेही स्वभावकारि संसार कल्पते हैं, यह जीव संसार मोक्षते प्रथम सर्वदा सतरूप देखते हैं; तिनकी संसारभावना असत् नहीं होती जगत् आकार सर्वदा अपने अंतर कल्पते हैं, अरु जीवके अनेक आकार चपलरूप क्षणभंग होते हैं, जैसे जलविषे तरंग चंचलरूप होते हैं, जैसे बीजविषे अंकुर रहता है, तिसीके अंतर पत्र फूल फल आदिक होते हैं, तैसे कल्पनारूपी देह मनके फुरनेविषे रहता है॥ हे रामजी! देह न होवै परन्तु जहां मन फुरता है, तहांही देहको रचलेता है, जैसे स्वप्नविषे मनोराज्य देहको रचि लेता है, तैसे यह देह अरु जगत् भी मनकारि रचा हुआ है, जैसे मृत्तिकाका पिंड चक्रकेऊपर चढाया घटरूप हो जाता है, तैसे मनके फुरनेकारि देह बनता है, सब देह मनके फुरनेविषे स्थित हैं, जेता कछु जगत् भासता है, सो सब संकल्पमात्र है, जैसे मृगतृष्णाका जल असतरूप होता है, तैसे यह जगत् असत्य है, जैसे बालकको अपने परछाईंविषे वैताल भासता है, तैसे जीवको अपने फुरनेकारि देहादिक भासते हैं॥ हे रामजी! सृष्टिके आदि

विषे जो शरीर उत्पन्न भए हैं, सो आभासमात्र संकलपकारि उपजे हैं, प्रथम ब्रह्मा पद्मविषे स्थित भया; तिसने संकलपके क्रमकारि विस्तार किया है, जैसा संकलपपुर स्थित होवै, तैसे स्थित किया है, सो सब मायामात्र है, मायाकी घनताकारि यह जगत् भासता है, स्वरूपते कछु नहीं ॥ राम उवाच ॥ हे भगवन्! आदि जीव जो मनरूप फुरनेको पायकारि ब्रह्मपदको प्राप्त भया है, सो ब्रह्मा जैसे हुआ है, अरु स्थित भया है; सो मुझको क्रमकारि कहौ ॥ वसिष्ठ उवाच ॥ हे महाबाहो रामजी ! प्रथम ब्रह्मशरीरको पायकारि ग्रहण किया है, तिसके श्रवणकारि स्थिति भी जानैगा देश काल आदिकके परिच्छेदते रहित आत्मतत्त्व अपने आपविषे स्थित है, सो अपनी लीला शक्तिकारि देश काल क्रिया कल्पितरूप भया है, तिसकारि जीवके एते नाम हुए हैं,वासनाकारि तद्रूप हुई चित्कला चपलरूप मन हुआ है, सो दृश्य कलनाके सन्मुख हुई, प्रथम वही चित्कला मानसी शक्ति होइकारि आकाशकी भावना करत भई, स्वच्छ बीजरूप जो शब्द है, तिसके सन्मुख मध्यविषे उदर धर्म है, जैसे नूतन बालक प्रगट होता है, तैसे आकाश पोलरूप फुरि आया, बहुरि स्पर्श बीजके सन्मुख हुई तब पवन फुरि आया, जब शब्द स्पर्श आकाश पवनका संघर्षण भया, तब मनके तन्मय होनेकारि अग्नि उपजा, बड़ा प्रकाश हुआ, बहुरि रसतन्मात्राकी भावना करी तब शीतलभावनासों जल फुरि आया; जैसे अति उष्णताते स्वेद निकस आता है, बहुरि गंधतन्मात्राकी भावना करी तिसकारि घ्राण इंद्रिय निकसि आई स्थूलकी भावनाकरी जलचक्र पृथिवी होयकारि स्थित भये, आकाशविषे बड़ा प्रकाश हुवा, अहंकारकी कलाकारि युद्ध अरु बुद्धिरूपी बीजकारि सत्‌चितरूप हुई, अष्टम जीवसत्ता हुई इन अष्टका नाम पुर्यष्टक भया; सो देहरूपी कमलका भँवरा हुआ, तिस आत्मसत्ताविषे तीव्र भावनाकारिकै वही चितसत्ता वडा स्थूल वपु देखती भई, जैसे बीजते वृक्ष फूल होनेकारि रस परिणमता है, तैसे निर्मल आकाश विषे वृत्ति स्पंदअस्पंदरूप हुई है, जैसे संचेविषे भूषण निमित्त स्वर्ण आदिक धातु पड़ती हैं, सो भूषणरूप हो जाती हैं, तैसे ब्रह्माजी अपनी चेतन संवेदन मनरूपी संवित्‌विषे तीव्र भावनाकारि तिसकारि स्थूलताको प्राप्त भये स्वतः यह फुरणा दृश्यका रूप

क्रमकरि हुआ, जो ऊर्ध्व शीश है; मध्य उदर है, अधः पाद हैं; चारों दिशा हस्त हैं, मध्यविषे उदर धर्म है, जैसे नूतन बालक प्रगट होता है, महा उज्ज्वल प्रकाश ज्वालाकी लाटावत् अंग होते हैं, तैसे ब्रह्मका शरीर उत्पन्न भया है, इसप्रकार वासनाकारि कल्पित मनकारि शरीर उत्पन्न करि लिया है, आदि ब्रह्माका प्रकाशही शरीर भया, सब बुद्धिकी समष्टिरूप उसकी बुद्धि अरु बल उत्साहकी समाधि है, बहुरि कैसा है, सदा ज्ञानरूप है, संपूर्ण ऐश्वर्य, संपूर्ण शक्ति अरु तेज उदारताकारि संपन्न स्थित है, इस प्रकार सब जीवका ब्रह्माजी अधिपति नायक होता भया है, अरु द्रवत् स्वर्णवत् कांति ऐसा शरीर परम आकाशते उपीजकरि आकाशरूप स्थित भया है, अपनी लीलाके निमित्त अपने निवासका गृह रचता है ॥ हेरामजी ! कबहूं ब्रह्माजी परमआकाशविषे रहता है, कबहूं कल्पांतर महाभास्कर अग्निविषे रहता है, कबहूं स्वर्णकमल विष्णुजीके नाभिकमलविषे रहता है, इसीभाँति अनेक प्रकारके आसन रचिकरि कबहूं कहां कबहूं कहां स्थित होता है. लीला करता है, जब परम तत्वसों प्रथम इसप्रकार फुरता है, तब अपनेसाथ शरीर देखता है, जैसे बालक निद्राते जागिकरि अपने साथ शरीर देखता है, तैसे ब्रह्माजी अपने संग शरीर देखता भया, कैसा शरीर प्राणके प्रवाहसंयुक्त प्राण अपान जाते आते हैं, तब पंचतत्त्व जो द्रव्य हैं, तिनकरि रचना भया, बत्तीस दंत हैं, तीन स्तंभ हैं, अरु पंचदेवता शरीरविषे स्थित हैं, सो कौन हैं, ब्रह्मा, विष्णु, रुद्र, ईश्वर, सदाशिव पंच भाग शरीरके हैं, नव द्वार हैं, दो जंघास्थल, दो पाद, अरु दो भुजा, बीस अंगुली हैं, हस्तपादके बीस नख हैं, एक मुख है, दो नेत्र हैं, कबहूं अपनी इच्छासों अनेक भुजा अनेक नेत्रकरि लेता है, मांसकी कहगीलकरी है, ऐसा शरीर हुआ सो चित्तरूपी पक्षीका आलणा है, कामदेव भोगनेका स्थान है, वासनारूपी पिशाचिनीका गृह है, जीवरूपी सिंहकी कंदरा है, अभिमानरूपी हस्तीका वन है, इसप्रकार ब्रह्माजी शरीरको देखता भया, बड़ा उत्तम कांतिमान् शरीरको देखिकरि ब्रह्माजी चितवत भया, जो त्रिकालदर्शी है, कि इसके आदि क्या हुआ अरु अब हमको क्या करना है; ऐसे परम आकाशविषे सदा निर्मलदर्शी देखत भया, जो आगे भूतका सर्ग व्यतीत भया है, वेदसंयुक्त

ऐसे अनेक हुए हैं, तिनके सब धर्म स्मरण करिकै देखत भया, वाग्मय भगवतीका स्मरण किया, वेदका स्मरण सर्व सृष्टिके धर्म गुण विकार उत्पात्ति स्थिति बढना परिणाम क्षीण नाश होता सब धर्मको स्मृतिशक्तिकरि देखता भया, जैसे योगीश्वरने अपना अनुभव किया अरु औरका किया, चित्तशक्तिविषे स्थित होयकरि स्मृतिशक्तिसों देखि लेता है, तैसे ब्रह्माजी अनुभव करता भया, दिव्य नेत्रसों बहुरि इच्छा हुई कि लीलाकरि विचित्ररूप प्रजाको उत्पन्न करौं, ऐसे विचारकरि उत्पात्ति करता भया, जैसे गंधर्वनगर तत्काल हो जाता है, तैसे सृष्टि हो गई है, तिसके धर्म, अर्थ, काम, मोक्ष चार पदार्थ तिनके साधन रचे, बहुरि तिनविषे विधिनिषेध रचे कि, यह कर्तव्य है, यह अकर्तव्य है, तिनके अनुसार फलकी रचनाकरी, शुभ अशुभ विचित्रता रची ॥ हे रामजी ! इसप्रकार फुरनेकरि सृष्टि हुई है, फुरनेकी दृढताकरि स्थितिको प्राप्त भई है, तिसविषे नीति, काल,क्रिया, द्रव्य, कर्म, धर्म, रचे हैं, जैसे नीति करी है, तैसे स्थित हैं, जैसे वसंत ऋतुकरि पुष्प उत्पन्न होते हैं, तैसे ब्रह्मके मनकरि सृष्टि रची है, विचित्ररूप रचनाका विलास चित्तरूप कमळज ब्रह्माके चित्तकरि कल्पा है, सो कलनारूप है, कालविषे उत्पन्न हुई है, कालहीकरि स्थित है, स्वरूपते न कछु उपजा है, न कछु नष्ट होता है, जैसे स्वप्नसृष्टि होती है, तैसे यह संसाररचना है ॥ इति श्रीयोगवासिष्ठे स्थितिप्रकरणे संसारप्रतिपादनं नाम चतुश्चत्वारिंशत्तमः सर्गः ॥ ४४ ॥ ॥ वसिष्ठ उवाच ॥ हे रामजी ! इसप्रकार जो उपजा है, सो कछु नहीं उपजा, न स्थित है, शून्य आकाशरूप है; मनके फुरणेकरि सृष्टि भासती है, बडे देश काल क्रियासंयुक्त जो ब्रह्मांड दृष्टि आता है, सो परमार्थते तिसने कछु भी स्थान रोका नहीं स्वप्नपुरवत् संकल्पमात्र है, आधारविना चित्र है, जैसे मूर्तिका चित्र आधारविना मिथ्या होता है, तैसे यह जगत् बड़ा भासता है, तौ भी मिथ्या है, असत्य तमरूप है, आकाशविषे चित्रकी नाईं है, जैसे स्वप्नविषे भासरूप जगत् भासता है तौ भी असत्रूप है, तैसे यह शरीरादिक जगत् मनके फुरनेकरि भासता है, मनका फुरनाही इसका कारण है, जैसे नेत्रका कारण प्रकाश है, तैसे जगत्का कारण चित्त है, सब जगत् आकाशमात्र है, घट पट तोयादिक क्रमसहित

भासते हैं, तौ भी असत्‌रूप हैं, जैसे जलविषे चक्र आवर्त भासते हैं, सो असत्यरूप हैं, तैसे प्रथम पर्वत आदिक जगत् असत्यरूप हैं, अपने निवासके निमित्त मनने यह शरीर रचा है, जैसे घुराण अपने निवासके निमित्त गृह रचती है, अरु आपही बंधनमें आती है, तैसे मन शरीरादिकको रचिकरि आपही दुःखी होता है, ऐसा पदार्थ कोऊ नहीं जो संकल्पते रहित सिद्ध होवै, अरु मनके यत्नकरि सिद्ध न होवै, कठिन क्रूर पदार्थ भी मनकरि सिद्ध होता है, परमात्मा जो देव है, सो सर्व शक्तिमान् है, मन भी तिसकी शक्ति है, वह कौन पदार्थ है, जो मनकरि सिद्ध न होवै, सब कछु बनजाता है, काहेते कि जेते कछु पदार्थ हैं, तिनविषे सत्ता परमात्माकी है, तिसते इतर कछु नहीं, ताते परमात्मा देवविषे सब कछु संभवता है, आदि चित्तकला ब्रह्मारूप होयकरि उदय भई है, तिस भावनाके अनुसार आपको ब्रह्माका शरीर देखत भई, तिस कमलज ब्रह्माने कलनारूप जगत् रचा है; देवता, दैत्य, मनुष्य, स्थावर, जंगम रूप जगत् संकल्पविषे स्थित है, जबलग उसका संकल्प है, तबलग तैसेही स्थित है जब संकल्प मिटिजावैगा तब सृष्टिभी नष्ट होजावैगी, जैसे तेलते रहित दीपक निर्वाण हो जाता है, तैसे जगत् भी हो जावैगा, सो आकाशवत् सबही कलनामात्र है, दीर्घस्वप्नवत् स्थित है, वस्तुते न कोऊ उपजा है, न मरता है, परमार्थते तौ ऐसे है, अरु अज्ञानकरि सब पदार्थ विकारसंयुक्त भासते हैं, न कोऊ वृद्ध है, न नष्ट होता है, तिसविषे और विकार कैसे मानिये; जैसे पत्रकी रेखा होवै, तिसके उपजने अरु नाश होनेविषे वनको कछु अधिकता और ऊनता नहीं होती, तैसे शरीरके उपजने अरु नष्ट होनेविषे आत्माको लाभ हानि कछु नहीं सब जगत् दृश्य भ्रांतिकरिकै भासता है, ज्ञानदृष्टिकरि देख, अज्ञानिवत् क्यों मोहित होता है ? जैसे मृगतृष्णाका जल प्रत्यक्ष भासता है, सो मिथ्या भ्रममात्र होता है, तैसे ब्रह्माते आदि तृणपर्यंत सब भ्रांतिमात्र हैं, जैसे आकाशविषे दूसरा चंद्रमा भासता है, तैसे मिथ्याज्ञानकरि जगत् भासता है, जैसे नौकापर बैठेको तटके वृक्षस्थान चलते दृष्टि आते हैं, तैसे भ्रमदृष्टिकरि जगत् भासता है, इस जगतको तू इंद्रजालवत् जान, मायाकरि रचा जगत् देह पिंजर है, मनके मननकरि असत्यरूपही सत्यकी नाईं स्थित भया है,

और जगत् द्वैत कछु हुआ नहीं, ब्रह्मसत्ता ज्योंकी त्यों स्थित है, और शरीरादिक कैसे किसकी नाईं स्थित कहिये, पर्वत तृण आदिक जो जगत् आडंबर है, सो भ्रांतिमात्र मनकी भावना करि दृढ हो भासता है, असत्यही सत्यरूप हो स्थित भया है ॥ हे रामजी! यह प्रपंच नानाप्रकारकी रचनासंयुक्त भासता है, तौ भी अंतरते तुच्छ है, इसकी कामना तृष्णा त्यागकरि सुखी होहु, जैसे स्वप्नविषे बड़े आडंबर भासते हैं, सो भ्रांतिमात्र असत्यरूप हैं, वास्तवते कछु नहीं, तैसे यह जगत् दीर्घ कालका स्वप्न है, चित्तकरि कल्पित है, देखनेविषे बड़ा विस्ताररूप भासता है, विचार करिकै ग्रहण करिये तौ हाथ कछु नहीं आता है, जैसे स्वप्नसृष्टि जागृतविषे कछु नहीं पाईजाती जैसे घुराणको अपना रचा गृह बंधन करता है, तैसे अपना रचा जगत् मनको दुःख देताहै, तातें इसको त्याग करहु, जिस पुरुषने इसको असत्य जाना है सो जगत्की भावना बहुरि नहीं करता, जैसे मृगतृष्णाके जलको जिसने असत्य जाना है, सो पानके निमित्त धावता नहीं, जैसे अपने मनकी कल्पी स्त्रीसों बुद्धिमान् राग नहीं करता, तैसे ज्ञानवान् जगत्के पदार्थविषे राग नहीं करता, अरु जो अज्ञानी हैं, सो रागकरि बंधायमान होते हैं, जैसे स्वप्नविषे असत्य स्त्रीसों चेष्टा करते हैं, तैसे अज्ञानी असत्य जगत्को सत्य जानिकै चेष्टा करते हैं, बुद्धिमान् सत्य मानिकरि नहीं करते, जैसे जेवरीविषे सर्प भासता है, तैसे मनके मोहकरि जगत् भासता है, अरु भयदायक होता है, सर्व जगत् भावनामात्र है, जैसे जलविषे चंद्रमाका प्रतिबिंब चंचल भासता है, तिसके ग्रहणकी इच्छा बालक करता है, बुद्धिमान् नहीं करता, तैसे जगत्के पदार्थकी इच्छा अज्ञानी करते हैं, ज्ञानवान् नहीं करते ॥ हे रामजी! यह मैं परमगुणका समूह तुझको उपदेश किया है तिसकी भावना करिकै तू सुखी होवैगा, अरु जो मूर्ख इन वचनोंको त्यागिकै दृश्यकी ओर सुखरूप जानिकै लगते हैं, सो पुरुष ऐसे हैं जैसे कोऊ शीतकरि दुःखी होवै अरु प्रत्यक्ष अग्निको त्यागिकरि जलविषे अग्निके प्रतिबिंबका आश्रय करै, तिसकरि शीत निवृत्त करै सो मूढ है, तैसे आत्मविचारको त्यागिकै जो जगत्के पदार्थकी सुखके निमित्त इच्छा करते हैं; सो मूढ हैं, सब जगत् असत्य रूप है, मनके मननकरि रचा है, जैसे

स्वप्नविषे चित्तकरि नगर भासता है, अरु स्वप्नविषे नगर जलता भासै, तौ पुरुष कदाचित् नहीं जलता, तैसे जगत्के नाश हुएते आत्मनाश नहीं होता. उपजने बढने घटने नाश होनेते आत्मा रहित है, जैसे बालक अपनी क्रीडाके निमित्त हस्ती घोड़ा नगर रचि लेता है अरु समेटि छोड़ता है, तौ वह उपजने मिटनेविषे ज्योंका त्यों है, जैसे बाजीगर बाजीको पसारता है, बहुरि लय करता है, सो उत्पत्तिलयविषे बाजीगर ज्योंका त्यों है, तैसे आत्मा जगत्की उत्पत्तिलयविषे ज्योंका त्यों है, तिसीका कछु कदाचित् नष्ट नहीं होता, जो सब सत्य है तौ किसीका कछु नाश नहीं होता; इसकारणते जगत्विषे हर्ष शोक करना योग्य नहीं, अरु जो सब असत् है, तौ भी नाश किसीका न हुआ, अरु दुःख भी किसीको न हुआ, सत्य असत्य दोनों प्रकार हर्ष शोक नहीं होता, स्वरूपते किसीका नाश नहीं, सब जगत् ब्रह्मरूप है, तौ दुःख सुख कहां है, ब्रह्मसत्ताविषे कछु द्वैत जगत् बना नहीं, सब प्रत्यक्ष जो अनन्वय होता है, तौ भी असत्यरूप है, तिस असत्यरूप संसारविषे ज्ञानवान्को ग्रहण करने योग्य पदार्थ कोऊ नहीं, जो जगत् सब भूतविषे ब्रह्मतत्त्व है, इतर कछु नहीं, त्रिलोकीविषे तौ इसी पदार्थके ग्रहणत्यागकी इच्छा करिये, जगत् सत्यरूप होवै, अथवा असत्यरूप होवै, ज्ञानवान्को सुखदुःख कोऊ नहीं, तृतीय भ्रांति दृष्टि अज्ञानीको दुःखदायक होती है, जो वस्तु आदिअंतविषे असत्य है, सो मध्यविषे भी असत्य जानिये, तिसके पाछे जो शेष रहता है, सो सत्यरूप है, जिसकरि असत्य भी सिद्ध होता है, जो मोहकरि आवृत बालबुद्धि है, सो जगत्के पदार्थकी इच्छा करते हैं, बुद्धिवान् नहीं करते, बालकको जगत् विस्ताररूप भासता है, तिसकरि अपना प्रयोजन वांछते हैं, बहुरि सुखदुःख भोगते हैं, तू बालक मत होहु, जगत् अनित्य है, इसकी आस्था त्यागिकरि सत्यात्माविषे स्थित होहु, अरु जो आपसंयुक्त संपूर्ण जगत् असत्रूप जानै, तौ भी विषाद कछु नहीं, जो आपसंयुक्त सब सत्य जानै तौ भी इस दृष्टिकरि हर्ष शोक नहीं, ये दोनों निश्चय सुखदायक हैं, आपसंयुक्त सब असत्यरूप जानैगा तौ दुःख नहीं होता॥

वाल्मीकिरुवाच ॥ जब इसप्रकार वसिष्ठजीने कहा, तब सूर्य अस्त हुआ, सब सभा नमस्कार करिकै अपने स्थानको गई, बहुरि सूर्यकी किरणोंसंग अपने आसनपर आय बैठे ॥ इति श्रीयोगवासिष्ठे स्थितिप्रकरणे यथार्थोपदेशयोगो नाम पंचचत्वारिंशत्तमः सर्गः ॥ ४५ ॥ वसिष्ठ उवाच ॥ हे रामजी ! जो धन स्त्री आदि नष्ट हो जावैं तौ इंद्रजालकी बाजीवत् देखिये, इसकरि भी शोकका असर नहीं होता, क्षण दृष्टिविषे आये बहुरि नष्ट होगये, तिनका शोक करना व्यर्थ है, गंधर्वनगर जो रत्नमणिकरि भूषित किया होवै, अथवा दुःखकरि दूषित किया होवै, हर्षशोकका स्थान कहां है, तैसे अविद्याकरि रचे पुत्र स्त्रीधनादिक हैं, तिनके सुखदुःखका क्रम कहां है, जो पुत्रधनादिक बढैं तौ भी हर्ष करना व्यर्थ है, जैसे मृगतृष्णाका जल बढा तौ भी अर्थ सिद्ध नहीं करता, तैसे धन दारा आदिक बढैं तौ हर्ष कहां है, शोकवान्ही रहता है वह कौन पुरुष है, जो मोहमायाके बढ़े हुए शांतिवान् होवै, वह दुःखदायक हैं, जो मूढ हैं, सो भोगको देखिकै हर्षवान् होते हैं अधिकते अधिक चाहता है, अरु बुद्धिमान्को तिन भोगते वैराग्य उपजता है, जिनको आत्माका साक्षात्कार नहीं भया, अरु भोगको अंतवंत नहीं जाना, तिनके भोगकी तृष्णा बढ़ती है, अरु जो बुद्धिमान् हैं, सो भोगको आदिते अंतवंत नहीं जानते हैं, दुःखरूप जानिकरि तिसकी इच्छा नहीं करते; ताते हे राघव ! ज्ञानवान्की नाईं व्यवहारविषे विचरौ, जो नष्ट होवै सो होवै, जो प्राप्त होवै सो होवै, तिसविषे हर्ष शोक न करहु, तिसको यथाशास्त्र हर्षशोकते रहित भोगहु, अरु जो न प्राप्त होवै, तिसकी इच्छा न करहु, यह पंडितका लक्षण है ॥ हे रामजी ! यह संसार दुःखरूप भोगकरि आया है, इसविषे मोहको प्राप्त नहीं होना, जैसे ज्ञानवान् विचरते हैं, तैसे विचरना, मूढवत् नहीं विचरना, यह संसार आडंबर अज्ञानकरि रचा है, जो इसको ज्योंका त्यों नहीं देखते, सो कुबुद्धि नष्ट होते हैं, जिस जिस संसारके पदार्थकी इच्छा होती है, सो बंधनका कारण है, तिनविषे डूबि जाता है, जो बुद्धिमान् हैं सो जगत्के पदार्थविषे प्रीति नहीं करते, जिस निश्चयकरि जगत्को असत्यरूप जाना है, सो किसी पदार्थविषे बंधमान नहीं होता, अविद्यारूप पदार्थ तिसको खेद नहीं देते, वस्तु बुद्धिकरि

खैंच नहीं सकता, जिसकी बुद्धिविषे यह निश्चय हुआ कि, सर्व मैं हौं, ऐसे जानिकै किसी पदार्थकी इच्छा नहीं करता ॥ हे रामजी ! शुद्ध तत्त्व जो सत्य असत्य जगत्के मध्यभाव है, तिसका अंतरते आश्रय करहु और जो अंतर बाहिर जगत दृश्य पदार्थ हैं तिनको मत ग्रहण करहु, इनकी आस्था त्यागिकरि परमपदको प्राप्त होहु, अति विस्तृत स्वच्छरूप आत्माविषे स्थित होहु, रागद्वेषते रहित सब कार्य करहु, जैसे आकाश सब पदार्थमें व्यापक अरु निर्लेप है, तैसे सब कार्य करत निर्लेप होहु; रागद्वेषते रहित होहु, जिस पुरुषको पदार्थविषे न इच्छा है न अनिच्छा है, कर्मविषे स्वाभाविक स्थित है, तिसको कर्मका स्पर्श नहीं होता, कमलवत् सदा निर्लेप रहता है, देखना सुनना आदिक इंद्रियोंकरि व्यवहार होता है, ताते तुम इंद्रियोंकरि व्यवहार करहु. अथवा न करहु, परंतु इनविषे निरिच्छित रहो अभिमानते रहित होइकरि आत्मतत्त्वविषे स्थित होहु, यह मैं हौं, यह मेरा है, इस मिथ्या कल्पनाते रहित सुखी होहु, इंद्रियके अर्थका सार जो अहंकार है, सो जब यह हृदयविषे न फुरैगा, तब तुम जो योग्यपदको प्राप्त होहुगे, रागद्वेषते रहित संसारसमुद्रको तरि जाहुगे, जब इंद्रियोंके रागद्वेषते रहित हो, तब मुक्तिकी इच्छा न करै, तौ भी मुक्तिरूप है ॥ हे रामजी ! इस देहते आपको व्यतिरेक जानिकरि जो उत्तम आत्मपद है, तिसविषे स्थित होहु, तब तुम्हारा परमयश होवैगा, जैसे पुष्प सुगंधित प्रगट होता है; यह संसाररूपी समुद्र है, तिसविषे वासनारूपी जल है, तिसविषे जो आत्मवेत्ता बुद्धिरूपी बेडेपर चढते हैं, सो तरिजाते हैं, अरु जो नहीं चढ़ते सो डूबि जाते हैं, यह बोध मैं तुझको क्षुरधारकी नाईं तीक्ष्ण कहा है, सो अविद्याके काटनेहारा है, जिसको विचारकरि आत्मतत्त्वविषे स्थित होहु, जैसे तत्त्ववेत्ता आत्मतत्त्वको जानिकरि व्यवहारविषे विचरते हैं, तैसे तुम भी विचरौ, अज्ञानीकी नाईं नहीं विचरना, जैसे जीवन्मुक्त पुरुषको नित्य तृप्तका आचार है, तिसको अंगीकार करना, भोगविषे दीन नहीं होना, मूढ़के आचारवत् आचार अंगीकार न करना, जो परावर परमात्मवेत्ता पुरुष हैं, सो न कछु ग्रहण करते हैं, न त्याग करते हैं, न किसीकी वांछा करते हैं, जैसा व्यवहार प्रारब्धवेगकरि प्राप्त होता है, तिसीविषे विचरते हैं, राग द्वेष

किसीविषे नहीं करते, बड़ा ऐश्वर्य होवै, बड़े गुण होवैं, लक्ष्मी आदिक बड़ी विभूति होवै, तौ भी ज्ञानवान् अज्ञानीवत् अभिमान नहीं करते, अरु महाशून्य वनविषे खेदवान् नहीं होते देवताका सुंदर वन विद्यमान होवै, तिसकरि हर्षवान् न होवै, न किसीकी इच्छा है, न त्याग है, जैसी अवस्था आनि प्राप्त होवै, रागद्वेषते रहित तिसीविषे विचरते हैं, जैसे सूर्य समभावसों लीन विचरता है, तैसे अभिमानते रहित देहरूपी पृथ्वीविषे विचरते हैं, अब तू भी विवेकको प्राप्त होहु, बोधके बलकरि इसविषे स्थित होहु और कीसी पदार्थकी ओर दृष्टि नहीं करनी, निर्वैर निर्मन दृष्टिको ले विचरना, समभावविषे सम उत्तम भाव पृथ्वीमें स्थित होना, संसारकी इच्छा दूरते त्यागिकरि यथा व्यवहारविषे विचरना, परम शांतरूप रहना ॥ वाल्मीकि उवाच ॥ जब इसप्रकार निर्मल वाणीकरि वसिष्ठजीने कहा, तब निर्मल चित्त रामजीका हृदय अमृतकरि शीतल अरु पूर्ण भया, जैसे पूर्णमासीका चंद्रमा अमृतकरि शीतल पूर्ण होता है, तैसे रामजी शांतिकरि पूर्ण भया ॥ इति श्रीयोगवासिष्ठे स्थितिप्रकरणे यथाभूतार्थ बोधयोगो नाम षट्चत्वारिंशत्तमः सर्गः ॥ ४६ ॥ ॥ राम उवाच ॥ हे भगवन्! सर्व धर्म वेद वेदांतके पारज्ञ, तुम्हारे शुद्ध वचनकरि मैं स्वस्थ भया हौं, कैसे तुम्हारे वचन हैं, उदार विरक्तरूप हैं, कोमल अरु उचित हैं, तिन तुम्हारे वचनरूपी अमृतको पान करि मेरी तृप्ति नहीं होती ॥ हे भगवन्! तुम राजस सात्त्विक जगत् कहने लगे थे, सो कछु संक्षेपते कहा था, तिनविषे अवकाशको पायकरितुमने ब्रह्माजीकी उत्पत्ति कही, तिसकरि मुझको यह संदेह उत्पन्न भया, सो हृदयविषे विस्तारको पाता भया है कि, कहूं ब्रह्माकी उत्पत्ति कमलते कही है, कहूं आकाशते, कहू अंडते, कहूं जलते कही है, सो विचित्ररूप शास्त्र करि कैसे कहा है, तुम सब संशयके नाशकर्त्ता हौ, कृपाकरि शीघ्र मुझको उत्तर कहौ ॥ वसिष्ठ उवाच ॥ हे रामजी! कई लक्ष ब्रह्मा हुए हैं, कई अनेक विष्णु रुद्र होते हैं, अब भी [illegible]डविषे अनेक प्रकारके व्यवहार संयुक्त होते हैं; कई तुल्य होते हैं, कई बडे छोटे कालके होते हैं, स्वप्नजगतकी नांई [illegible], कई तुल्य हैं, कई आगे होवैंगे, तिनविषे तुझने एक ब्रह्माकी उत्पत्ति पूछी है, सो सुन, अरु यह भी अनेक प्रकारके

सृष्टि सदाशिवते उत्पन्न होती है, कबहूँ ब्रह्माते; कबहूँ विष्णुते, कबहुँ मुनीश्वर रचि लेते हैं, कबहूँ ब्रह्मा कमलते उपजता है कबहूं जलते, कबहूँ पवनते, कबहूं अंडते उपजा है, कबहूं किसी ब्रह्मांडविषे इंद्र त्रिनेत्र होता है, कबहूं पुंडरीकाक्ष विष्णु होता है, कबहूँ सदाशिव होता है, कबहूं सृष्टिविषे पर्वत उपजते हैं, तिनकरि पृथ्वी निरंध्र हो रही है, कबहूं मनुष्यकरि पूर्ण, कबहूँ वृक्ष करि पूर्ण होती है, अनेक प्रकार सृष्टिकी उत्पत्ति होती है, किसी ब्रह्माविषे मृत्युका भय होता है, कबहूँ पाषाणमय होती है, कबहूँ मांसमय होती है, कबहूं स्वर्णमय होती है, इसप्रकार पृथ्वी होती है, कई सृष्टि ऐसी हैं, चतुर्दश लोक हैं, किसी सृष्टिविषे कई लोकभये हैं किसी सृष्टिविषे ब्रह्मा नहीं हुआ, इसीप्रकार अनेक सृष्टि चिदाकाश ब्रह्मतत्वते फुरी हैं, बहुरि लय भई हैं, जैसे समुद्रविषे तरंग उपजिकरि लय होते हैं, तैसे आत्माविषे अनेक सृष्टि उपजिकरि लय हो जाती हैं, जैसे मरुस्थलविषे मृग तृष्णाकी नदी भासती है, जैसे पुष्पविषे सुगंधि होती है, तैसे परमात्माविषे जगत् है, तैसे सूर्यकी किरणोंविषे त्रसरेणु भासते हैं, तिनकी संख्या कही नहीं जाती; कोऊ ऐसा समर्थ भी होवै, जो तिनकी संख्या करै परंतु ब्रह्मतत्त्वविषे जो सृष्टि फुरती हैं, तिनकी संख्या करनेको कोऊ समर्थ न होवैगा, जैसे वर्षाऋतुविषे ईखके क्षेत्रविषे मच्छर होते अरु नष्ट हो जाते हैं, तैसे आत्माविषे सृष्टि उपजिकरि नष्ट हो जाती है, वह काल जाना नहीं जाता जिस कालविषे सृष्टिका उपजना हुआ है, आत्मतत्त्वविषे नित्यही सृष्टिका उपजना लय होना है, सो अंत कछु नहीं, जैसे समुद्रते तरंग फुरते हैं उनते पूर्व और बहुरि उनते पूर्व और, इसीप्रकार आदि अरु अंत कछु जाना नहीं जाता, तैसे आत्माविषे सृष्टिका आदि अंत कछु नहीं, देवता दैत्य मनुष्य आदिक कई उपजिकरि लय भये हैं, कई आगे होवैंगे, जैसे यह ब्रह्मांड ब्रह्माकरि रचा है, तैसे अनेक ब्रह्मांड हो गये हैं जैसे अनेक घटिका एक वर्षविषे व्यतीत होती हैं, तैसे बीते हैं, जैसे समुद्रविषे तरंग होते हैं, तैसे ब्रह्मतत्त्वविषे असंख्य जगत् होते हैं, कई सृष्टि हो बीती हैं, कई अब होती हैं, कई आगे होवैंगी, जैसे मृत्तिकाविषे घट होता है, जैसे वृक्षविषे अनेक पत्र होते हैं बहुरि मिटिजाते हैं जैसे जबलग समुद्र है, तिसविषे जल है, तबलग

ऊर्मी तरंग आवर्त निवृत्त नहीं होते कई उपजते हैं, कई लय होते हैं, तैसे ब्रह्म चिदाकाश है, तबलग त्रिलोकीजगत् उपजिकरि लय होते हैं, जबलग अपने स्वरूपका प्रमाद है, तबलग विकारसंयुक्त जगत् फुरते हैं बडे विस्तारसंयुक्त भासता है, जब आत्मस्वरूप दृष्टिकरि देखैगा, तब कोऊ विकार न भासैगा, जबलग आत्मदृष्टिकरि नहीं देखा तबलग आभासगतिविषे उपजते अरु मिटते हैं, न सत्य कहे जाते हैं, न असत्य कहाते हैं, वास्तवते ब्रह्म अरु जगत्विषे कछु भेद नहीं, समुद्रविषे तरंगकी नाई अभेद है, भिन्न होइकरि जो भासते हैं, सो अविद्याकरि भासते हैं, विचार कियेते निवृत्त हो जाते हैं, चरअचररूप जगत् नानाप्रकारकी चेष्टासंयुक्त अनंत सर्वेश्वर आत्माविषे फुरते हैं, सो भिन्न नहीं- जैसे शाखा फूल फल वृक्षते भिन्न नहीं, भिन्न भासते हैं, तौ भी अभिन्न हैं, तैसे आत्माते जगत् भिन्न भासते हैं, तौ भी भिन्न नहीं, आत्मरूप हैं ॥ हे रामजी ! मैं जो तुझको चतुर्दश भुवनसंयुक्त सृष्टि कही है, कोऊ अल्प कनिष्ठरूप हैं, कोऊ बडे हैं, सो सब परमात्मा आकाशविषे उपजते हैं अरु वही रूप हैं, कबहूं ब्रह्मतत्वसों प्रथम ब्रह्म आकाश उपजता है, सो उपजिकरि प्रतिष्ठाको पाता है, तिसते ब्रह्मा उपजता है, तब तिसका नाम आकाशज होता है, कबहूं प्रथम पवन उपजता है, प्रतिष्ठित होता है, तिसते ब्रह्मा उपजता है, सो वायुज नाम हुआ, प्रजापतिकरि कबहूं होता है, कबहूं प्रथम जल उत्पन्न होता है, जलस्थित भया, तिसते ब्रह्मा उपजिकरि जलज नाम होता है, कबहूं प्रथम पृथ्वी उत्पन्न भई है, सो विस्तार भावको प्राप्त भई है, तिसते ब्रह्मा उपजा है, तब पार्थिवज नामहुआ है, अग्निते उपज तब अग्निज नाम पाया है ॥ हे रामजी ! यह पंचभूतते ब्रह्माकी उत्पत्ति भई सो तुमको कही, जब चार तत्त्व पूर्ण होते हैं, पंचम तत्त्व सबते बढ़ता है, तब तिसते प्रजापति उपजकरि अपने जगत्को रचता है, कबहूं ब्रह्मतत्त्वते आपही फुरि आता है, जैसे पुष्पते सुगंधि फुरि आती है तैसे ब्रह्माजी उप जिकरि पुरुषभावनाते पुरुषरूप स्थित होता है, तिसका नाम स्वयंभू होता है, कबहूं पुरुष जो विष्णुदेव है, तिसकी पीठसों उपजि आता है, कबहूं नेत्रते प्रगट होता है, तब प्रजापति नेत्रज होता है, कबहूँ नाभिते उत्पन्न होता है, तब पद्मज होता है, वास्तवते सब

मायामात्र है, स्वप्नवत् मिथ्यारूपही सत्य हो भासता है, जैसे मनोराज्य सृष्टि भासि आती है, तैसे यह जगत है, जैसे नदीविषे तरंग अभिन्नरूप फुरते हैं, तैसे आत्मासों अभेद जगत् फुरता है, वास्तवते कछु है नहीं, जब शुद्ध सत्ताका आभास संवेदन फुरता है, तब वही जगत्रूप हो भासती है जैसे बालकके मनोराज्यविषे सृष्टि फुरती है, सो वास्तव कछु नहीं, तैसे यह है, कबहूं शुद्ध आकाशविषे मननकला फुरती है, तिसते स्वर्णका अंड उपजता है, अंडते ब्रह्मा उपजि आता है, कबहू पुरुष विष्णुदेव जलविषे वीर्य डारता है, तिसते पद्म उपजता है, तिसी पद्मसों ब्रह्मा प्रगट होता है, कबहू सूर्यसों फुरि आता है, इसीप्रकार विचित्ररूप रचना ब्रह्मपदते उपजती है, बहुरि लय हो जाती है, तेरे दिखानेके निमित्त मैंने अनेक प्रकारकी उत्पत्ति कही हैं, सो सब मनके फुरणेमात्र हैं, और हुआ कछु नहीं ॥ हे रामजी ! तेरे प्रबोधके निमित्त मैंने सृष्टिका क्रम कहा है, अरु इनहूंका रूप है, सो मनोमात्र है, उपजि उपजिकरि लय हो जाती है, बहुरि दुःख, बहुरि सुख, बहुरि अज्ञान, बहुरि ज्ञान, बहुरि बंध, बहुरि मोक्ष होते हैं, कबहूं मित्र, कबहू शत्रु होते हैं, बहुरि मिटि जाते हैं, जैसे दीपकका प्रकाश उपजिकरि नष्ट हो जाता है, तैसे देह उपजिकरि नष्ट हो जाते हैं, कालकी ऊनता अरु विशेषता यही है कि, कोऊ चिरकाल पर्यंत रहता है, कोऊ शीघ्रही नष्ट हो जाता है, परंतु सबही विनाशरूप हैं, ब्रह्माते आदि कीटपर्यंत जेते कछु आकार भासते हैं, सो कालके भेदको त्यागिकरि देख कि, सब नाशरूप हैं, कबहूं सत्ययुग, कबहूं त्रेतायुग, कबहूं द्वापर, कबहूं कलियुग आता है, बहुरि बहुरि वही आते हैं अरु जाते हैं, इसीप्रकार कालका चक्र पड़ा भ्रमता है, बहुरि मन्वंतरका आरंभ होता है, कालकी परंपरा व्यतीत होती है, जैसे प्रातःकालविषे बहुरि प्रातःकाल आता है, तैसे जगत्की वही वही गति है, बहुरि अंधकार, बहुरि प्रकाश होता है, ब्रह्मतत्त्वते स्फुरणरूप होइकरि बहुरि लीन होता है, जैसे तप्त लोहेते चिणगारे उड़ते हैं सो लोहविषे होते हैं; तैसे यहसबभाव चिदाकाशते उपजते हैं, सो चिदाकाशविषे स्थित हैं, कबहूं अव्यक्तरूप होते हैं, कबहूं प्रगट होते हैं, जैसे समुद्रविषे तरंग अरु वृक्षविषे पत्र होते हैं, तैसे आत्माविषे जगत् है, जैसे नेत्रदूषणकरि आकाश

विषे दो चंद्रमा भासते हैं, तैसे चित्तके फुरनेकरि आत्माविषे जगत् भासताहै, तिसीविषे स्थिति अरु लय होते हैं, जैसे चंद्रमाकी किरणैं उत्पन्न स्थित होइकरि लय होती हैं, तैसे आत्माविषे जगत् है, सो स्वरूपते कहूं आरंभ नहीं हुआ, मनके फुरणे करि भासता है ॥ हे रामजी ! आत्मा सर्वशक्ति है, जो शक्ति तिसते फुरती है, सो तिसीका रूप हो भासता है, जगत् सब असत्यरूप है, जिसके चित्तविषे महाप्रलयकी नाईं असत्यका निश्चय है, सो पुरुष बहुरि संसारी नहीं होता, स्वरूपविषे जुडा रहता है, ऐसे महामति ज्ञानवान्की दृष्टिविषे सर्व ब्रह्मका निश्चय होता है, हमको यही निश्चय है कि, संसार नहीं सर्व ब्रह्मतत्त्वही सदा विद्यमान् है, अरु अज्ञानीकी दृष्टिविषे जगत् निरंतर सत्यरूप है, संसार उसको विद्यमान् है, सो बहुरि बहुरि उपजिकरि नष्ट होता है, स्वरूपते उपजने बिनशनेकरि भी नष्ट नहीं होता; परंतु अज्ञानी जगत्को असत्य नहीं जानते, सदा स्थित जानते हैं, तिसकरि सब नष्ट होते हैं, सब पदार्थ जगत्के विनाशरूप हैं, परंतु दृश्यकरि जगत् असत्य नहीं भासता, जो पदार्थकी सत्यता दृढ हो गई है, सो नाशरूप है, रहना किसीका नहीं, कोऊ पदार्थ सत्य भासता है, कोऊ असत्य भासता है, इस जगत्विषे ऐसा कौन पदार्थ है, जो कलनारूप करनेकरि विस्ताररूप ब्रह्मविषे न बनै, यह जगत् महाप्रलयविषे नष्ट हो जाता है, बहुरि उत्पन्न हो आता है, बहुरि जन्म अरु मरना होता है, सुख, दुःख, दिशा, आकाश, मेघ, पृथ्वी, पर्वत, सब बहुरि बहुरि उपजि आते हैं ॥ जैसे सूर्यकी प्रभा उदय अस्तको प्राप्त होती रहती है, तैसे सृष्टि उदय अस्त होती भासती है, बहुरि देवता बहुरि दैत्य लोकांतर क्रम होते हैं, स्वर्ग, मोक्ष, इंद्र, चंद्रमा, नारायण, देव, पर्वत; सूर्य, वरुण, अग्नि, आदिक लोकपाल बहुरि बहुरि हो आते हैं, सुमेरु आदिक स्थान फुरि आते हैं, तमरूप जो हस्ती है, तिनके भेदनेको सूर्यरूप केसरी सिंह उपाजि आते हैं, स्वर्ग इंद्र अप्सरागण अमृतकरि आते हैं. धर्म अर्थ, काम, मोक्ष, क्रिया, कर्म, शुभअशुभरूप हो आते हैं. यज्ञ, दान, होम आदिक सर्व क्रियाकरि संयुक्त जीव संसारी होते हैं, शुभकर्म करनेहारे स्वर्गविषे विचरते हैं, सुख भोगते हैं, पुण्यके क्षीण हुएते उनको गिराय देते हैं, व मृत्युलोकविषे आते हैं,

इसप्रकार कर्म करते हैं, उपजते अरु नष्ट होते हैं. स्वर्गरूपी कमल है, तिसविषे इंद्ररूपी भँवरा है, तिस स्वर्गकी सुगंधि लेकरि वह इंद्र चलता रहता है, अपर इंद्ररूपी भँवरा स्वर्गकमलकी सुगंधिको लेने आता है, जेता पुण्यकर्म किया होता है, तेता काल सुख भोगिकरि फिर नष्ट हो जाता है, अरु सत्ययुग आते हैं, सर्व देश, काल, क्रिया, द्रव्य जीव उपज आते हैं, जैसे कुलालचक्रक रिकै बासन बनता है, तैसे चित्कला फुरणेकरि जगत्के अनेक पदार्थ उत्पन्न करती है, सुंदर स्थान जीवसंयुक्त होते हैं, बहुरि नष्ट हो जाते हैं, असत्यमात्र जगत्काल जीविततै रहित शून्य मशान हो जाते हैं, कुलाचल पर्वतके आकारवत् मेघ जल वर्षा करते हैं, तिसविषे जीव बुद्बुदेरूप होइकरि स्थित होते हैं, द्वादशसूर्याग्नि उदय होते हैं, शेषनागके मुखते अग्नि निकसता है, तिसकरि सब जगत् दग्ध होता है, बहुरि अग्निकी ज्वाला शांत हो जाती है, एक शून्य आकाशही शेष रहता है, रात्रि हो जाती है, जब रात्रिका भोग चुकता है, बहुरि जीव जीर्ण देहकरि संयुक्त मनरूपब्रह्मा रचि लेता है, इसप्रकार शून्य आकाशविषे मन जगत्को रचता है, जैसे शून्य स्थानविषे गंधर्वमायाकरि नगर रचि लेता है, तैसे जगत्को मन रचि लेता है, बहुरि प्रलय हो जाता है, इसप्रकार जगत्गण उपजिकरि महाप्रलयविषे नष्ट होते हैं, ब्रह्माके दिन क्षय हुएते फिर जब ब्रह्माका दिन होता है, तब बहुरि रचि लेता है; बहुरि महाप्रलयविषे ब्रह्मादिक सब अंतर्धान हो जाते हैं, इसप्रकार प्रलयमहाप्रलय अनेक जगत्गण व्यतीत होवै हैं, महादीर्घ मायारूपी कालचक्र पड़ा फिरता है, तिसविषे मैं तुझको सत्य क्या कहौं, असत्य क्या कहौं, सर्व भ्रांतिरूप दासुरके आख्यानवत् जगत् है, कल्पनामात्ररचित चक्र है, वस्तुते शून्य आकाशरूप है, बड़े आरंभसंयुक्त विस्ताररूप भासता है, तौ भी असत्य रूप है, जैसे भ्रमकरि दूसरा चंद्रमा भासता है, तैसे यह जगत् मूढके हृदयविषे सत्य भासता है, तुम मूढ होना नहीं, ज्ञानवान्वत् विचारिकरि जगत्को असत्य जानना ॥ इति श्रीयोगवासिष्ठे स्थितिप्रकरणे जगत्सत्यासत्यनिर्णयो नाम सप्तचत्वारिंशत्तमः सर्गः ॥ ४७ ॥

वसिष्ठ उवाच ॥ हे रामजी । भोग अरु ऐश्वर्यकरिकै जो चित्त खैंचा है सो नानाप्रकार क्रियाके आरंभ करते हैं. राजसादि सात्त्विककर्म

करते हैं, वह मूढ आत्मा शांतिको नहीं प्राप्त होता; जव भोगकी तृष्णाते रहित होवै, तव आत्माको देखै, जिन पुरुषोंको इंद्रिय गंण वश नहीं करि सकते; सो आत्माको प्रत्यक्ष हस्तविषे विल्वफलवत् देखते हैं, जिन पुरुषोंने विचार करिकै अहंकाररूपी मलिन शरीरका त्याग किया है, तिनका शरीर जगत्रूप हो जाता है, जैसे सर्प कंचुकीको त्यागता है, अरु नूतन पाता है, तैसे मिथ्या शरीरको त्यागिकरि आत्मविचारते आत्मशरीरको पाता है, ऐसे जो निरहंकार आत्मदर्शी पुरुष हैं, सो जगत्के पदार्थविषे आसक्त भासते हैं, तौ भी जन्ममरणको नहीं पाते, जैसे अग्निकरि भूना बीज क्षेत्रमें नहीं उपजता, तैसे ज्ञानवान् वहुरि जन्म नहीं पाते, अरु जो अज्ञानी भोगविषे आसक्तवुद्धि हैं- सो मन अरु शरीरके दुःखकरि दुःखी होते हैं, वारंवार जन्म अरु मरणको पाते हैं, जैसे दिन होता है, वहुरि रात्रि होती है, तैसे वे जन्ममरण पाते हैं, ताते तुम अज्ञानीकी नाईं नहीं होना, व्यवहार चेष्टा जैसे अज्ञानीकी होती है तैसे करौ, परंतु अंतरते भोगादिककी ओर चित्तको न देहु, आत्मपरायण रक्खौ ॥ राम उवाच ॥ हे भगवन् ! तुम जो कहा संसारचक्र दासुरके आख्यानवत् है, कल्पनाकरिकै रचित है, तिसका आकार वस्तुते शून्य है, यह तुमने क्या कहा इसको प्रगट करि कहौ ॥ वसिष्ठ उवाच ॥ हे रामजी ! वर्णनके निमित्त मैंने जगत् मायारूप तुमसे कहा है, अरु दासुरके प्रसंगसे कछु प्रयोजन न था, परंतु तैंने पूछा है, तौ अव सुन ॥ हे रामजी ! इस सृष्टिविषे मगध नाम देश है, सो विचित्र वृक्ष फलकरि पूर्ण है वड़ा कदंब वनस्पति ताल करिकै जंगल विचित्ररूप पक्षीसहित है, मनके सोहनेहारा चारों ओरते निरंध्र कमलपुष्पसंयुक्त तडाग वगीचे अति सुंदर देश है, तहां एक पर्वतके तटके ऊपर निरंध्ररूप केलिका खंड है अरु और अनेक वृक्ष जो फूल फलकरि पूर्ण जीवके जीवनरूप हैं, कोकिला आदिक पक्षी शब्द करते हैं तहां नगरविषे एक परमधर्मात्मा तापसी होता भया, दासुर तिसका नाम था, महातपकरि संयुक्त कदंववृक्षपर वैठिकरि वीतराग महावुद्धिमान् तप करता था ॥ राम उवाच ॥ हे भगवन् ! ऋषीश्वर तापसी वनाविषे किसनिमित्त आया था अरु कदंववृक्षपर किसनिमित्त वैठा सो कारण कहौ ॥ वसिष्ठ उवाच ॥ हे रामजी ! शरलोमानामक ऋषीश्वर तिसका पिता

होता भया, मानो दूसरा ब्रह्मा था, सो तिस पर्वतपर रहता था, तिसके गृहविषे दासुर नामक पुत्र होता भया, जैसे बृहस्पतिके गृह विषे कच हुआ; तैसे शरलोमाने पुत्रसंयुक्त वनविषे चिरकाल व्यतीत किया, तहाँ जगके क्षीण भोगकरि देहका त्याग किया अरु स्वर्ग लोकको गमन करत भया, जैसे पक्षी आलयको त्यागिकरि आकाशमें उड़ता है, तिस वनविषे दासुर एकाएकी रहिगया. पिताके वियोगकरि रुदन करत भया, जैसे कुंज वियोगकरि कुम्हलाती है, जैसे हिमऋतुविषे कमलकी शोभा नष्ट हो जाती है, तैसे दीन हो गया, तब वहां अदृष्ट शरीर वनदेवी थी, सो दया करि आकाशवाणी करत भई ॥ हे ऋषिपुत्र बुद्धिवान्! अज्ञानीकी नाईं क्या रुदन करता है, यह संसार सर्व असत्‌रूप है, तू इस संसारको देखता नहीं, यह तौ नाशरूप महाचंचल है, सब काल उत्पन्न अरु विनाश होता है, कोऊ पदार्थ स्थित नहीं रहता, ब्रह्माते आदि कीटपर्यंत जेता कछु जगत् तुझको भासता है, सो सब नाशरूप है, इसविषे संदेह कछु नहीं; ताते तू पिताके मरनेका विलाप मत कर, यह बात अवश्य इसीप्रकार है, जो उत्पन्न भया है, सो नष्ट होवैगा, स्थिर कोऊ नहीं रहैगा, जैसे सूर्य उदयहोता है, बहुरि अस्त होता है ॥ हे रामजी! जब इसप्रकार अशरीर देवीकी वाणी दासुरने सुनी, तब रक्तनेत्र दासुर धैर्यको प्राप्त भया, जैसे मेघका शब्द सुनकरि मोर प्रसन्न होता है, तैसे शांतिवान् होकारि यथाशास्त्र पिताकी जो क्रिया थी, सो सब करत भया. तिसके अनंतर सिद्धताके निमित्त तत्पदका उद्यम करत भया, ब्राह्मणका जो कर्म है, तप विद्या, सो सब शीख तिसके अध्ययनकरि श्रोत्रिय भया था, परंतु अज्ञान हृदय था, ज्ञानी न था, ऐसा श्रोत्रिय होइकारि तपके निमित्त उठि विचार किया, कि कोऊ पवित्र स्थान होवै, तहां जाय तप करौं देखता देखता पृथ्वीविषे किसी स्थानमें चित्त विश्रांतिवान् न भया, सब पृथ्वी उसको अशुद्ध दृष्टि आई, कहूं कोऊ विघ्न भासै इसप्रकार सब पृथ्वीको अशुद्ध देखिकरि विचारत भया, सो और स्थान तौ सब अशुद्ध हैं; परंतु वृक्षकी शाखापर बैठि तप करौं, ऐसा कोऊ उपाय होवे जो वृक्षकी शाखाके अग्र भागविषे मैं स्थिति पाऊं ऐसे चिंतनकरि अग्नि प्रज्वलितकारि अरु अपने मुखका मांस काटिकारि होमने लगा, तब सब देवतोंका

मुख जो अग्नि है, सो विचारत भया कि, ब्राह्मणका मांस मेरे मुखविषे न आवै, तब अरुचि जैसे देह धारिकारि ब्राह्मणके निकट आया, अरु कहत भया, जैसे ब्रह्माको सूर्य कहै, बडे प्रकाश शरीरको धरके अग्नि कहता भया ॥ हे ब्राह्मणकुमार ! जो कछु तुझको वांछित वर है सो माँग जैसे भंडारको खोलिकारि मणि लेता है, तैसे मुझसों वर लेहु जब अग्निने ऐसे कहा, तब दासुरने पुष्प धूप सुगंधि आदिककरि अग्निका पूजन किया अरु प्रसन्न होइकारि कहत भया हे भगवन् ! प्राणाहुतीके पवन शरीरसों मैंने तप करनेके निमित्त उद्यम किया है, सो और शुद्ध स्थान कोऊ नहीं मुझको भासता है, अरु मैं चाहता हौं कि, इस वृक्षकी अग्र शिखाविषे स्थित होनेकी मुझ को शक्ति होवै यहां बैठिकारि तप करौं, यह वर देहु, जब इसप्रकार मुनिपुत्रने कहा तब अग्निदेवने कहा, ऐसेही होवै, इसप्रकार कहिकारि अंतर्धान हो गया, जैसे संध्याकालके मेघ अंतर्धान हो जाते हैं तब वरको पायके ब्राह्मणकुमार प्रसन्न भया, जैसे पूर्णमासीका चंद्रमा पूर्ण कलाकरि प्रसन्न होता है, तैसे भया, जैसे चंद्रमाके प्रकाशको पायकारि कमलिनी शोभती है तैसे वरको पायकारि शोभत भया ॥ इति श्रीयोगवासिष्ठे स्थितिप्रकरणे दासुरोपाख्याने वनोपरुदनं नाम अष्टचत्वारिंशत्तमः सर्गः ॥ ४८ ॥

॥ वसिष्ठ उवाच ॥ हे रामजी ! इसप्रकार वरको पायकरि दासुर कदंबवृक्षकेऊपर चढनेकी इच्छा करता भया, कैसा है वृक्ष, अद्भुत सुंदर बड़ा विस्तार है जिसका, ऐसे वृक्षको देखिकै बुद्धिवान् दासुर वृक्षके टासके अग्रऊपर जाय बैठा, नूतनकमल पत्र ऊपर खिलते देखने लगा, दिशाका कौतुक चंचलरूप देखा, दृश्यरूप मानो चंचल पुतली है,श्याम आकाश तिसका शीश है, तिसपर श्याम केशही प्रकाशरूप हैं, पाताल तिसके चरण हैं, मेघरूपी वस्त्र है, पुष्पवत् गौर अंग है,ऐसी दृश्यरूपी एक स्त्री है,समुद्र कैलास तिसके भूषण हैं, प्राणरूपी फुरणेते जल चलता है, सो मानो उसका झनकार है, मोहरूपी शरीर वनस्पति रोम हैं, सूर्य चंद्रमा जिसके कुंडल हैं, पर्वत बडे हैं, पवन प्राणवायु है, दिशा हस्त हैं, समुद्र आरसी है, सूर्यादिक उष्णता तिसके पित्त हैं, चंद्रमा कफ है, ऐसी त्रिलोकीरूप एक पुतली है ॥ इति श्रीयोगवासिष्ठे स्थिति प्रकरणे दासुरोपाख्याने अवलोकनं नाम एकोनपंचाशत्तमः सर्गः ॥ ४९ ॥

वसिष्ठ उवाच ॥ हे रामजी ! तिसके ऊपर स्थित होइकारि वह तप करने लगा, तहां तिसका नाम कदंबतपासुर हुआ, एक क्षण दिशाको देखिकै वहांते वृत्तिको खैंचत भया, पद्मासन बांधिकारि मनको एकाग्र किया, सो दासुर परमार्थपदते अज्ञात था, फलकी कृपणताकारि कर्मांतरविषे स्थित था, फलकी ओर मन था; अरु जिस वृक्षका पत्र आकाशको लगता था, उस पत्रकेऊपर स्थित भया, अरु मनकारि यज्ञका आरंभ किया, जेती कछु सामग्री विधि थी, सो सब यथाशास्त्र मनकारि करत भया, दश वर्ष मनविषे व्यतीत किये, सर्व देवतोंका पूजन किया, गोमेध, अश्वमेध, नरमेध सब यथाविधिसंयुक्त मनकारि करत भया, ब्राह्मणोंको वह दक्षिणा दी, इस प्रकारते समय पायकारि उसका अंतःकरण शुद्ध भया, विस्तीर्ण निर्मल चित्तविषे स्थित भया, बलात्कारसों ज्ञान उसके हृदयविषे प्रकाशित भया, आत्माके आगे वासना मलिन आवरण था, सो नष्ट हो गया, जैसे शरत्कालविषे तडाग निर्मल होता है, तैसे मुनीश्वरका चित्त संकल्पते रहित भया, तब वह जो मुनीश्वर वृक्षपर टासके अग्रमें बैठा था, तहां एक वनदेवीको अग्रभागविषे देखत भया, बड़े विशाल नेत्र अरु चपलरूप पुष्पकी नाईं दंत, कामदेवकी नाईं महासुंदर शरीर, अरु कामके मदकारि पूर्ण नील कमलकी नाईं लोचन, मनके हरनेहारी है, तिसको मुनीश्वर कहता भया, अरु वह नम्रभूत होइकारि देखत भई, जैसे कोकिला कुसुमकारि पूर्ण वनलताके आगे नम्र होवै, तैसे उसको कहत भया ॥ हे कमलनयनी ! तू कौन है, कैसी तू शोभितरूप है, अरु इस पुष्पकारि संयुक्त लताविषे किसनिमित्त आय स्थित भई है, जब इसप्रकार मुनीश्वरने कहा, तब कामदेवको मोहनेहारी गौरी बोलत भई, ॥ हे मुनीश्वर ! जो पदार्थ इस पृथ्वीविषे बड़े कष्टकारि प्राप्त होता है, सो महापुरुषकी कृपाकारि सुगम प्राप्त होता है, हम इस वनकी देवता हैं, लीला करती फिरती हैं, अरु जिसनिमित्त मैं तुम्हारे आगे आई हौं सो सुनौ ॥ हे मुनीश्वर ! पिछले दिनकी जो चैत्रशुद्ध त्रयोदशी थी, तिस दिन इंद्रके नंदनवनमें उत्साह हुआ था, तब सब वनदेवियां एकत्र भई थीं त्रिलोकीमें आगमन किया था, तहां सब देवियां पुत्रसंयुक्त बड़े पुष्पकारि विलासक्रीडा करत भई अरु मैं अपुत्र थी, तिसकारण ते मैं दुःखित भई अरु दुःखके निवारणे

अर्थ तुम्हारेपास आई हौं, तुम अर्थके सिद्धकर्ता हौ वडे वृक्षपर तुम स्थित हौ मैं अनाथ पुत्रकी वाछाकारि तुम्हारे निकट आई हौं, ताते मुझको पुत्र देहु, अरु जो न देहुगे तो मैं अग्नि प्रज्वलितकारि जलि मरौंगी, इसप्रकार पुत्रका दुःख दाहकारि निवृत्त करौंगी ॥ हे रामजी ! जब इसप्रकार वनदेवीने कहा, तब मुनीश्वरने हँसकरि कहा, अरु दया करिकै हस्तमें पुष्प दिया ॥ हे सुंदरी ! तू जा, तुझको एक मास उपरांत पूजनेयोग्य अरु महासुंदर पुत्र होवैगा, परंतु तैने जो इच्छा धारी थी, जो पुत्र न प्राप्त होवै, तौ जलि मरौंगी, तिसकारि अज्ञानी पुत्र होवैगा, यत्नकारि ज्ञान तिसको प्राप्त होवैगा, जब इसप्रकार मुनीश्वरने कहा, तब प्रसन्न होइकारि वन देवी कहत भई हे मुनीश्वर ! मैं यहां रहिकारि तुम्हारी टहल करौंगी, परंतु मुनीश्वरने तिसका त्याग किया अरु कहा; हे सुंदरी, तू अपने स्थानविषे जाय रह, तब वह अपनी वनदेवीविषे जाय रही तिसको समय पाय पुत्र उत्पन्न हुआ, जब दश वर्षका बालक भया, तब मुनीश्वरके निकट ले आई, आयकरि पुत्रसंयुक्त दोनोंने प्रणाम किया, अरु पुत्रको मुनीश्वरके आगे स्थापन कारि कहत भई ॥ हे भगवन् ! यह कल्याणमूर्त्ति बालक है, सो तुम हम दोनोंका पुत्र है इसको मैंने संपूर्ण विद्या शिखाई हैं, अरु परिपक्व किया है सर्वका वेत्ता भयाहै, परंतु केवल ज्ञानको प्राप्त नहीं भया, ताते जिसकारि यह संसारयंत्रविषे वहुरि दुःख नपावै,सो ज्ञान कृपाकारि तुम इसको उपदेश करौ. हे प्रभो ! जो शुभ कुलविषे उपजा होवै, अरु चाहै,मेरा पुत्र मूढ रहै, सो ऐसी बात कौन है ? हे रामजी ! जब इसप्रकार देवीने कहा, तब मुनीश्वरने कहा, इसको तुम यहां छोडि जाहु, तब वह देवी छोडिकारि गमन करत भई अरु बालक पिताके पास रहा, सो बडे यत्नकारिकै तिसको ज्ञानकी प्राप्ति भई, नानाप्रकारके उक्त आख्यान, इतिहास, अरु अपने दृष्टांत कल्पिकारि चिरपर्यंत पुत्रको पढाता भया, वेदवेदांतका निश्चय अनुद्वेग होइकारि उपदेश किया, विस्तारकारिकै कथाके क्रम जो अनुभव बड़े गूढ अर्थ हैं, सो कहे, जो अपने अनुभववशते प्रत्यक्ष हैं, सो बलकारिकै उपदेश किया शृंगार आदिक जो अष्ट कर्म हैं,

तिनते रहित परमार्थतत्त्वको उपदेश किया, जो अर्थ भये कहना है, सो महात्मा पुरुषने इसको उपदेश किया, तिसकरि जागा, अरु शांत आत्मा होता भया, जैसे मेघके शब्दकारि मोर प्रसन्नहोता है, तैसे वह बालक प्रसन्न भया ॥ इति श्रीयोगवासिष्ठे स्थितिप्रकरणे दासुरसुतबोधनं नाम पंचाशत्तमः सर्गः ॥ ५० ॥ ॥ वसिष्ठ उवाच ॥ हे रामजी ! तब मैं भी कैलासवाहिनी गंगाजीके स्नानको चला जाता था; अदृष्ट शरीरसंयुक्त आकाशकी वीथीमें सप्तर्षिके मंडलते चला था, जिस वृक्षपर वह बैठे थे, तिसके पाछे मैं आया, तब कछुक शब्द श्रवण किया, वनविषे जो वृक्ष हैं, तिनके उपर छिद्रसों शब्द होता है, जैसे मूँदे कमलसों भँवरेका शब्द होता है तैसे वृक्षके अग्रसों शब्द श्रवण किया, जो कहता है, हे पुत्र बुद्धिवान् ! तू श्रवण कर, मैं तुझको वस्तुके निरूपण निमित्त आश्चर्याख्यान कहता हौं ॥ एक राजा होता भया, सो महापराक्रमी अरु त्रिलोकीविषे उसका प्रसिद्ध नाम श्वेतथ, बडा लक्ष्मीवान् जगत्की रचना क्रम वह करताहै, अरु सब मुनि जो जगत्विषे बड़े नायक हैं, सो भी उत्तम चूडामणिकरिकै तिसको शीशविषे धरते हैं, अरु कर्म जो करताहै, सो सहस्र असंख्यहैं, नानाप्रकारके आश्चर्य व्यवहार करता है, अरु तिस महात्मा पुरुषको त्रिलोकीविषे किसीने वश नहीं किया, सहस्रही तिसके आरंभ हैं, सुख अरु दुःखको देनेहारा है, तिसके आरंभकी संख्या कछु कही नहीं जाती, जैसे समुद्रके कल्लोलतरंगकी कछु संख्या कही नहीं जाती, तैसे उसके आरंभ हैं, अरु उसका जो वीर्य पराक्रम है, सो किसी शस्त्र अस्त्र अग्निकारि छेदा नहीं जाता, जैसे आकाशको मुष्टिप्रहारकरि तोडि नहीं सकता, तैसे वह है, बड़ी विस्तृत तिसकी भुजा हैं, अरु लीलाकरि आरंभको रचता है, तिसके आरंभ दूर करनेको कोऊ समर्थ नहीं, इंद्र विष्णु सदाशिव भी समर्थ नहीं ॥ हे महाबाहो ! तीन उसके देह हैं, दिशाको भरि रहे हैं, तीन देहकरि जगत्विषे पसारि रहा है, उत्तम अधम मध्यम करिकै अरु बडे विस्ताररूपी आकाशते उत्पन्न भया है, अरु तहांही शरीरविषे स्थित भया है, जैसे आकाशका पक्षी आकाशविषे रहता है, जैसे पवन आकाशविषे है, तैसे तिस पुरुषने तिस परमआकाशविषे बगीचेसंयुक्त एक स्थान अपनी क्रीड़ाका रचा है, पर्वतके शिखरमें

मोतीकी वल्लियां रची हैं, सत बावडियां करी हैं, तिनकरि स्थान शोभता है, दो दीपक रचे हैं, जो तेल अरु बातीते रहित प्रकाशते हैं, सो शीत अरु उष्णरूप हैं, कबहूं अधको, कबहूं ऊर्ध्वको नगरविषे भ्रमते हैं, मूर्ख वरांकगण रचे हैं, कोऊ गण ऊर्ध्व स्थित हैं, कोऊ मध्य, कोऊ अधविषे स्थित हैं, कई दीर्घकालकरि नष्ट होते हैं, कई शीघ्रही नष्ट हो जाते हैं, कई वस्त्रकरि आच्छादित हैं कई वस्त्ररहित हैं, नव द्वारकरि स्थान किया है, तिसमें निरंतर बहुत वृक्ष रोपे हैं, पंच दीप देखनेनिमित्त किये हैं, तीन स्तंभ किये हैं, तिनविषे और छोटे स्तंभ किये हैं, मूलमेंके तिनऊपर लेपन किया है, पादतलीकरि संकुली किये हैं, महामायाकरि तिस राजाने वह नगर रचा है, नगरकी रक्षानिमित्त सेना रची है, एक नीति देखनेवाले यक्ष है, विवरक गणकारि वह चलते नानाप्रकारकी क्रीडा करते हैं, तिन शरीरकरि सब ठौरविषे विचरता है, यक्ष सब ठौरविषे समीप रहता है, लीलाकारि एक स्थानको त्यागिकरि और स्थानविषे जाय चेष्टा करता है, कबहूं इच्छा होती है, तब चंचल चित्तसों भविष्यत् पुरको रचिकरि तिसविषे स्थित होता है, भयकरि वेष्टित हुआ तहांते उठि आता है, वेगकरिकै गंधर्वनगरको रचता फिरता है, जब इच्छा करता है कि, मैं उपजों तब उपजि आता है, जब इच्छा करता है कि, मैं मरिजाऊं तब मरिजाता है, जैसे समुद्रविषे तरंग उपजते हैं, बहुरि लय हो जाते हैं, इसप्रकार राजा बडे व्यवहारको करता है; वारंवार रचना करिकै कबहूं आपही रुदन करने लगता है, मैं क्या करौं, मैं अज्ञानी हौं, मैं दुःखी हौं, चित्तसों आतुर होता है, ऐसे विचार करिकै कबहूँ उदय होकरि बड़ा स्थूल हो जाता है, जैसे वर्षाकालकी नदी बढती है, तैसे बढिकरि आपको सुखी मानता है, विस्तारको पायकरि चलता फिरता है. बड़े प्रकाशकरि प्रकाशता है, तिस महीपातिकी बड़ी महिमा है, उचितरूप होइकरि नगरमें स्थितहै ॥ इति श्रीयोगवासिष्ठे स्थितिप्रकरणे श्वेतथवैभववर्णनं नाम एकपंचाशत्तमः सर्गः ॥ ५१ ॥

हे रामजी ! जब इसप्रकार दासुरने कहा, तब वृक्षके अग्रभाग बैठे पुत्रने प्रश्न किया ॥ पुत्र उवाच ॥ हे भगवन् ! वह श्वेतथ राजा है कौन जगत्विषे जिसकी कीर्त्ति प्रसिद्ध है, अरु कौन नगर तिसने रचा है, जो भविष्यत् नगरविषे रहता है, रहना तो वर्तमानविषे

होता है, भविष्यत्‌विषे कैसे रहता है, यह विरुद्ध अर्थ कैसे बनता है ? इस वचनकरि मेरी बुद्धि मोहित भई है ॥ दासुर उवाच ॥ हेपुत्र ! मैं तुझको यथार्थ कहता हौं तू श्रवण करु, जिसके जाननेते संसारचक्रको ज्योंका त्यों देखैगा, कि इस वस्तुते क्या है, यह संसार आरंभ असत्य उठा है, बड़े विस्तारसंयुक्त भासता है, तौभी असत्यरूप है, कछु हुआ नहीं, जैसे यह संसार स्थित है, तैसे मैं तुझको कहता हौं, यह आख्यान मैंने तुझको जगत्‌ निरूपण निमित्त कहा है ॥ हे पुत्र ! जो शुद्ध अचैत्य चिन्मात्र चिदाकाश है, तिसते जो संकल्प उठा है. तिस संकल्पका नाम श्वेतथ है, सो आपही उपजता अरु आपही लीन हो जाता है, सब जगत्‌ तिसका रूप है, जो बड़े विस्तारसंयुक्त भासता है, सो तिसके उपजनेकारि जगत्‌ उपजता है, नष्ट होनेकारि नष्ट होताहै. ब्रह्मा, विष्णु, रुद्र, इंद्रादिक सब तिसके अवयव हैं, जैसे वृक्षके अंग टास होते हैं, जैसे पर्वतके अंग शिखर होते हैं, तैसे तिसके अंग हैं, शून्य आकाशविषे तिसने यह जगत्‌रूपी नगर रचा है, प्रतिभासके अनुसंधानते वही चित्‌कला विरंचिपदको प्राप्त भई है, अरु चतुर्दश स्थान जो कहे हैं सो विस्तारसंयुक्त चतुर्दश लोक हैं, वन बगीचे उपवनसंयुक्त पर्वत महाचल मंदराचल सुमेरु आदिक क्रीड़ाके स्थान हैं, उष्ण शीत जो दो दीपक तेल बातीविना कहे हैं, सो सूर्य अरु चंद्रमा हैं, जगत्‌रूपी नगरविषे अध ऊर्ध्वको प्रकाशते हैं, सूर्यकी किरणोंका जो प्रकाश है, मानो मोतीके तरंग फुरते हैं, अरु इस समुद्र आगे क्षीर जल आदिक जो सप्त समुद्र हैं, सो बावडियां हैं, जीवरूपी किरायती व्यवहार करते लेते देते अध ऊर्ध्वको जाते हैं, पुण्यकरि स्वर्गलोकमें जाते हैं, पापकरि नरकको चले जाते हैं अरु जगत्‌विषे संकल्पकरिके जो क्रीडाके निमित्त तिसने विवरण रचे हैं, सो देह है, कोऊ देवता होइकरि ऊर्ध्व स्वर्गविषे रहते हैं, कोऊ मनुष्य होइकरि मध्यलोकविषे रहते हैं, अरु दैत्य नाग आदिक पातालविषे रहते हैं, पवनरूपी प्रवाहकरि समस्त यंत्र चलते फिरते हैं, अस्थितरूपी तिनविषे लकडियाँ हैं, रक्तमांसकरि लेपन किये हैं, कई दीर्घकालकरि नष्ट होते हैं, कई शीघ्रही नष्ट हो जाते हैं, शीशपर केश हैं, सो श्याम वस्त्र है, कर्ण, नासिका, नेत्र जिह्वा अरु मूत्रपुरीषके स्थान लिंग इंद्रिय गुदा ये नव द्वार हैं,

तिनसों निरंतर पवन चलता है, शीत उष्ण रूपसों प्रान अपान है, नासिका आदिक तिसके झरोखे हैं, भुजारूप गलियां हैं, पंच दीपक पंच इंद्रिया हैं॥ हे महाबुद्धिमान्! यह सर्व संकल्परूपी मायाकरि रचे हैं; अहंकाररूपी तिसविषे यक्ष हैं, महाभयका स्थान यह अहंकारकरि होता है, देहरूपी विवरण हैं, सो अहंकाररूपी यक्षसंयुक्त विचरते हैं,असत्यरूप परंतु सत्य होइकरि इसकेसाथ पीड़ा करते हैं, जैसे भांडविषे बिलाड बैठे, जैसे भस्त्रकाविषे सर्प बैठे, जैसे बाँसविषे मोती है, तैसे देहविषे अहंकार है, क्षणविषे उदय होता है, क्षणविषे शांत हो जाता है, दीपकवत् देहरूपी गृहविषे संकल्प उठता है, जैसे समुद्रविषे तरंग उठते हैं, अरु भविष्यत् नगर जो कहा है सो सुन. अपना जो कोऊ स्वार्थ चिंतवता है, कि यह कार्य इसप्रकार करौंगा अमुक दिन इस देशको जाऊंगा, जैसे चिंतवता है, तैसे भासि आता है, तिसविषे जाय प्राप्त होता है, सो अनहोतेको वर्त्तमान करता है, जबलग दुर्वासना है, तबलग अनेक दुःख होते हैं, अरु यह दुष्ट मन अहंकार स्थूल हो जाता है, अरु संकल्पते रहित हुए शीघ्रही इसका नाश होता है, जब तू संकल्पनाश करैगा, तब शीघ्रही कल्याणको प्राप्त होवैगा, अपना संकल्प उठिकरि आपहीको दुःखदायक होता है, जैसे बालकको अपने परछाईंविषे वैतालक ल्पना होती है,अरु आपही भय पाता है, तैसे अपना संकल्प अनंत दुःखदायक होता है सुख कोऊ नहीं पाता, संपूर्ण जगतविस्तार संकल्पकरि होता है, आत्माकी सत्ताकरि बढता है, बहुरि नष्ट हो जाता है, विचार कियेते नहीं रहता, जब मनविषे विचार उत्पन्न होता, तब नष्ट हो जाता है, जैसे सायंकालविषे धूपका अभाव हो जाता है, जैसे प्रकाश उदय हुए तमका अभाव होजाता है, विचार करिकै संकल्प आपही नष्ट हो जाते हैं, मन आपही क्रिया करता है, अरु आपही दुःख पाता है, बहुरि रुदन करने लगता है, जैसे वानर काष्ठके यंत्रकी कीलीको हिलाइकरि फँसता है, अरु निकस नहीं सकता, दुःख पाता है, तैसे अपनाही संकल्प आपको दुःखदायक होता है, संकल्पकरि जो कल्पित विषयका आनंद है, सो जब जीवको प्राप्त होता है, तब ऊंची ग्रीवा करि हर्षवान् होता है, जैसे अकस्मात् किसी वृक्षके फल ऊंटके मुखमें आय लगैं, अरु वह ऊंची ग्रीवाकरिकै विचारै, तैसे अज्ञानी जीव विषयकी प्राप्तिविषे

ऊंची ग्रीवाकरि हर्षवान् होते हैं, क्षणविषे जीवको विषयकी प्राप्ति उपजती है, विशेषकरिकै इष्टकी प्राप्तिविषे बढ़ते हैं, जब कोऊ दुःख होता है, तब वह प्रीतिकी प्रसन्नता उठ जाती है, क्षणविषे विकारी होता है, क्षणविषे प्रसन्न हो बैठताहै, वस्तुगुणकी प्राप्तिविषे हर्षवान् होता है, शुभसंकल्पकरि शुभको देखता है, अशुभ संकल्पकरि अशुभको देखता है, शुभकरि निर्मल होता है, अशुभकरि मलिन होता है, जैसे आगे तेरी इच्छा होवै तैसे कर, श्वेतथके मैंने जो तुझको यह तीन शरीर कहे थे, उत्तम, मध्यम, अधम, सो सात्त्विक, राजस, तामस यह तीन गुण तीन देह हैं, यही सबका कारण जगत्विषे स्थित है, जब तामसी संकल्पकेसाथ मिलता है, तब नीचरूप पापचेष्टा कर्म करताहै, महाकृपणताको प्राप्त होता है, मृतक होइकरि कृमि कीट जन्मको पाताहै, जब राजसी संकल्पकेसाथ मिलता है, तब लोकव्यवहार करता है, स्त्रीपुत्रादिकके रागसों रंजित होता है, पापकर्म नहीं करता, तब मृतक होइकरि संसारविषे मनुष्यशरीर पाता है, जब सात्त्विकी भावविषे स्थित होता है, तब धर्मज्ञानपरायण होता है, मोक्ष पदकी तिसको अंतर्भावना होती है, धर्मज्ञान पायकरि चक्रवर्ती राजाकी नाई स्थित होता है, जब तिन भावोंको त्याग करता है, तब संकल्पभाव नष्ट हो जाताहै, अक्षय परमपद शेष रहता है, ताते संसारदृष्टिको त्याग करिकै मनकरि मनको वश करके अंतरबाहिरते जो दृश्यका अर्थ चित्तविषे स्थित है, तिस संस्कारअंकुरको निवृत्त करके शांतात्मा होवै ॥ हे पुत्र ! इसविना और उपाय नहीं, जो तू सहस्र वर्ष दारुण तप करै, अथवा लीलावत् आपको शिलासम चूर्ण करै, अथवा समुद्रविषे प्रवेश करै, वडवाग्निविषे प्रवेश करै, गर्तविषे गिरै, खड्गधाराके सन्मुख युद्ध करै, अथवा सदाशिव तुझको उपदेश करै. ब्रह्मा, विष्णु, बृहस्पति दया करिकै उपदेश करैं, अथवा पातालविषे जाय स्थित होवै, पृथ्वीविषे स्वर्ग विषे जाय स्थित होवै, इत्यादिक अपर स्थानविषे जावै, तौ भी अपर उपायकल्याणके निमित्त कोई नहीं, जैसे संकल्पका उपशम करना उपाय है, तैसे जो अनादि अविनाशी अविकारी परमपावन सुख है, सो संकल्पके उपशमते पाता है, ताते यत्नसों संकल्पको उपशम करहु, जेते कछु भाव पदार्थ हैं, सो सब संकल्परूपी तत्त्वसे परोए हुए हैं, जब संकल्परूपी तंतु टूटि पड़ता है, तब नहीं

जानता कि, पदार्थ कहां गए, सत्य असत्य पदार्थ सब संकल्पमात्र हैं, जबलग संकल्प हैं, तबलग यह भासते हैं, संकल्पके निवृत्त हुएते असत्य हो जाते हैं, संकल्पकरिकै जैसी जैसी चितवना करता है, क्षणविषे तैसे हो जाता है, संसारभ्रम संकल्पकरि उदय भया है, संकल्प निवृत्त कियेते चित्त अद्वैतके सन्मुख होता है, सर्व जगत् असत्यरूप है, मायाकरिकैं रचा है, जब संकल्पको त्यागिकरि यथाप्राप्तिविषे विचरैगा, तब तुझको खेद कछु न होवैगा, असत्यरूप जगत्के कार्यविषे दुःखित होना व्यर्थ है; आपसंयुक्त जगत्को असत्य जानैगा, तब दुःख भी न होवैगा, जबलग जगत्का सद्भाव भासता है, तबलग दुःख होता है, जब असत्य जाना, तब दुःख भी नहीं रहता, जो बोधवान् हैं, तिनको कोई दुःख नहीं भासता, ताते जो नित्य प्राप्त सत्तारूप है, तिसविषे स्थित होहु, विकल्पके जो बड़े समूह हैं, तिनको त्याग करहु, अरु जो अद्वैत आत्मपद है, तिसविषे विश्रामसुखको प्राप्त होइकरि सुषुप्तिरूप चित्तवृत्तिको धारिकरिकै विचरहु ॥ इति श्रीयोगवासिष्ठे स्थितिप्रकरणे संसारविचारो नाम द्विपंचाशत्तमः सर्गः ॥ ५२ ॥ पुत्र उवाच ॥ हे भगवन्! संकल्प कैसा है? अरु सो उत्पन्न कैसे होता है? अरु वृद्ध कैसे होता है? अरु नाश कैसे होता है? ॥ दासुर उवाच ॥ हे पुत्र! अनंत जो आत्मतत्त्व है, सो सत्ता समानरूप है, सो चेतनसत्ता जब द्वैतके सन्मुख होती है, तब चेतनताका लक्षण जो ज्ञानरूप है, सो संकल्पका अंकुरज्ञान वही बीजरूपी संवित् उल्लासमात्र सत्ताको पायकरि घनभावको प्राप्त होता है, सोई फुरनाकरि आकाशको चेतता है तिसकरि आकाशको पूर्ण करता है, जैसे जलकरि मेघ स्पष्ट होता है, तैसे फुरणेकी दृढताकरि आकाश होता है, अपना स्वरूप इसको आत्म सत्ताते भिन्न भासताहै, यह भावना चित्तविषे भावित हो जाती है, जैसे बीज अंकुरभावको प्राप्त होता है, तैसे चित्त संवित् संकल्पभावको प्राप्त होता है, संकल्पहीकरि संकल्प उपजता है, आपहीकरि स्वतः बढता है, तिसकरि सुखी दुःखी होता है, जब अचलरूपते चित्तसंवेदन दृश्यकी ओर फुरताहै, तब तिस फुरणेका नाम संकल्प होता है, स्वरूपते भूलिकरि जब दृश्यकी ओर फुरता है, तब संकल्प वृद्ध होता है, सोई वृद्ध हुआ जगज्जालको रचता है, जेता कछु प्रपंच है, सो संकल्पका रचा संकल्प मात्र है,

जैसे समुद्र जलमात्र होता है, जलते इतर नहीं, तैसे जगत् भी संकल्पते इतर नहीं, अरु आकाशमात्रते भ्रांतिरूप जगत् फुरि आया है, जैसे मृगतृष्णाका जल भासता है, जैसे आकाशविषे द्वितीय चंद्रमा भासता है, तैसे तुम्हारा उपजना अरु बढना भ्रममात्र है, जैसे तमका चमत्कार होता है, तैसे यह जगत् मिथ्या संकल्पकारि उदय हुआ तुझको भासता है ॥ हे पुत्र ! तेरा उपजना भी असत्य है, अरु बढना भी असत्य है, जब तू इसप्रकार जानैगा, तब इसकी आस्था लीन हो जावैगी यह पुरुष है, वह स्त्री है, मैं हौं, तूहै, यह जो भाव सुखदुःखकारि संयुक्त पदार्थ भासते हैं, सो यह अज्ञानकरिकै व्यर्थभासते हैं, इनविषे आस्थाकरिकै अंतरते तपता रहता है. अहं त्वं आदिक दृश्य सब असत्यरूप हैं, जब यह भावनाकरैगा तब तू पृथ्वीविषे कल्याणरूप होइकरि विचरैगा, बहुरि संसारको प्राप्त न होवैगा. अहं त्वं ते आदि लेकरि जब सब दृश्यकी भावना हृदयते जावै, तब इसका अभाव हो जावैगा ॥ हे पुत्र ! फलको तोडिकारि मर्दन करनेविषे भी कछु यत्न होता है, परंतु आपकरि सिद्ध जो भावमात्र संकल्पका त्याग करना तिसविषे यत्न कछु नहीं, फूलके ग्रहणविषे भी यत्न है, हस्तका स्पंद होता है, ताते जो कछु भावरूप है, सो है नहीं, तौ तिसके त्यागनेविषे क्या यत्न है, ताते कछु है नहीं, यह दृश्य प्रपंच सबका जो होना है तिसका विपर्ययभाव करना कि, न मैं हौं, न जगत् है, जिस पुरुषने इस दृश्य जगत्का सद्भाव संकल्प नाश किया है, सो शांतरूप होता है, यह संकल्प तौ एक निमेषविषे लीलासों जीति लेताहै, भावरूप जो आत्मसत्ता है, तिसविषे जब अपना आप उपशम करै, तब स्वस्तिक होता है, अपने मनके संकल्पकारि मन संकल्पको छेदेगा, जो आत्मतत्त्व विषे स्थित होवैगा इसविषे क्या यत्न है, संकल्पके उपशम हुएते जगत् उपशम होता है, अरु सब दुःख संसारके मूलते नाश हो जाते हैं, संकल्प मन बुद्धि जीव अहंकार आदिक सब नाम हैं, सो भेद कहनेमात्र हैं, इनके अर्थरूपाविषे भेद कछु नहीं, जेता कछु दृश्य प्रपंचजाल है, सो सब संकल्पमात्र है, संकल्पके अभाव हुएते कछु नहीं रहता, ताते संकल्पको हृदयते काटहु, आकाशकी नाईं जगत् शून्य है, जैसे आकाशविषे नीलता भ्रांतिकारि भासती है, तैसे यह जगत् असत्य विकल्पकारि उठा है, संकल्प अरु जगत्

दोनों असत्य हैं, ताते कछु नहीं, सब असत्यरूप है, असत्यरूप संकल्पने सिद्ध किया है, तिसकी भावनामें आस्था करनी मिथ्या है, जब ऐसे जाना तब इष्टरूप किसको जानै अरु वासना किसकी करै, अरु अनिष्ट किसको जानै, सब वासना नष्ट हो जाती हैं, वासनाके नष्ट हुएते सिद्धताकी प्राप्ति होती है ॥ हे पुत्र ! जो यह सत्य जगत् होता तौ विचार कियेते भी दृष्ट आता, सो तौ विचार कियेते इसका शेष कछु नहीं रहता, जैसे प्रकाशकरि देखेते तम दृष्ट नहीं आता, तैसे विचारकरि देखेते जगत् सत्य नहीं भासता, ताते अविचारते सिद्ध है, सो असत्यरूप है, बुद्धिकी चपलताकरिकै भासता है, जिस पुरुषकी जगत् भावना उठि गई है, तिसको जगत्के सुखदुःख स्पर्श नहीं करते, निर्णय करि जो असत्यरूप जाना, तिसविषे बहुरि आस्था नहीं उदय होती, जब आस्था गई, तब भाव अभावबुद्धि भी नहीं रहती, संसारके सुख दुःख सब मिथ्या मनके फुरनेकरि रचे हैं, मनोराज्यके नगरवत् स्थित भए हैं, भूत भविष्य वर्तमान काल जगत् मनकी वासनाकरि फुरता है, मानसी शक्तिविषे स्थित है, सो मन क्षणविषे बड़ा दीर्घ आकार करता है, क्षणविषे सूक्ष्म आकारको धरता है, ग्रहण करिये तौ ग्रहण किया नहीं जाता; जैसे समुद्रकी लहरीको ग्रहण करिये तो पकड़ी नहीं जाती तैसे मन है, यद्यपि बड़े आकारसंयुक्त जगत् भासता है, तौ भी कछु वस्तु नहीं, क्षणभंगुर असार है, वासनाकरि जगत् भासता है, वासनाके क्षय हुएते शांत हो जाता है, जब तुझको वासना फुरै, तब तिसी कालविषे तिसको शीघ्रही त्याग करहु, यह दृश्य प्रपंच कछु है नहीं, असत्यरूप है, ऐसी भावना करिकै वासना नष्ट हो जावेगी, इसविषे संदेह कछु नहीं, जो यह संकल्परूप जगत् होवै, तौ इसके त्याग करनेविषे यत्न होवै यह तौ असत्यभूत प्रपंच है, तिसका अनर्थ चिकित्साकरि तुझको खेद कछु न होवैगा; जो हैही नहीं; तिसके त्यागविषे क्या यत्न है, जो यह संसार मूल सत्य होता तौ इसके नाशनिमित्त कोऊ न प्रवर्तता, जैसे कोयलेको श्वेत करने निमित्त धोनेको कोऊ नहीं प्रवर्तता, तैसे सब जगत् असत्यरूप है, विचार कियेते कछु नहीं पाता, ताते असत्य अहंकाररूप दृश्यको त्यागिकरि सत्य आत्माका अंगीकार करहु, जैसे धान्यसों तुष डारि देते हैं, अरु चावलका अंगीकार करते हैं, तैसे यत्नकरिकै

सर्व दृश्यको त्याग आत्मपदविषे प्राप्त होहु यह परमपुरुषार्थ है, और क्रिया किसनिमित्त करता हैं, मलरूप संसारका नाश करहु, जैसे तंदुलसों तुष दूर करते हैं, तब वास्तव आकार तंदुल भासतेहैं. ताते युक्तिकरिकै जान कि, संसार असत्य कृत्रिमरूप है, तिसके नाशविषे क्या यत्न है, जैसे तांबेसों मल युक्तिकरिकै दूर करतेहैं, तब निर्मल भासताहै, तैसे युक्तिकरि दृश्य मल जब दूर होवै तब बोधस्वरूप प्राप्त होवै, तिस कारणते उद्यमवान् होहु ॥ हे पुत्र! यह संसार संकल्पविकल्पते उत्पन्न भया है, विचारकरि अल्पयत्नसों निवृत्त हो जाता है. अरु तू देख कि, यह कौन है, जो सदा स्थिर रहता है, सब पदार्थ असत्यरूप हैं, देखते देखते नष्ट हो जाते हैं, जैसे दीपकके प्रकाशकरि अंधकार अभाव हो जाता है, जैसे भ्रांति दृष्टिकरि आकाशविषे दूसरा चंद्रमा भासता है, स्वच्छ दृष्टिकरि दूसरा अभाव हो जाता है, तैसे विचारकरिकै जगद्भ्रम नष्ट होता है, न यह जगत् तेरा है, न तू इसका है, यह भ्रमकरि भासता है भ्रमको त्यागिकरि देख जो असत्यरूप है अपनी गुरुत्वताका बड़ा ऐश्वर्य प्रकाशका विलास है, सो तेरे हृदयविषे मत होवै, यह मिथ्या भ्रमरूप है, अंतरते उठै तौ आपको भी अरु जगत्को भी असत्य जान आत्मतत्त्वते इतर कछु नहीं, जब ऐसे निश्चय करेगा, तब जगद्भावना नष्ट हो जावैगी, सर्वात्मप्रकाश भासैगा ॥ इति श्रीयोगवासिष्ठे स्थितिप्रकरणे दासुरोपाख्याने जगचिकित्सावर्णनं नाम त्रिपंचाशत्तमः सर्गः ॥ ५३ ॥ वसिष्ठ उवाच ॥ हे रघुकुलरूपी आकाशके चंद्रमा रामजी ! जब इसप्रकार पुत्रको उपदेश किया; तब मैं उसके पीछे आकाशविषे स्थित था, सो कदंबवृक्षके अग्रभागमें जाय स्थित भया, जैसे मेघ वर्षाते रहित तूष्णीं होइकरि पर्वतके शिखरपर जाय स्थित होता है, तैसे मैं जाय स्थित भया, आगे दासुर जो शूरमा अज्ञानरूपी शत्रुका नाश करता है, अरु परम शक्तिकरि प्रकाशवान् है, अरु तप करि देह ऐसा हो गया है, मानो स्वर्णका चमत्कार है, तिस दासुरने मुझको अपने अग्रमें देखा कि, वसिष्ठमुनी आया है, ऐसे जानिकरि उठ अर्घ्य पाद्यकरि पूजन किया, बहुरि हम दोनों वृक्षके पत्रऊपर बैठ गये बहुरि पूजन किया, जब पूजन करने लगा, तब हम दोनों कथाका प्रसंग चलाने लगे, तिस चर्चाके वचनकरि तिसके पुत्रको

जगातेभये संसारसमुद्रके पार करनेनिमित्त वहुरि मैं वृक्षकी ओर देखता था. केसा वृक्षहै कि, महासुंदर फूलफलनकरि शोभायमान है, अरु दासुरकी इच्छाद्वारा मृग अरु पक्षी तिसके आश्रय रहते हैं, वहुत गुणसंयुक्त वृक्ष मैं देखता भया; अरु तिसके पुत्रको हम और और कथा करिके विद्वान्दृष्टिसों रमणीय दृष्टांत अरु युक्तिसहित उपदेश करत भये नानाप्रकारके विचित्र इतिहासकरि तिस वालकको जगाया, रात्रिको सिद्धांत कथाविषे लागे रहे, हमको एक मुहूर्तवत् रात्रि व्यतीत हुई, जब प्रातःकाल भया तव मैं ऊठि ठाढ़ाभया दासुर अपने पुत्रसंयुक्त मेरेसाथ चला, जहांलग कदंबका आकाशतल था, तहांलग आये, तिसके अंतर मैं वहुतकरि तिनको ठहरावता भया, अरु मैं गंगाजीकी ओर चला, वहुरि स्नान करिकै सप्तर्षिके मंडलविषे जाय स्थित भया ॥ हेरघुनंदन! यह दासुरका आख्यान मैंने तुझको कहा है, यह जगत् प्रतिबिंव आभासके सदृश है, प्रत्यक्ष भासता है; तौ भी असत्यरूप है, जगत्के निरूपण निमित्त यह आख्यान श्रवण करायाहै, कि यह जगत् असत्यरूप है, कछु वस्तु नहीं, बुद्धिकरि तुझको राग मत होवै, इस कथाका सिद्धांत हृदयविषे धारिकरि विचरैगा तव संसाररूपी मल तुझको स्पर्श न करैगा ॥ इति श्रीयोगवासिष्ठे स्थिति प्रकरणे दासुरोपाख्यानसमाप्तिर्नाम चतुःपंचाशत्तमः सर्गः ॥ ५४ ॥ ॥ वसिष्ठ उवाच ॥ हे रामजी ! यह प्रपंच है नहीं, ऐसे जानिकै सव पदार्थते निराग होहु, जो वस्तुही न होवै, तिसकी आस्था करनी क्या है, यह प्रपंच जो दृष्ट आता है, इसके भासने न भासनेविषे तुमको क्या है, तुम निर्विघ्न होइकरि आत्मतत्त्वविषे स्थित होहु, ऐसे जानो, जगत् है भी अरु नहीं भी, इस निश्चयकरि भी तुम असंग होहु इस चल अचल दृष्टि आनेविषे तुमको क्या खेद है? ॥ हे रामजी ! यह जगत् न आदि है, अनादि है, केवल श्वेतथका जो चित्तसंवित् मनरूपहै, तिसके फुरनेकरिकै इसप्रकार भासता है, वास्तवते कछु नहीं, यह जगत् किसी कर्ताने किया नहीं, न किसी अकर्तानेकिया है, केवल आभासरूप है, आभासविषे कर्त्ता अकर्त्ता पदको प्राप्त भया है, अकृत्रिमरूप है, किसीका किया तौ नहीं, इसकेसाथ तुझको संवंध मत होवै यह भावना हृदयविषे धार कि, है कछु नहीं, काहेते जो किसी कर्ताकरि हुआ नहीं, आत्मा सर्व

इंद्रियोंते अतीत है, जडकी नाईं अकर्तारूप है, तिसको कर्त्ता कैसे कहिये ? यह कहना नहीं बनता, अकस्मात् यह जगज्जाल फुरि आया है, सो आभासरूप है, जो अकस्मात् उपजा तिसविषे आसक्त होना क्या है यह असद्भ्रांतिरूप है, इसविषे आस्था मूढ बालक करते हैं, बुद्धिवान् तौ नहीं करते, स्वरूपते जगत् कछु उपजा नहीं, अरु नाश भी कछु नहीं होता, निरंतर दृष्टिमें आता है; अज्ञानकरि वारंवार भावना होती है, तौ भी जगत् कछु है नहीं, असत्‌रूप है, प्रत्यक्ष निरंतर नष्ट होता जाता है, तुम विचार करिके देखो, कि अवस्था स्थान कहां जाते हैं, अरु कहां गये हैं, ताते तुम सब इंद्रियोंते अतीत जो आत्मतत्त्व अकर्त्तारूप है, तिसविषे स्थित होइकरि विगत ज्वर होहु, वास्तवते जगत् कछु बना नहीं, आभाससत्ताविषे बना भासता है, तुम आभाससत्ताविषे नित्य दृढ होहु, जैसे हुआ है, तैसे है, भाव अभाव दुःख दिशा है, आदर्शरूपी आभासविषेदीर्घरूप दृश्य स्थित भया, सो जैसे हुआ है, तैसे है, विपर्यय नहीं होता ॥ हे रामजी ! दृश्य धर्मविषे आपराजित काल है, सो अनंत हैं, दृश्य पदार्थका कछु अंत नहीं, अरु जो आत्मविचारकरि देखिये तौ स्वप्नवत् है, कछु है नहीं, जो वस्तुते ऐसे होवै, तिसविषे आस्था करिकै यत्न करना व्यर्थ है, जगत्‌के पदार्थ नाशरूप हैं, इनविषे आस्था नहीं बनती. काहेते कि, आत्मा सत् है, अरु जगत् असत् है, अन्योन्य विलक्षण स्वभाव हैं, जड अरु चेतनका संयोग कछु नहीं बनता, जो जगत्‌के पदार्थ स्थिर मानिये तौ रहते नहीं, इस कारणते आस्था शोभा नहीं पाती, जैसे जलके तरंगका आश्रय लेकरि कोऊ पार हुआ चाहै तौ दुःख पाता है, तैसे जगत्‌के पदार्थका आश्रय कियेते दुःखी होता है, जगत्‌की आस्था करनीही बंधन है, जगत नाशरूप है, तुम स्थिररूप हौ, ताते आस्था नहीं संभवती, कहूं जलके तरंगका अरु पर्वतका संबंध भया है ! जो तुम जगत्‌को असत्य जाना, अरु आपको सत्य जाना तौ भी जगत्‌के पदार्थनकी वांछा नहीं बनती, काहेते कि सत्यको असत्यकी वांछा नहीं संभवती, अरु असत्यको असत्यविषे भावना करनी क्या है, अरु जो आप संयुक्त जगत सत्य जानते हौ, तौ भी वांछा नहीं संभवती. काहेते कि, जो सत्य अद्वैत आत्मा है, तिसके समीप कछु द्वैत वस्तु नहीं, तुम तौ एक

अद्वैत हौ, वांछा किसकी करते हौ, वाते तुमको किसी पदार्थकी इच्छा अनिच्छा नहीं बनती, हेयोपादेयते रहित केवल स्वस्थ होइकरि अपने आपविषे स्थित होहु, कैसा आत्मतत्त्व है, जो सबका कर्ता है, अरु सर्वदा अकर्ता है, कदाचित् कछु किया नहीं, उदासीनकी नाईं स्थित है, जैसे दीपक सब पदार्थोंको प्रकाश करता है, अरु किसकी इच्छाद्वारा अर्थकी सिद्धि करनेनिमित्त नहीं प्रवर्तता, स्वाभाविकही प्रकाशरूप है, तैसे आत्मतत्त्व सबका कर्ता है, तिसका कर्ता कोऊ नहीं, जैसे सूर्य सबकी क्रियाको सिद्ध करता है, अरु आप किसी क्रियाके आश्रय नहीं। काहेते जो आपही प्रकाशरूप है, चलता है, अरु कदाचित् चलायमान नहीं भया, अरु जो सूर्यका प्रतिबिंब चलता भासता है; सो प्रतिबिंबका चलना सूर्यविषे नहीं तैसे तुम्हारा स्वरूप आत्मा सदा अकर्ता अचल है, तिसविषे स्थित होहु, जेता कछु जगत् भासता है, तिसविषे विचरहु, परंतु भावनाकरिकै इसविषे बंधायमान मत होहु, यह असद्रूप है ॥ हे रामजी! यद्यपि प्रत्यक्ष आदिक प्रमाणकरि जगत् सत् भासता है, तौ भी है नहीं, स्वतः चित्त होइकरि आपको विचार अरु आपविषे स्थित होहु, तब जगत् कछु न भासैगा, जो प्रत्यक्ष बड़े तेज बल अरु वीर्यकरि संपन्न भासता है; अरु अंतर्धान हो गया, तौ सत्य कैसे कहिये; इस विचार करिकै भी तुमको जगत्की भावना नहीं बनती, जैसे चक्रपर आरूढ हुएते सब स्थान भ्रमते दृष्टि आते हैं, अथवा जैसे स्वप्ननगर भ्रमकरिकै भासता है; सो किसी कारणकार्यकरि नहीं होता, आभासरूपमनके फुरणेकरि उपाजि आता है जैसे कोऊ जीव अकस्मात् आय निकसता है, सो मित्राईका भागी नहीं होता, विचार कियेविना, बुद्धिमान् तिसविषे रुचि नहीं बांधते, वह सुहृदताका पात्र नहीं, तैसे भ्रमकरिकै जो जगत् भासा है, सो आस्थाकरिकै भावना बांधने योग्य नहीं, जैसे चंद्रमाविषे उष्णता, अरु सूर्यविषे शीतलता, मृगतृष्णाकी नदीविषे जल, इनकी भावना करनी अयोग्य है, तैसे जगत्विषे सत्यभावना अयोग्यहै, यह संकल्पपुर स्वप्ननगर द्वितीय चंद्रमावत् असत्य है, भ्रमकरिकै सत्य भासता है ॥ हे रामजी! अंतरते भावपदार्थकी आस्था [illegible]रुक्ष्मीको त्यागकर, अरु बाह्य लीला करते विचरहु, अंतरते अकर्त्ता पदविषे स्थित होहु, अरु सब भावपदार्थविषे स्थित

सबते अतीत होहु, आत्मा सब पदार्थविषे सर्वकाल स्थित है, अरु सबते अतीत है, तिसकी सत्ताकरिकै जगत् नीतिविषे स्थित है, जैसे दीपककरि सब पदार्थ प्रकाशवान् होते हैं, अरु दीपक इच्छाते रहित प्रकाशता है, तिस करि सबकी क्रिया सिद्ध होती है, अरु जैसे सूर्य आकाशविषे उदय होता है, अरु तिसके प्रकाशकरि जगत्का व्यवहार होता है, तैसे अनिच्छित आत्माकी प्रकाश सत्ताकरि सब जगत् प्रकाशता है, जैसे इच्छाते रहित रत्नका प्रकाश होता है, अरु स्थानविषे पसर जाता है, तैसे आत्मदेवकी सत्ताकरिकै जगत्गण प्रवर्त्तते हैं, ताते कर्त्ता है, सब इंद्रियके विषयते अतीत है, इस कारणते अकर्त्ता अभोक्ता है, अरु सब इंद्रियोंके अंतर्गत स्थित है, इस कारणते कर्त्ता भोक्ता वही है, इसप्रकार दोनों आत्माविषे बनते हैं, कर्त्ता भोक्ता भी संभवता है, अरु अकर्त्ता अभोक्ता भी संभवता है, जिसविषे तू अपना कल्याण जानै, तिसविषे स्थित होहु ॥ हे रामजी ! इसप्रकार निश्चय करौ कि, सब मैंही हौं, अकर्त्ता अभोक्ता हौं ऐसी दृढ़ भावना करि जगत्के कार्यको करते भी कछु बंधन न होवैगा, अरु सब आत्मा कर्तव्य भोक्तव्यते रहित है, इसप्रकार निश्चय कियेते भोगकी वासना निवृत्त हो जावैगी, तब चेतन भोगकी ओर बहुरि न आवैगा, जिसको यह निश्चय है कि, मैं कदाचित् कछु किया नहीं, सदा अक्रिय रूप हौं, सो भोगके समूहकी कामना किसनिमित्त करैगा, अरु त्याग किसका करैगा, ताते तुम यही निश्चय धरहु कि, मैं नित्य अकर्त्तारूप हौं, जब यह बुद्धि दृढ होवैगी, तब परम अमृतरूप जो समानसत्ता है, सो शेष रहैगी, अथवा यही निश्चय धरहु, कि सबका कर्त्ता मैंही हौं, मैं महाकर्त्ता हौं, सबके अंतर स्थित होइकरि सब कार्य मैं करता हौं ॥ हे रामजी ! यह दोनों निश्चय तुझको कहे हैं, जिसविषे तेरी इच्छा होवै, तिसविषे स्थित होहु, जहां यह निश्चय होता है, कि सबका कर्त्ता मैं हौं, सब जगत् भ्रमभी मैं हौं, तब इन पदार्थनके भाव अभावविषे राग द्वेष न होवैगा, जो सब आपही भया, तौ राग द्वेष किसका करैगा, उसको यह निश्चय होता है, कि यह शरीर मेरा दग्ध होता है, वह शरीर सुगंधादिककरि लीला करता है, तिसको खेद अरु उल्लास किसका होवै, ताते तुझको जगत्के क्षोभ, उल्लास, उदय, अस्तविषे सुख

दुःख मत होवै, सबका कर्त्ता मैं हौं तौ खेद उल्लास भी मैं करता हौं, जब आत्मा अरु कर्तव्यकी एकता हुई, तब खेद उल्लास सब आपही लय हो जाता है, सत्ता समान शेष रहता है, सोई सत्ताभाव पदार्थविषे अनुस्यूत होइकारि स्थित है, तिसविषे जब चित्तकी इच्छा स्थित होती है, तब बहुरि दुःखको नहीं प्राप्त होता ॥ हे रामजी ! सबका कर्त्ता आपको जान; कि कर्त्ता पुरुष मैं हौं, अथवा अकर्त्ता जान; कि मैं कछु नहीं करता, अथवा दोनों निश्चय त्यागिकारि निःसंकल्प निर्मन होहु, तब जो तेरा स्वरूप है, सोई सत्ता शेष रहैगी, अरु यह जगत् है, यह मैं हौं, यह मेराहै, इस कुत्सित भावनाको त्याग करहु, इस अभिमानविषे स्थित नहीं होना, इस देहविषे अहंकार कालसूत्र नामकरिकै नरककी प्राप्तिका कारणहै, नरकका जाल है, शस्त्रकी वर्षा होती है, तिन दुःखनते अधिक दुःखस्थान देह अभिमान है, अर्थ यह कि अंत दुःखदायक है, तातै पुरुष प्रयत्नकरिकै इसका त्याग करौ, यह सबके नाशविषे स्थित है, भावी कल्याण जो श्रेष्ठ पुरुषहैं, सो इसको स्पर्श नहीं करते, जैसेचंडाली होवै, अरु तिसकी गोदविषे श्वानका मांस होवै, तिससे श्रेष्ठ पुरुष संग नहीं करते, तैसे देहाभिमानके साथ स्पर्श नहीं करना, यह महानीच है, यह अहंकाररूपी बादल नेत्रके आगे पटल आया है, तिसकरि आत्मा नहीं भासता, जब विचारकरि तिस पटलको दूर करैंगे तब आत्मसत्ता प्रकाश उदय होवैगा, जैसे मेघघटाके दूर हुएते चंद्रमा प्रकाश आता है,तैसे अहंकारके अभावते आत्मा प्रकाशताहै,जब तू इन निश्चयविषे कोई निश्चय धरैगा, तब सब दुःखनते रहित शांतपदको प्राप्त होवैगा, यह निर्णय सबते उत्तमहै, इस निश्चयविषे उत्तम पुरुष सदा स्थित है, अब तुम भी विधि अथवा निषेध दोनोंविषे कोई निश्चय धारहु॥इति श्रीयोगवासिष्ठे स्थितिप्रकरणे कर्तव्यविचारो नाम पंचपंचाशत्तमः सर्गः॥५५॥

राम उवाच ॥ हे ब्राह्मण ! जेते कछु तुमने सुंदर वचन कहे हैं, सो सत्य हैं, अकर्तारूप, आत्मा, कर्ता, अभोक्ता, सबका भोक्ता, भूतको धारनेहारा, सबका आश्रयभूत अरु सर्वगत, व्यापक, चिन्मात्र निर्मलपद अनुभवरूप देव सर्व भूतके अंतर स्थितहै॥ हे प्रभो! ऐसा जो ब्रह्मतत्त्व है, सो मेरे हृदयविषे रम्य हुआ है, तुम्हारे वचनकरि प्रकाशने लगा है,तुम्हारे वचन शीतल शांतरूप तप्तताको

मिटाते हैं, जैसे वर्षाकरि पृथ्वी शीतल होती है, तैसे मेरा हृदय शीतल भया है, आत्मा उदासीनकी नाईं अनिच्छित स्थित है, कर्तव्य भोक्तव्यते रहित अरु सब जगत्को प्रकाशता है, सब क्रिया तिसकारि सिद्ध होती हैं, इसकारणते कर्ता भी वहहै, अरु भोक्ता भी वही है, परंतु कछुक संशय मुझको है सो हृदयविषे विस्तारको प्राप्त भया है, तिसको अपनी वाणीकारि छेदहु, जैसे चंद्रमाका प्रकाश तमको नाश करता है, तैसे संशय दूर करहु, कि यह सत्य है, यह असत्य है; यह मैं हौं वह और है, इत्यादिक द्वैतकल्पना एक अद्वैत विस्तृत शांतरूपविषे कहांते स्थित भई हैं, निर्मलविषे मल कैसे हुआ है ॥ वसिष्ठ उवाच ॥ हे रामजी! इस तेरे प्रश्नका उत्तर मैं सिद्धांत कालविषे कहौंगा, अथवा तू आपही जानि लेवैगा, मोक्षउपाय जो यह शास्त्रहै, तिसका सिद्धांत जब भली प्रकार तेरे हृदयविषे स्थित होवैगा, तब तू इस प्रश्नका पात्र होवैगा, अनर्थ योग्य न होवैगा तिस अवस्थाते अन्यथा नहीं होता॥ हे रामजी! सुंदरस्त्रियोंकी सुंदरवाणीसों गीत होताहै, तिसके अधिकारी कामी जीव यौवनवान् पुरुष होते हैं, तैसे तू सिद्धांत अवस्थाविषे मेरे वचनका अधिकारी होवैगा, जैसे रागमयी कथा बालकके आगे कहनी व्यर्थ होती है, तैसे बोधसमयविना उदार कथा कहनी व्यर्थ होती है, जैसे शरत्कालविषे पत्रसंयुक्त वृक्ष शोभता है, अरु वसंतऋतुविषे पुष्पकरिशोभताहै, तैसेही जैसी अवस्था पुरुषकी होतीहै, तैसा उपदेश कहना शोभता है, किसी समय कैसा किसी समय कैसा शोभता है, अरु उपदेश भी तब दृढ लगता है, जब बुद्धि शुद्ध होतीहै, मलीन बुद्धिविषे दृढ नहीं लगता, जैसे निर्मल वस्त्रके ऊपर केशरका रंग शीघ्रही चढिजाता है मलीन वस्त्रके ऊपर नहीं चढता, तैसे प्राप्तरूप जो आत्मा है, तिसका विज्ञान उपदेश सिद्धांत अवस्थावालेको लगताहै, जिसको बोधसत्ता प्राप्त भई है, अरु तेरे प्रश्नका उत्तर मैंने संक्षेपमात्र कहा भी है, विस्तार करि नहीं कहा, जौ तू नहीं जानता, तौ भी प्रत्यक्ष है, जब तू आपकारि आपको प्राप्त होवैगा, तब आपही इस प्रश्नके उत्तरको जानि लेवैगा, इसविषे संदेह कछु नहीं, जब सिद्धांतकालविषे बोधको प्राप्त होइकारि स्थित होवैगा, तब मैं भी इस स्वप्नका उत्तर विस्तारकारि कहूंगा जब आपकारि अपना आप निर्मलकरैगा, तब अपने आपको

जानि लेवैगा ॥ हे रामजी ! जो कर्ता अरु कर्मका विचार मैंने तुझको कहा है, तिसको विचारिकरि वासनाका त्याग करहु, जबलग संसारकी वासना इस हृदयविषे होती है, तबलग बंधमान है, जब वासना छेद होती है, तब मुक्ति होती है, ताते तू वासनाका त्याग करहु, अरु मोक्षअर्थ जो वासना है, तिसका भी त्याग करहु, तब सुखी होवैगा, इस क्रम करिकै वासनाको त्याग प्रथम शास्त्रविरुद्ध तामसी वासनाका त्याग करहु, बहुरि विषयकी वासनाका त्याग करहु, अरु मैत्री करुणा मुदिता उपेक्षा इस निर्मल वासनाको अंगीकार करहु, मैत्री अर्थ यह कि सबविषे ब्रह्मभावकरि द्रोह किसीका नहीं करना, लक्ष्मीवान्के साथ मित्रभाव होवै, अरु दुःखीपर दया करनी, यह करुणा कहिये, अरु धर्मात्मा पुरुषको देखिकै प्रसन्न होना, इसका नाम मुदिता है, पापीको देखिकै उदासीन रहना, निंदा न करनी, इसका नाम उपेक्षा है, इन चारों प्रकारकी वासनाकरि संपन्न होना, अरु अंतरते इनका भी त्याग करना, हृदयविषे इनका अभिमान भी न होवै, अरु बाह्य इनका व्यवहार होवै, बहुरि अंतरते हृदयमें गुणकी वासना त्यागिकरि चिन्मात्र वासना रखनी; पीछे इनको भी मनबुद्धिके साथ मिश्रित जान त्याग करना, तब जिसकरि वासना त्यागी है, सो शेष रहैगा तिसको भी त्याग करना ॥ हे रामजी ! चिन्मात्रतत्त्वते कल्पना करिकै देह इंद्रियां प्राण अरु तम प्रकाशवासनादिक भ्रममात्र भासि आये हैं, जब मूलसंयुक्त इनको त्याग करैगा, मूल कहिये अहंकारसंयुक्त, तब आकाशवत् सम स्वच्छ होवैगा, इसप्रकार सबको त्यागिकरि पाछे जो तेरा स्वरूप है, सो तू होहु, जो हृदयसों इसप्रकार त्यागिकरि स्थित होता है, सो पुरुष मुक्तिरूप परमेश्वर होता है, समाधिविषे रहै, अथवा न कर्म करै, अथवा करै जिसके हृदयते सब अर्थकी आस्था नष्ट भई है, सो मुक्त है, अरु उत्तम उदार चित्त है तिस पुरुषको करने न करनेविषे कछु लाभ हानि नहीं होती, न समाधि करनेविषे अर्थ है, न तपकरि अर्थ है- काहेते कि, मन तिसका वासनाते रहित भया है ॥ हे रामजी ! मैं चिरकालपर्यंत अनेक शास्त्र विचारे हैं, अरु उत्तम पुरुषोंके साथ चर्चा करी है, परस्पर यह निश्चय किया है कि, भलीप्रकार वासनाका त्याग करना, ताते उत्तम मोक्ष है, इसविना उत्तमपद पानेयोग्य

कोऊ नहीं, जो कछु देखने योग्य हैं, सो मैंने सब देखा है, अरु दशोंदिशा भ्रमा हौं, तामें कितनेक जन यथार्थदर्शी दृष्टि आए हैं, अरु कितनेक हेयोपादेयसंयुक्त मुझको दृष्टि आए हैं, यही यत्न करते हैं, इनते इतर कछु नहीं करते, किसीको ग्रहणकी, और किसीको त्यागकी इच्छा होती है, नानाप्रकार क्रियाके आरंभसों सब देहके अर्थ करते हैं, आत्माके अर्थ कछु नहीं करते, पाताल स्वर्ग ब्रह्म लोक आदि सबलोक देखे हैं, तिनाविषे केतेक संत मुझको दृष्टि आए हैं, जिनने देखने योग्य आत्मतत्त्वपद देखा है; और ग्रहण त्याग सब असत्य भ्रांतिकरि उठे हैं, यह निश्चय जिनका गलित भया है ऐसे ज्ञानवान् कोई विरले हैं, सब ब्रह्मांडका राज्य करै, अग्निविषे प्रवेश करै, जलविषे प्रवेश करै, ऐसे ऐश्वर्य शक्तिकरि संपन्न भी होवै तो भी आत्मलाभविना जीवको शांति नहीं प्राप्त होती, बडे बुद्धिवान् संतभी वहाँ हैं, जिनने अपनी इंद्रियांरूपी शत्रु जीते हैं, सोई शूरमे हैं, तिनको जरा जन्म मृत्युका अभाव है, वह पुरुष उपासना करने योग्य हैं ॥ हे रामजी ! ज्ञानवान्को किसी दृश्य पदार्थविषे प्रीति नहीं होती, काहेते जो पृथ्वी आदिक पंचभूतकी सब ठौर पाते हैं, त्रिलोकविषे इनते इतर और पदार्थ कोऊ नहीं तौ प्रीति किसविध होवै ? युक्तिकरिकै ज्ञानवान् संसारसमुद्रको गोपदवत् करिकै तरि जाते हैं, अरु जिनने युक्तिका त्याग किया है, तिनको सप्तसमुद्रकी नाईं संसार हो जाता है, अरु जो पुरुष उदाराचित्त हैं, तिनको यह संपूर्ण जगत् कदंबवृक्षके गोलवत् हो जाता है, तिसविषे वह त्याग किसका करैं अरु भोग किसका करैं ? हेयोपादेयते रहित पुरुषको जगत् तुच्छ जैसा भासता है, इस कारणते जगत्के पदार्थनिमित्त यत्न नहीं करता, अरु जो दुर्बुद्धि जीव होते हैं, सो तुच्छ ब्रह्मांडरूप पृथ्वीपर युद्ध करते हैं, अनेक जीवकी घात करते हैं, ममताविषे बंधमान हैं, अरु यह जगत् कैसा है, संकल्पमात्र-विषे नष्ट हो जाता है, अरु क्षणक्षणविषे आस्थाकरि यत्न करना बडी मूढता है, सब जगत् आत्माके एक अंशकरि कल्पित है, इसकी उपमा तृणसमान भी नहीं. इसप्रकार तुच्छरूप त्रिलोकी जगत्को जानिकरि आत्मवेत्ता किसी पदार्थके हर्षशोकविषे बंधमान नहीं होते, ग्रहण अरु त्यागते रहित हैं सदाशिवके लोक आदि पातालपर्यंत जल रस देह जो राजस सात्विक तामसकरि संयुक्त जेते

कछु जगत्के पदार्थ हैं सो ज्ञानवान्को प्रसन्न नहीं कर सकते, उसकी इच्छा किसीविषे नहीं होती; एक अद्वितीयात्मभावको प्राप्त भया है, आकाशवत् व्यापकबुद्धि होता है, अपने आपविषे स्थित है, चित्त दृश्यते रहित अचेतन चिन्मात्र है, शरीररूप जाल है, सोई भयानक कुहिड तिसकरि जगत्रूप कोटर धूसर हो रहा है, सो तिस पुरुषका शांत हो जाता है, द्वितीय वस्तुका अभाव भया है, ब्रह्मरूपी बड़ा समुद्र है, तिसविषे झगके बोयेवत् कुलाचलपर्वत हैं, चेतनरूपी सूर्य है, तिसविषे मृगतृष्णाकी नदीरूप जगत्की लक्ष्मी है, अरु ब्रह्मरूपी समुद्रविषे जगत्रूपी तरंग उठते अरु लय होतेहैं, ऐसे जाननेहारा जो ज्ञानवान् है, तिसको यह जगत् आनंददायक कैसे होवै ? सूर्य चंद्रमा अग्नि जो तुझको प्रकाशरूप भासते हैं, सो भी घट काष्ठ आदिकवत् जड़रूप हैं, जिसकरि यह प्रकाशते हैं, सो सबको सिद्ध करती आत्मसत्ता है, और कोऊ नहीं, देह जो रुधिर मांस अस्थिकरि वनी है, इंद्रियांसंयुक्त वेष्टित है, तिस देह जगत्रूप डब्बेविषे चेतन जीवरूप रत्न है, तिसकरि विराजता है, चेतना जड़ मुग्धरूप है ॥ हे रामजी ! यह जो स्त्रीका देह भासता है, सो चर्मकी पुतली वनी है; तिसको देखिकै मूढ बालक प्रसन्न होता है, जो बुद्धिमान् है, सो प्रसन्न नहीं होते, इस प्रकार ज्ञानवान्को विषयभोग प्रसन्न नहीं करते, जैसे वायुके चलनेकरि पर्वत चलायमान नहीं होते, तैसे ज्ञानवान् संसारके पदार्थ करि प्रसन्न नहीं होते, ज्ञानवान् तिस उत्तम पदविषे विराजते हैं, जिसकी अपेक्षाकरि चंद्रमा सूर्य पातालविषे भासते हैं. अर्थ यह कि, इनका वड़ा प्रकाश भी तुच्छ जैसा भासता है, परम उत्तम पदविषे ज्ञानवान् विराजता है, अरु यह संसार मूढ जीव संसारी समुद्रविषे सर्पकी नाईं वहे जाते हैं, जैसे हमको भासते हैं, तैसे कहते हैं, इस जगत्विषे ऐसा भाव पदार्थ कोऊ नहीं, जो ज्ञानवान्को रागकरि रंजित करै; जैसे नगरका राजा होवै, तिसके ग्रहविषे महासुंदर विचित्ररूप रानियां होवैं, तिसको ग्रामकी मूढ नीच स्त्रियां प्रसन्न नहीं कर सकतीं, तैसे यह जगत्के भाव पदार्थ तत्त्ववेत्ताके हृदयविषे प्रवेश नहीं कर सकते, जैसे आकाशविषे मेघ वादर रहते हैं, परंतु आकाशको स्पर्श नहीं कर सकते, जैसे सदाशिव महासुंदर गौरीका नृत्य देखनेहारा है, अरु गौरीसंयुक्त है, तिसको वानरीका

नृत्य हर्षदायक नहीं होता तैसे ज्ञानवान्को जगत्के पदार्थ हर्षदायक नहीं होते, जैसे जलकरि पूर्ण कुंभविषे रत्नका प्रतिबिंब होवै, तिसको देखिकै बुद्धिवान्का चित्त ग्रहण नहीं करता, तैसे ज्ञानवान्का चित्त जगत्के पदार्थ नहीं चाहता, यह संसारचक्र बडा विस्तारहूप भासता है, सो असत्यरूप है, तिसको देखिकै ज्ञानवान् कैसे इच्छा करै, यह तौ चंद्रमाके प्रतिबिंबवत् है, शरीर भी असत्य है, इसकी इच्छा मूढ करते हैं, जैसे सेवालको मच्छर भोजन करते हैं, राजहंस नहींकरते, तैसे संसारके विषयकी इच्छा अज्ञानी करते हैं, ज्ञानी नहीं करते ॥ इति श्रीयोगवासिष्ठे स्थितिप्रकरणे पूर्णस्वरूपवर्णनं नाम षट्पंचाशत्तमः सर्गः ॥ ५६ ॥ ॥ वसिष्ठ उवाच ॥ हे रामजी ! यह सिद्धांत जो परम उचित वस्तु है, तिसकी गाथा बृहस्पतिका पुत्र जो कच है, तिसने गाई थी, सो परम पावनरूप है ॥ एक कालमें सुमेरु पर्वतके किसी गहन स्थानविषे देवगुरुका पुत्र कच जाय स्थित भया, अभ्यासके वशते कदाचित् उसको आत्मतत्त्वविषे विश्रांति भई, अरु अंतःकरण उसका सम्यक् ज्ञानरूपी अमृतकरि पूर्ण भया, अरु पांचभौतिक जो मलिन दृश्य है, तिसते विरक्त भया, ब्रह्मभावविषे अस्फुर होइकरि रमता भया, निराभास आत्मतत्त्वते इतर कछु नहीं, एक अद्वैत भासै, ऐसे देखता हुआ, गद्गद वाणीसो बोलत भया, मैं क्या करौं, अरु कहां जाऊं, क्या ग्रहण करौं, किसका त्याग करौं, सब विश्व एक आत्मपूर्ण हो रहा है, जैसे महाकल्पविषे सब ओरते जल पूर्ण हो रहता है, तैसे दुःख भी आत्मा है, सुख भी आत्मा है, आकाश दशों दिशा अहं त्वं आदि सब जगत् आत्माही है, बड़ा कष्ट है, जो अपना आपविषे नष्ट हुआ बंधमान था, देहके अंतर भी आत्मा है, बाहर भी आत्मा है, अध ऊर्ध्व इत उत सब आत्मा है, आत्माते इतर कछु नहीं, सब ओरते एक आत्माही स्थित है, अरु सबही आत्माविषे स्थित है, यह सब मैं हौं, अपने आपविषे स्थित हौं, अपने आपविषे मैं नहीं समाता. अर्थ यह कि, आदि अंतते रहित अनंत आत्मा हौं, अग्नि मैं हौं, वायु मैं हौं, आकाश जल पृथ्वी मैं हौं, जो पदार्थ मैं नहीं सो है नहीं, जो कछु है, सो सब विस्तृतरूप मैंही हौं, एक पूर्ण परमआकाश भैरव हौं. अर्थ यह कि भर रहा हौं, सब जगत् भी ज्ञान रूप है, समुद्रवत् एक पूर्ण स्थित है, सो कल्याणमूर्ति

इसप्रकार भावना करता हुआ, स्वर्णके पर्वतके कुंजाविषे कच स्थित भया तिसके अनंतर ॐकारका उच्चार बडे स्वरसों करने लगा, अरु ॐकारकी जो अर्धकलाहै, जिसको अर्धमात्रा कहते हैं, सो फूलते भी कोमल है, बहुरि तिसविषे स्थित होत भया, सो अर्ध मात्रा कैसी है, न अंतःस्थित है, न बाह्य है, हृदयविषे भावना करता हुआ तिसविषे स्थित भया, कलनारूपी जो मल था, तिसते रहित निर्मल भया, चित्तकी वृत्ति निरंतर लीन होगई जैसे मेघके नष्ट भयेते शरत्कालका आकाश निर्मल होता है, तैसे कलंकित कलनाके दूर हुएते निर्मल भया, जैसे पर्वतकी पुतली अचलरूप होती है तैसे कच समाधिविषे स्थित अचल भया ॥ इति श्रीयोगवासिष्ठे स्थितिप्रकरणे कचगाथावर्णनं नाम सप्तपंचाशत्तमः सर्गः ॥ ५७ ॥ वसिष्ठ उवाच ॥ हे रामजी ! अंगनाके शरीरादिक जो भोग पदार्थ हैं, सो इनते इतर तौ जगतविषे सुख कछु नहीं अरु ज्ञानवान्‌को यह पदार्थ तुच्छ भासते हैं, इनविषे आस्था नहीं करते, बहुरि इच्छा किस पदार्थकी करैं, इन भोग ऐश्वर्य पदार्थकरि मूढ असाधु तोष पाते हैं, जो ज्ञानवान् साधु हैं, सो इनविषे प्रीति नहीं करते जो कृपण अज्ञानी हैं, तिनको भोग ही सरस है, अरु भोग कैसे हैं, आपातरमणीय आदिअंत मध्यविषे दुःखरूप हैं; जो पुरुष इनविषे आस्था करते हैं, सो गर्दभ नीच पशु हैं. हे रामजी स्त्री कैसी है, रक्त मांस अस्थि आदिकरि पूर्ण है जो इसको पायकरि तोषित होते हैं सो गीदड़ हैं मनुष्य नहीं, अरु जो ज्ञानवान् हैं सो किसी जगत्‌के पदार्थविषे प्रीति नहीं करते, पृथ्वी सर्व मृत्तिकारूपहै. वृक्ष सर्व काष्ठरूपहै. देह सर्व मांसरूप हैं, पर्वत सर्व पाषाणरूप हैं, पाताल अध है, आकाश ऊर्ध्व है, सो दिशाकरि व्यापा है, सर्व विश्व पांचभौतिकरूप है, इसविषे तौ अपूर्व सुख कोऊ नहीं, जिसविषे ज्ञानवान् प्रीति करते हैं, इंद्रियके जो पांच विषय हैं, सो मोहके देनेहारे हैं, विवेकमार्गके रोकनेहारे हैं, जेती कछु जगत्‌ज्जालकी संपूर्ण विभूति हैं, बड़े ऐश्वर्य पदार्थ, सो सब दुःखरूप हैं, प्रथम इनका प्रकाश भासता है, पाछे कलंकको प्राप्त करते हैं, जैसे दीपक प्रथम प्रकाशको दिखाता है, बहुरि काजल कलंकको देता है, तैसे इंद्रियोंके विषय आगमापायी हैं, इनकरि शांति प्राप्त नहीं होती, अज्ञानीको स्त्रियां आदिक पदार्थ रमणीय भासते हैं, ज्ञानवान्‌की

वृत्ति इनकी ओर नहीं फुरती, आज्ञानीको स्थिररूप भासता है, अरु स्वाद देते हैं, तुष्ट करते हैं, ज्ञानवान्को असत्य अरु चल रूप भासता है, तुष्टताका कारण नहीं होते, विषयभोग कैसे हैं, विषकी नाईं हैं, यह स्मरण मात्रते भी विषवत्मूर्च्छा करते हैं, सत्यविचार भूलि जाता है, ताते इनको त्यागिकरि अपने स्वभावविषे स्थित होहु, अरु ज्ञानवान्की नाईं विचरहु ॥ हे रामजी ! जब इस जीवको अनात्मविषे आत्मअभिमान होता है, तब अंसगरूप जगज्जाल भी सत्य हो भासता है, ब्रह्माको भी वासनाके वशते कलपदेहको संयोग होता है, जैसे स्वर्णका प्रतिबिंब जल विषे पड़ता है, अरु तिसकी झलक कंध ऊपर पडतीहै सो कंधसे स्वर्णका संयोग कछु नहीं, तैसे ब्रह्मका संयोग देहकेसाथ है वास्तव कछु नहीं कल्पनामात्र देह है ॥ राम उवाच ॥ हे महामते ! विरंचिके पदको प्राप्त होइकरि बहुरि यह सघनरूप जगत् कैसे रचते हैं, सो क्रमकरिकै कहौ ॥ वसिष्ठ उवाच ॥ हे रामजी ! जब प्रथम कमलज जो ब्रह्मा उत्पन्न भया है, तब जैसे बालक गर्भते उपजता है; तैसे उपाजिकरि वारंवार इस शब्दका उच्चारण किया कि, ब्रह्म ब्रह्म इस कारणते तिसको ब्रह्मा कहते हैं, बहुरि संकल्पजाल है रूप जिसका, ऐसा कल्पित आकार मन हो आया, तिस मनने आगे संकल्प लक्ष्मी पसारी, प्रथम संकल्पते जो माया उपजती है, वह तेज अग्निके चक्रवत् फुरने लगा, तिसते बड़ा आकार हो गया, ज्वालाकी नाईं स्वर्णलतारूप बडी जटाकरि संयुक्त प्रकाशको धारे, शरीर मनसंयुक्त सूर्यरूप होइकरि स्थित भया, अपने समान आकार बड़े प्रकाशसंयुक्त कल्पता भया, ज्वालाका मंडल आकाशके मध्य स्थित भया, अग्निरूप अग्निही अंग हैं जिसके ॥ हे महाबुद्धिवान् रामजी ! इसप्रकार तौ ब्रह्माते सूर्य भयाहै, अरु अपर जो तेजकिरण फुरतीहैं, सो आकाशविषे तारागण बिंबपर आरूढ फिरते हैं, बहुरि ज्यों ज्यों वह संकल्प करता गया, त्यों त्यों तत्काल भी आगे सिद्ध होइकरि भासने लगा, इसी प्रकार आगे जगत्को रचता भया, जिसप्रकार इस सृष्टिविषे ब्रह्मा रचता है, तिसीप्रकार अपर सृष्टिविषे रचते हैं, प्रथम प्रजापतिको रचता है; बहुरि कालकलना नक्षत्र तारागण रचे, बहुरि देवता, दैत्य, मनुष्य, नाग, गंधर्व, यक्ष, नदियां, समुद्र, पर्वत, सर्व इसी प्रकार कल्पता

भया; जैसे समुद्रविषे तरंग कल्पित होते हैं; तैसे सिद्ध रचे, तिनके कर्म रचे, सो भी शुभ संकल्परूप जैसा वह संकल्प करै, सोई सिद्ध होकरि भासने लगे, प्रजापतिने संकल्पकरि सिद्ध उत्पन्न किये, तिनते आगे और बहुरि उत्पन्न किये, इसीप्रकार बहुरि भूत तारागण आगे और उत्पन्न किये, तिनने और उत्पन्न किये, तब ब्रह्माजी वेदको उत्पन्न करता भया; जीवके नाम आचार कर्म वृत्ति पुण्य क्रिया सब जगत्की मर्यादाकरि, नीतिरूप स्त्रीको रचता भया, सो जगत्रूपी ग्रहकी मर्यादा है, इसनिमित्त उत्पन्न किया सो इसप्रकार ब्रह्मकी माया ब्रह्मारूपकरि बडे शरीरको धर रही है, आगे सृष्टिका विस्तार है; लोक अरु लोकपालके क्रम किये हैं, सुमेरु पृथ्वीके मध्य दशों दिशा रचे, सुख मृत्यु राग द्वेष प्रगट किये, इसप्रकार संपूर्ण जगत् त्रिगुणरूप ब्रह्माजी रचता भया, जैसे जैसे उसने सब रचे हैं, तैसेही स्थित भये हैं, अरु है क्या, जो कछु संपूर्ण दृश्य भासता है, सो सब मायामात्र है ४ ॥ हे रामजी ! इसप्रकार जगत्का क्रम हुआ है, सो संकल्परूप संसार बडा स्थित होइकरि अज्ञानकरि भासता है, यह तौ संकल्पकरि रचा है, संकल्पके वशते जगत्की क्रिया पसरता है, अरु संकल्पवशते दैवनीति होइकरि स्थित भयाहै, सर्व जगत् ब्रह्माते संकल्पविषे स्थित है, जब तिसका संकल्प निर्वाण होता है, तब जगत् भी लय हो जाता है, एक समय ब्रह्माजी पद्मासनको धरि बैठे थे, अरु चिंतवत भये कि, यह जगज्जाल मनके संकल्प फुरणेमात्र है, मनके फुरणेकरि उपाजि आता है, वड़ा विस्ताररूप नानाप्रकारके व्यवहार विकारसंयुक्त इंद्र, उपेंद्र, मनुष्य, दैत्य, समुद्र, पर्वत, पाताल, पृथ्वीते लेकरि जगज्जाल सर्व मायामात्र है, बडा पसारि रहा है, अब मैं इसते निवृत्त होऊं ॥ हे रामजी! इसप्रकार चिंतनाकरि ब्रह्माजी संकल्प अनर्थरूपते उपरत भया, आदि अंत रहित जो अनादि मत परब्रह्म स्फार आत्मारूप है, तिस आत्मा तत्त्वविषे मनको लय करता भया, आनंदरूप आत्मा होकरि अपने आपविषे स्थित भया, निर्मल निरहंकार परमतत्त्वको प्राप्त भया, जैसे कोऊ व्यवहारते थका हुआ विश्राम करता है, तैसे अपने आपकरि आतमतत्वविषे स्थित भया, जैसे अक्षोभ समुद्र होता है, तैसे अक्षोभ भया, ध्यानविषे जुडि गया, बहुरि ध्यानते

जागा; जैसे द्रवताकरिकै समुद्रते तरंग फुरि आवैं, तैसे चित्तके वशते ब्रह्माजी फुरनरूप हो आया, तव जगतको देखिकै चिंतवत भया, कैसा संसार है, दुःखसुखकरि संयुक्त अनंत फांसीकरि बंधमान है, रागद्वेष भयमोहसों दूषित है ॥ हे रामजी ! इसप्रकार जीवको देखिके ब्रह्माजीको दया उपजी दयाकरिकै अध्यात्मज्ञानकरि संपन्न वेद उपनिषद् वेदांतको प्रगट करता भया, वडे अर्थसंयुक्त नानाप्रकारके शास्त्र रचे, वहुरि पुराण रचे, सब जीवके मुक्तिनिमित्त, तिनको रचिकरि परमपद जो आपदाते रहित हैं, तिसाविषे स्थित भया जैसे मंदराचल पर्वतके निकसेते क्षीरसमुद्र शांत होता है, तैसे शांतरूप होइकरि स्थित भया, वहुरि उसीप्रकार जाग जगत्को देखि मर्यादाविषे जोडा, वहुरि कमलपीठविषे स्थित होकरि आत्मतत्वके ध्यान परायण भया इसीप्रकार जो कछु अपने शरीरकी मर्यादा ब्रह्माजीने करी है, तिसीप्रकार नीतिके संस्कार पर्यंत क्रीड़ा करते हैं, कुलालके चक्रवत् नीतिके अनुसार विचरता है, जैसे ताडना अरु वासनाते रहित चक्र फिरताहै, तैसे जन्म कारणते रहितहै, तिसको शरीरके रखने अरु त्यागनेविषे कछु इच्छा नहीं, न कछु जगत्की स्थिति अस्थितिविषे इच्छा है, किसी इस पदार्थके ग्रहण त्यागकी भावनाविषे आसक्त नहीं, सर्व पदार्थविषे समबुद्धि परिपूर्ण समुद्रवत् स्थित है, कवहूँ सब संकलपते रहित शांतरूप हो रहता है, कवहूँ अपनी इच्छाकरि जगत्को रचता है; परंतु उसको जगत्के रचनेविषे कछु भेद नहीं, सर्व पदार्थकी अवस्थाविषे तुल्यता है ॥ हे रामजी ! यह मैंने तुझको ब्रह्माकी स्थिति कही है, यह परम दशा अपर भी किसी देवताको उपजै तौ तिसको समता जानिये, वह शुद्ध सात्त्विकरूप है, सृष्टिके आदि जो शुद्ध ब्रह्मतत्त्वविषे चित्तकला फुरी है, सो फुरनारूप मनकला ब्रह्मारूप होइकरि स्थित भई है, जब वहुरि जगत्के स्थितिक्रमविषे कलना उत्पन्न होती है, तब वही ब्रह्मारूप आकाश पवनको आश्रय लेकरि औषधि पत्रविषे आय प्रवेश करता है, कहूं देवताभावको प्राप्त होता है, कहूं मनुष्यभावको प्राप्त होता है, कहूं पशु पक्षी तिर्यक् आदिकको प्राप्त होता है, चंद्रमाकी किरणोंद्वारा अन्नादिक औषधीविषे प्राप्त होता है, जैसे भावको लेकरि चित्तकला फुरती है, तैसा भाव शीघ्रही उत्पन्न हो आता है, कई उपजिकरि संसर्ग संसारके वशते तिसी

जन्मके बंधनते मुक्त हो जाते हैं, अपने स्वरूपका चमत्कार होता है, कई अनेकजन्मकारि मुक्त होते हैं, कई थोडे जन्मकारि मुक्त होते हैं ॥ हे रामजी ! इसप्रकार जगत्का क्रम है, प्रत्यक्ष संकट कर्म बंधमोक्षरूप उपजते हैं, कई मिटि जाते हैं, इसप्रकार संसार बंधमोक्षकारि पूर्ण है, जब यह कलनामल नष्ट होता है, तब संसारते मुक्त होता है, जबलग कलनामल होता है, तबलग संसार भासता है ॥ इति श्रीयोगवासिष्ठे स्थितिप्रकरणे कमलजाव्यवहारो नाम अष्टपंचाशत्तमः सर्गः ॥ ५८ ॥ वसिष्ठ उवाच ॥ हे महाबाहो रामजी ! इसप्रकार ब्रह्माजी निर्मल पदविषे स्थित होइकरि सर्ग विस्तारता भया, जो संसाररूपी कूप है, तिसविषे जीव भ्रमते हैं, जीवरूपी टीड तृष्णारूपी जेवरीसाथ बांधे हुए कबहूं अधको जाते हैं, कबहूं ऊर्ध्वको जाते हैं; जब वासनारूपी जेवरी टूट पड़ती है, तब ब्रह्मतत्त्वसों उठे सो बहुरि ब्रह्मतत्त्वसाथ एकत्र हो जाते हैं, ब्रह्मसत्ताते जीव उपजते हैं बहुरि ब्रह्मसत्ताविषे लय होते हैं, जैसे समुद्रते मेघजल कणके धूम्रद्वारा उपजते हैं, बहुरि वर्षाकरि तिसीविषे प्रवेश करते हैं, तैसे जब तन्मात्रा मंडलकेसाथ चित्तकला मिलती है, तब तिसकेसाथ जीव एकरूप हो जाते हैं, जैसे मंदार वृक्षके पुष्पकी सुगंधि वायुसंग मिश्रित एकरूप हो जाती है, तैसे चित्तकला जीव तन्मात्रासों मिलिकरि प्राणनामको पाती है, इसप्रकार प्राणवायुते आदि तन्मात्रा जीवकलाको खैंचने लगता है, जैसे बड़े प्रचंड दैत्यके समूह देवताको खैंचै, तैसे खैंचा हुआ जीव तन्मात्रासाथ एकरूप हो जाता है, जैसे गंध अरु वायु तन्मय होता है, वह प्राण तन्मात्रा जीवके शरीरविषे वीर्यस्थानमें जाय प्राप्त होता है, तब जगतविषे उपजिकरि प्राण प्रत्यक्ष होते हैं, और कई धूम्रमार्गकरि देहवान्के शरीरविषे प्रवेश करते हैं, मेघविषे प्रवेश कर बुंद मार्गसों औषधीविषे रसरूप होइकरि जाय स्थित होते हैं, तिसको भोजन करनेहारेके अंतर वीर्यरूप होइकरि स्थित होते हैं, कई और प्राणवायुद्वारा प्रगट होते हैं, वह चर स्थावररूप होते हैं, कई पवनमार्गकरि धान्यक्षेत्रविषे चावलरूप स्थित होते हैं, तिसको जीव भोजन करते हैं, तिसकरि वीर्यविषे प्राप्त होते हैं, नाना प्रकारके रंगभेदकरि प्राणधर्म उपजते हैं, कई उपजने मात्रते जीवकी परंपरा तन्मात्राकरि वेष्टित आकाशविषे जाय स्थित होते हैं,

जबलग चंद्रमा उदय नहीं भया, जब चंद्रमा उदय होता है, तब उसका रस जो किरणें शीतल अरु श्वेत क्षीर समुद्रवत् तिनविषे जाय प्राप्त होते हैं, तिनके अंतर्गत होकरि पत्र औषधिविषे स्थित होते हैं, जैसे कमलपर भँवरे स्थित आय होते हैं, तैसे औषधिविषे जायकरि जीव स्थित होते हैं, फलविषे स्वादरूप होइकरि स्थित होते हैं, जैसे घुन रसकरि पूर्ण होता है, तैसे जीवकरि औषधि फल पूर्ण हो जाते हैं, जैसे दूधकरि स्तन पूर्ण होते हैं, तैसे जीवकरि फल पूर्ण होते हैं, तब वह फल परिपक्क होते हैं, तिनको देहधारी भक्षण करते हैं, तिसविषे जीव वीर्यरूप जडात्मकरूप होइकरि स्थित होते हैं, सो सुषुप्ति वासनाकरि वेष्टित हुए गर्भ पिंजरविषे जाय पडते हैं ॥ हे रामजी ! वीर्यविषे सदा जीव रहते हैं, जैसे मृत्तिकाविषे सदा घटादिक रहते हैं, काष्ठविषे सदा अग्नि रहता है; दूधविषे घृत रहता है, तैसे वीर्यविषे जीव रहते हैं, इसप्रकार परमात्मा महेशरूपते जीवकी परंपरा उपजती है, वायु मार्गकरि, धूम्रमार्गकारि, मेघमार्गकारि, औषधि मार्गकारि, प्राणमार्गकारि, चंद्रमाकी किरणोंके मार्गकरि, इत्यादिक अनेक प्रकारकारि जीव उपजते हैं; जो उपजनेकरिकै आत्मसत्तासों अप्रमादी रहते हैं, अपना स्वरूप विस्मरण नहीं होता, सो शुद्ध सात्त्विकी हैं, महा उदार व्यवहारवान् होते हैं अरु जिनको उपजनेकारि विस्मरण हो जाता है, बहुरि उसी शरीरविषे आत्माका साक्षात्कार होता है, सो सात्त्विकीरूप अरु जो उपाजिकरि नानाप्रकारके व्यवहारको प्राप्त होते हैं, अरु स्वरूप विस्मरण हो जाता है, जन्मकी परंपरा पायकरि स्वरूपका साक्षात्कार होता है, सो राजस सात्विकी कहाते हैं, अरु जिनको अंतका जन्म आय रहता है, तिनको जिसप्रकार मोक्ष होना है, सो क्रम अब तुझको कहता हौं, जो सहज सत्ता सात्विकभावको प्राप्त होते हैं, अरु मोक्ष होते हैं ॥ हे रामजी ! उपजनेमात्रते जो अप्रमादी हुए सो शुद्ध सात्विकी हैं, वह ब्रह्मादिक हैं, अरु जो प्रथम जन्मकरि बोधवान् हुए सो सात्त्विकी हैं, अरु दुर्लभ हैं, अरु जो कबहूं किसी जन्मकरि मोक्ष हुए हैं, सो राजस सात्विकी हैं, इनते इतर हैं, सो नानाप्रकारके मूक जड़ अनेक हैं, तमसंयुक्त स्थावरा

दिक हैं, जिनको आत्मपद प्राप्त भया है, तिनको जो मिलते हैं, तिनको अंतका जन्म है, ऐसे पुरुष विचारते हैं, कि मैं कौन हौं, यह जगत् क्या है, इस विचारके क्रमकरि मोक्षभागी होता है, सो राजसते सात्त्विकी होते हैं ॥ इति श्रीयोगवासिष्ठे स्थितिप्रकरणे विचारपुरुषनिर्णयो नाम एकोनषष्टितमः सर्गः ॥ ५९ ॥ वसिष्ठ उवाच ॥ हे रामजी ! राजसते सात्त्विकी हुए हैं, सो पृथ्वीपर महागुणकरि शोभायमान होते हैं, सदा उदितरूप रहते हैं, जैसे आकाशविषे चंद्रमा रहता है, तैसे वे पुरुष खेदको नहीं प्राप्त होते हैं, जैसे आकाशको मलिनता स्पर्श नहीं करती, तैसे उनको आपदा स्पर्श नहीं करती, जैसे रात्रिके आयेते स्वर्णके कमल मूँदे नहीं जाते, जो कछु प्रकृत आचार है, तिसके अनुसार चेष्टा करते हैं, और प्रकार नहीं करते, जैसे सूर्य अपने आचारविषे विचरता है, और आचार नहीं करता, तैसे वह सत्यमार्गविषे विचरते हैं, अंतरते पूर्ण शांतरूप हैं, आपदाकरि भी नहीं त्यागते, जैसे चंद्रमाकी कला क्षीण होती है, तो भी अपनी शीतलताको नहीं त्यागती, तैसे ज्ञानवान् आपदाके प्राप्त हुएते भी मलिनताको प्राप्त नहीं होते सर्वदा काल मैत्री आदिक गुणकरि संपन्न रहते हैं, सदा तिनकरि शोभते हैं; समतारूप जो समरस हैं, तिसकरि पूर्ण शांतरूप हैं, निरंतर स्वशुद्ध समुद्रवत् अपनी मर्यादाविषे स्थित रहते हैं ॥ हे रामजी ! तुम भी महापुरुषके मार्ग सदा चलहू, जो मार्ग परमपावन आपदाते रहित सात्त्विकी है, तिसके अनुसार चलौ तब आपदाके समुद्रविषे न डूबौगे, जैसे वे खेदते रहित जगत्विषे विचरते हैं, तैसे विचरौ, जिस क्रमकरि राजसते सात्त्विकी मोक्षभागी होता है सो सुनो, प्रथम आर्जवपदको प्राप्त होना. अर्थ यह कि, यथाशास्त्र सत् व्यवहार करना तिसकरि अंतःकरण शुद्ध होता है, तिस आर्जवपदको पायकरि संतसाथ मिलना अरु वारंवार सच्छास्त्रको विचारना, अरु जो संसारके अनित्य पदार्थ हैं तिनविषे प्रीति न करनी, विरक्तता उपजानी, तिनते निरिच्छ होना अरु जो पदार्थके उपजे विनशने त्रिलोकीविषे सत्यरूप है तिसकी वारंवार भावना करनी, अपर भावना शीघ्रही मिथ्या जानिकरि त्यागनी. जो कछु दृश्य जगत् भासता है, सो असम्यक् दृष्टि है, निष्फल नाशरूप व्यर्थ जानिकरि तिसकी भावना त्यागनी, अरु सम्यक् ज्ञानको स्मरण करना;

संतजन अरु सच्छास्त्र जो ज्ञानके सहायक हैं, तिनके संग मिलिके विचार करना कि, मैं कवन हौं, जगत् क्या है, भलीप्रकार प्रयत्नकरि विवेकसंयुक्त सदा अध्यात्मशास्त्रका विचार करना; सत्य व्यवहार सात्त्विकी कर्म करने; अवज्ञा करिकै मृत्युको विस्मरण न करना, जो मृत्यु विस्मरणकरि संसार कार्यविषे लग जाता है, सो डूबता है, ताते स्मरण करिकै सन्मार्गविषे लगना, जिस पदविषे ज्ञानी पुरुष महाउदार शीतलचित स्थित हैं, तिस पदके मार्ग अरु दर्शनविषे सदा इच्छा रखनी, जैसे मोरको मेघकी इच्छा रहती है ॥ हे रामजी ! अहंकार जो देहविषे स्थित है, यह देह संसारविषे उपजी है,तिनको भलीप्रकार विचार करिकै नाश करो यह देह संसार रुधिर मांस मज्जा आदिककी बनीहुई है; जेते कछु भूतजाति हैं, सो सब चेतनरूपी तागेविषे जैसे मोती परोये होवैं, तैसे हैं, तिन भूतोंको त्यागिकरि चिन्मात्र तत्त्वको देखौ, चेतनसत्ता सत्य है, नित्य विस्तृतरूप है, शुद्ध है, सर्वगत सर्वभाव तिसविषे हैं, सो त्रिलोकीका भूषण आश्रयभूत है, जो चेतन आकाशमें सूर्यविषे है, सोई चेतन पृथ्वीके छिद्रमें कीट है, तिसविषे है, जैसे घटाकाश अरु महाकशविषे भेद कछु नहीं, तैसे शरीरमें चेतनविषे भेद कछु नहीं, जैसे बहुत मिरचा हैं, तिनविषे तीक्ष्णता एकही है, तैसे सर्व भूतविषे चेतनता एक अनुस्यूत है, अनुभवकरि जानता है, तिस एक चिन्मात्रविषे भिन्नता कहांते होवै, एक सत्य सत्ता जो निरंतर चिन्मात्र वस्तुरूप है तिसविषे जन्म मरण आदिक अज्ञानकरि भासता है, वास्तवते न कोऊ उपजा है, न मरता है, एक आत्मतत्त्व सदा ज्योंका त्यों स्थित है, जगत् विकार तिसविषे आभासमात्र है, न सत्य है, न असत्य है, चित्तके फुरनेकरि भासता है, चित्तके शांत हुएते शांत हो जाता है, जो जगत्को सत्य मानिये तौ अनादि हुआ इसकरि भी शोक किसीका नहीं बनता, अरु जो जगत् असत्य मानिये तौ भी शोकका स्थान नहीं बनता, ताते दृढ विचार करिकै स्थित होहु, शोकको त्यागो तुमको न जन्म है, न मरण है, आकाशवत् निर्मल शम शांतरूप होहु ॥ इति श्रीयोगवासिष्ठे स्थितिप्रकरणे मोक्षविचारो नाम षाष्टितमः सर्गः ॥ ६० ॥

वसिष्ठ उवाच ॥ हे रामजी ! जो धैर्यवान् पुरुष बुद्धिवान् है, सो सच्छास्त्रको विचारै अरु संतजनका संग करै, तिनके आचारको ग्रहण

करै, जो दुःखके नाशकर्त्ता श्रेष्ठ ज्ञानदृष्टि हैं, तिनको यत्न करिकै अंगीकार करै, तब इसको भी सज्जनता आय प्राप्त होवैगी, संतजन जो विरक्त आत्मा हैं, तिनसों मिलिकारि सच्छास्त्रको विचारैं, तब परमपदको प्राप्त होते हैं ॥ हे रामजी! जो पुरुष सच्छास्त्रके विचारने हारा है, अरु संतजनका संग वैराग्यअभ्यास आदरसंयुक्त करता है, सो तुम्हारी नाईं विज्ञानका पात्र है, तुम तौ उदारआत्मा हौ, धैर्यवान्‌के जो गुण शुभ आचार हैं, तिनके समुद्र हौ, निर्दुःख होइकारि स्थित होहु, अब राजस सात्त्विकी भये हौ, मननशील भये हौ, बहुरि ऐसे दग्धरूप संसारविषे दुःखके पात्र न होवोगे; यह तुम्हारा अंतका जन्म है, जो अपने स्वभावकी ओर धावते हौ, अंत मुख यत्न करते हौ, निर्मल दृष्टि तुमको प्रगट भई है, यथाभूत जगत् वस्तुको जानते भये हौ; जैसे सूर्यके प्रकाशकारि यथार्थ वस्तुका ज्ञान होता है, अब मेरे वचनकी पंक्तिकारि सर्व मल दूर हो जावैगा, जैसे अग्निविषे धातुका मल जलि जाता है, तैसे तुम्हारा मल जलि जावैगा, निर्मलताकारि शोभायमान होवैगा, जैसे मेघके नष्ट भएते शरत्कालका आकाश शोभता है, तैसे संसारकी भावनाते मुक्त होइकारि चिंताते रहित निर्मल भावकारि शोभौगे, अहं मम आदिक कल्पनाते मुक्त भये हैं, इसविषे संशय कछु नहीं ॥ हे रामजी! तेरा जो यह अनुभव उत्तम व्यवहार है, तिसके अनुसार विचरैगा तौ तू अशोकपदको प्राप्त होवैगा; अरु अपर कोऊ इस व्यवहार विषे वर्त्तैगा, सो भी संसारसमुद्रको अनुभवरूपी बेड़ेकारि तरिजावैगा, तुम्हारे तुल्य जिसकी मति होवैगी, सो समदर्शी जन ज्ञानदृष्टि योग्य है; जैसे सर्व कांतिमान् सुंदरताका पात्र पूर्णमासीका चंद्रमा होता है; अरु तुम तौ अशोकदशाको प्राप्त भये हौ, यथाप्राप्तविषे वर्त्तते हौ, जबलग रागदोषते रहित स्थित बुद्धि रहौ, यथाशास्त्र जो उचित आचार है, सो बाह्यते करौ, अरु अंतरते सर्व कल्पनाते रहित शीतलचित्त होहु, जैसे पूर्णमासीका चंद्रमा शीतल होता है ॥ हे रामजी! इन सात्त्विक अरु राजस सात्त्विकते जो इतर जीव हैं तामसी, तिनका विचार यहां नहीं करना, [illegible] गीदड़ हैं, म[illegible]आदिकके खानेहारे हैं, तिनके विचारके साथ क्या प्रयोजन है, जो मैं तुझको सात्त्विकी जन कहे हैं, तिनके से[illegible] बुद्धि अंतके जन्मवती होती है; अरु जो ता[illegible]सी तिनको सेवै तौ उनकी बुद्धि

भी उदार होजाती है, अरु जिस जिस जाति[illegible] [illegible] उपजता है, तिस जातिके गुणकारि शीघ्रही [illegible]युक्त हो जाता है, पूर्व जो कोऊ भाव होता है, सो जातिके वशते वहां जाता र[illegible] [illegible], अरु जिस जा[illegible]विषे वह जन्मता है, तिस जातिके गुणको जीतनेका पुरुषार्थ करता है, तब यत्नकारि पूर्वके स्वभावको जीति लेता है, जैसे धैर्यवान् शूरमा शत्रुको जीति लेता है; जो इसका पूर्वसंस्कार मलीन है तौ धैर्यकरिकै मलिन बुद्धिका उद्धार करै; जैसे मुग्ध पशु गर्तविषे फँसि जावै, अरु तिसको काढ़ि लेवै, तैसे बुद्धिको मलिन संस्कारते काढि लेवै ॥ हे रामजी ! जो तामस राजसी जाति हैं तिनको भी जन्म अरु कर्मके संस्कारवशते सात्त्विक प्राप्त होता है, अरु वे भी अपने विचारद्वारा सात्त्विक जातिको प्राप्त होते हैं; इस पुरुषके अंतर अनुभवरूपी चिंतामणि है, तिसविषे जो कछु निवेदन करता है, सोई रूप इसका हो जाता है, ताते पुरुषार्थ करिकै अपना उद्धार करहु, पुरुष प्रयत्नकारि यह पुरुष बडे गुणकारि संपन्न होता है, अरु मोक्षको प्राप्त होता है, अंतका जन्म होता है, आगे जन्म नहीं पाता; अशुभ जातिके कर्म निवृत्त हो जाते हैं, ऐसा पदार्थ पृथ्वी आकाश देवलोकाविषे कोई नहीं, जो यथाशास्त्र प्रयत्नकारि न पाइये सो अवश्य पाता है ॥ हे रामजी! तुम तौ बडे गुणकारि संपन्न हौ, धैर्यता अरु उत्तम वैराग्य दृढ बुद्धिसंयुक्त हौ, अरु तिसके पानेको धर्मबुद्धिकारि वीतशोकरूप हौ; तुम्हारे क्रमको जो कोऊ जीव ग्रहण करैगा सो मूढताते रहित होइकरि अशोकपदको प्राप्त होवैगा; अब तुम्हारा अंतका जन्म है, बडे विवेककरि संयुक्त हौ, बुद्धि विषे शांतिके गुण आनि पसरे हैं, तिनकारि तुम शोभते हौ, सात्त्विक गुण क्रमकारि सर्वाविषे रम रहे हौ, संसारकी बुद्धि मोह चिंता तुमको मिथ्या है, तुम अपने स्वस्थ स्वरूपविषे स्थित होहु ॥ इति श्रीयोगवासिष्ठे महारामायणे चतुर्थे स्थितिप्रकरणे मोक्षोपाय वर्णनं नाम एकषष्टितमः सर्गः ॥ ६१ ॥

॥ इति योगवासिष्ठे चतुर्थं स्थितिप्रकरणं समाप्तम् ॥ ४ ॥

इति योगवासिष्ठे चतुर्थं स्थितिप्रकरणं समाप्तम् ।

